राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

सामाजिक न्याय की अवधारणा : सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विश्लेषण

❑ **प्रोफेसर सुरेन्द्र बहादुर सिंह**

संवैधानिक दृष्टि से सामाजिक न्याय की अवधारणा समाज के विविध वर्गों के हितों के बीच टकराहट को दूर कर उनमें सामंजस्य बिठाना है। लोक कल्याणकारी राज्य के निर्माण के लिए यह आवश्यक है। अनुच्छेद ३७, सामाजिक न्याय के वाहक प्रावधानों को देश के प्रशासन का मूल स्तम्भ घोषित करता है। सामाजिक न्याय की अवधारणा को किसी एक परिभाषा के पिंजड़े में बन्द नहीं किया जा सकता। यह देश, काल, पात्र तथा परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित कलेवर धारण करती रहती है। वर्तमान सन्दर्भों में न्याय की अवधारणा इस सामाजिकता को इंगित करती है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी स्थिति में ला दिया जाय जिसे प्राप्त करने के लिए वह विधि के अन्तर्गत अधिकृत है, वह उन्हें प्राप्त हो जाय, तथा जब तक कोई व्यक्ति विधि का उल्लंघन न करे, उसे किसी भी प्रकार के दण्ड का पात्र न बनाया जाय। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत सामाजिक न्याय की अवधारणा का व्यापक सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

भारत के संविधान की उद्देश्यिका में सामाजिक न्याय शब्द का प्रयोग ‘आर्थिक और राजनैतिक न्याय’ शब्दों के साथ किया गया है। शब्द शास्त्र की दृष्टि से ‘सामाजिक’ शब्द समाज की समस्त जीवतंता को समाहित करता है, जबकि न्याय शब्द व्यक्ति के स्वयं की अभिपुष्टि करता है। अतः दोनों दो विपरीत ध्रुवों की ओर यात्रा करते हुए दीखते हैं। यथार्थतः न्याय शब्द इस विपरीतता को समन्वय का कवच प्रदान करता है। न्याय की अवधारणा ही वैयक्तिक आचरण या स्वार्थ को समाज के कल्याण से जोड़कर वैयक्तिक आचरण को औचित्य प्रदान करती है। इसीलिए सामण्ड ने यह कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने वैयक्तिक स्वार्थ की पूर्ति की दिशा में कार्य करता है, पर व्यक्ति का वही कार्य औचित्यपूर्ण कहा जाता है, जिससे सामाजिक या सामुदायिक कल्याण सम्पादित होता है।’’[1]

भारत के संविधान में राजनीतिक तथा न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय विधिक अधिकारों के साथ सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों को सम्मिलित कर भाग ३ तथा भाग ४ में अध्यायीकृत कर दिया गया है। सम्भवतः इसीलिए प्रो. जी. आस्टिन ने इन्हें प्रथमतः तथा सर्वोपरि एक सामाजिक दस्तावेज की संज्ञा दी है। सामाजिक न्याय की अवधारणा को जन समुदाय को सार्थक रूप में स्वतन्त्रता की अनुभूति कराने के लिए प्रयुक्त किया गया है। जिससे सदियों से समाज पूरा शोषित एवं पीड़ित जनसमुदाय को समस्त भौतिक बाधाओं से मुक्त कर अपने स्वयं को विकसित करने का सुअवसर प्रदान किया जा सके।[2]

हमारे संविधान निर्माताओं ने उद्देश्यिका में सामाजिक न्याय का उल्लेख कर अनुच्छेद ३८ में इसकी अनुभूति कराने का दायित्व राज्य के ऊपर अधिरोपित कर दिया। वहाँ यह स्पष्टतः कहा गया है कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था को, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि कर प्रयास करेगा।’

संविधान के अनुच्छेद ३६, ३६(१), ४१, ४३, ४३(१), तथा ४६ जहाँ सामाजिक आर्थिक पहलुओं को रेखाकिंत करते हैं, वहीं अनुच्छेद १५, १६ एवं १७ सामाजिक न्याय के अन्य पहलुओं को उजागर करते हैं। राज्य द्वारा अनुकरणीय कुछ नीति तत्व, समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता, कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार, कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी, उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि के साथ धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध, लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता तथा अस्पृश्यता का अंत सामाजिक न्याय के अवयवी तत्व है।

संवैधानिक दृष्टि से सामाजिक न्याय की अवधारणा समाज के विविध वर्गों के हितों के बीच टकराहट को दूर कर उनमें सामंजस्य बिठाना है। लोक कल्याणकारी राज्य के निर्माण के लिए यह आवश्यक है। अनुच्छेद ३७, सामाजिक न्याय के वाहक प्रावधानों को देश के प्रशासन का मूल स्तम्भ घोषित करता है। माननीय न्यायाधिपति गजेन्द्र गड़कर ने ‘दी वर्करस्

❑ संकाय प्रमुख एवं विभागाध्यक्ष, विधि संकाय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

ऑफ गोल्ड माइन्स'[३] में सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की अवधारणा अपने आप में जीवन्त क्रान्तिकारिता का पुट लिए हुए है। यह अवधारणा विधि के शासन को शक्ति प्रदान करती है। इससे लोककल्याणकारी राज्य के आदर्श को यथार्थ अर्थवत्ता प्राप्त होती है। म्योर मिल्स लिमिटेड बनाम सूती मिल्स मजदूर यूनियन[४] में माननीय न्यायाधिपति एन. एच. भगवती ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि सामाजिक न्याय की वास्तविक अवधारणा के विषय में वाद-विवाद में पड़े बिना इतना ही कहना पर्याप्त है कि सामाजिक न्याय की अवधारणा किसी निर्णायक की कल्पना की विचारशीला से उद्गमित नहीं हुई है वरन् यह अत्यधिक सशक्त आधार शिला पर अवस्थित है।

गोलक नाथ[५] में भी इस अवधारणा को रेखाकिंत करते हुए यह कहा गया है कि संविधान राज्य को एक ऐसे समाज की संरचना हेतु निर्देशित करता है जहाँ समतामूलक भावना हो, सबके लिए समान शिक्षा, काम, जीविका के लिए समान अवसर उपलब्ध हो तथा जहाँ सामाजिक न्याय की अवधारणा मूर्त रूप ले सके। सामाजिक क्रान्ति के मुख्य बिन्दु संविधान के भाग ३ तथा भाग ४ में विद्यमान है। ये दोनों भाग संविधान की अन्तरात्मा हैं।

क्राउन अल्मुनियम वर्क्स बनाम वर्कमैन[६] में सामाजिक न्याय की अवधारणा को औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक शान्ति का वाहक बतलाकर न्यायपालिका ने सामाजिक न्याय को औद्योगिक उत्पादन का मूल मंत्र बतलाया है। मजदूरी निर्धारण को संविदा के परिक्षेत्र से हटाकर सामाजिक न्याय लोक कल्याणकारी राज्य को न्यूनतम वेतन निर्धारण के लिए प्रेरित करता है जिससे पूंजी तथा श्रम के बीच उत्पादन के सन्दर्भ में मधुर सम्बन्ध स्थापित हो सके। इससे मजदूरों को एक शालीन जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो सकेगा। न्यायालय के अनुसार इसमें कोई सन्देह नहीं है कि विविध उद्योगों में मजदूरी का निर्धारण, क्रमशः ही सही, लोक कल्याणकारी राज्य के प्रमुख उद्देश्य, सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय की अनुभूति करायेगा। भारतीय संविधान में इस अभिष्ट की प्राप्ति को गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। यही अवधारणा सामाजिक कल्याण की दिग्दर्शिका है। इसीलिए उच्चतम न्यायालय ने सामाजिक न्याय की अवधारणा को अनुपूरित कराने के लिए राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को मूलाधिकारों पर प्राथमिकता देते हुए भाग ४ को 'निर्वचन की पुस्तक' की संज्ञा दी है।[७] सेन्टर फार पब्लिक इनटरेस्ट लिटिगेशन बनाम भारत संघ[८] में जिसे 'टूजी स्पेक्ट्रम केसेज' कहा जाता है, उच्चतम न्यायालय ने प्राकृतिक संसाधनों के वितरण प्रणाली को सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में कार्यान्वित करने हेतु अनुच्छेद ३८, ३६, ४८, ४८ए तथा ५१ए(जी) के उपबन्धों को अत्यन्त गम्भीरता से रेखांकित किया है।

अवधारणात्मक पहलू : सामाजिक न्याय की अवधारणा समष्टि में व्यष्टि के मंगलोत्थान की दृष्टि से समग्रता है। यह वैयक्तिक अधिकार एवं लोक कल्याण के बीच सन्तुलन बनाये रखने का साधन है। सामाजिक न्याय भारतीय सांस्कृतिक जीवन की उस रेखा का स्पर्शन है जहाँ पर यह कहा गया है कि-

''अयं निजः परोवेत्ति, गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानाम् तुवसुधैव कुटुम्बकम्।।[९]

जहाँ समस्त लोक के कल्याण तथा सुखी रखने की कामना की जाती है। पूर्व मुख्य न्यायाधिपति गजेन्द्र गड़कर के अनुसार सामाजिक न्याय की अवधारणा समस्त प्रकार की असमानता को दूर कर सभी नागरिकों को सामाजिक स्वीकृति तथा आर्थिक गतिविधियों में समान अवसर प्रदान करने की अवधारणा है।[१०]

सामाजिक न्याय की अवधारणा को किसी एक परिभाषा के पिंजड़े में बन्द नहीं किया जा सकता। यह देश, काल, पात्र तथा परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित कलेवर धारण करती रहती है। न्यायाधिपति वी.आर. कृष्णा अय्यर के अनुसार जब अर्द्धरात्रि में स्वतन्त्रता की घोषणा की जा रही थी, तब समता, गरिमा तथा न्यूनतम मानवीय आवश्यकताओं की आपूर्ति की त्रिवेणी की एक धारा के रूप में सामाजिक न्याय की अवधारणा अवतरित हुई थी। आज न्यायायिक न्याय को सामाजिक न्याय का प्रहरी बनना है।[११] न्यायाधिपति गजेन्द्र गड़कर के अनुसार सामाजिक न्याय की अवधारणा न तो एक अन्य अवधारणा है और न हीं एक अतार्किक सिद्धान्तवादिता है। यह सामाजिक न्याय तथा आर्थिक न्याय का समन्वित रूप है। जब न्याय एवं स्वतन्त्रता आपस में मिल जाते हैं तब सामाजिक न्याय की अवधारणा अस्तित्व में आ जाती है।[१२]

वस्तुतः सामाजिक न्याय की अवधारणा प्रत्येक व्यक्ति को उपयोगी, सहभागी, संवेदनशील तथा स्वतः व्यक्तित्व का स्वामी मानती है। न्यायाधिपति के.एस. हेगड़े सामाजिक न्याय को नीतिनिर्देशक तत्वों का पुंजभूत रूप मानते हैं।[१३] अपनी पुस्तक 'जस्टिस एन्ड वियान्ड'[१४] में सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए माननीय न्यायाधिपति वी.आर. कृष्णा अय्यर ने यह कहा है कि सामाजिक न्याय की अवधारणा

एक औदार्यपूर्ण अवधारणा है जो यह मानकर चलती है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के साथ ऋजुता पूर्ण व्यवहार किया जाय। यदि किसी व्यक्ति के साथ उपचारात्मक पीड़ा का व्यवहार, अन्याय, अपर्याप्तता अथवा निर्योग्यता का व्यवहार उस कार्य के लिए किया जाता है, जिसके लिए वह उत्तरदायी नही है, तो ऐसे कार्य सामाजिक अन्याय की श्रेणी में आते हैं। **यह एक** स्वीकृत तथ्य है कि सामाजिक न्याय की अवधारणा की जड़े प्रत्येक व्यक्ति की मानवीय गरिमा की उस दैवीय ज्योति से जुड़ी है जहाँ व्यक्ति की सम्पूर्ण क्षमता एक सृजनात्मक परिवेश में पुष्पित होती है। मान गरिमा संविधान द्वारा स्वीकृत वह दैवत्य है जहाँ यह लिखा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति समान है।[१५]

विद्वान न्यायाधीश के अनुसार राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों तथा मानव संसाधनों का अधिकतम उपयोग एवं उनका इस प्रकार साम्यमूलक वितरण, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार प्राप्त हो सके, उत्पादनीय तथा वितरणीय सन्दर्भों में सामाजिक न्याय का यही पहलू है।[१६] उन्होंने यह रेखांकित किया है कि- "Social Justice is struggling to be born; constitutional organs must midwife its"[17]

अर्थात् सामाजिक न्याय की अवधारणा जन्म लेने के लिए संघर्ष कर रही है, सभी सांविधानिक अंगों को उसे उसी प्रकार जन्म लेने में सहायता करनी चाहिए जिस प्रकार बच्चे के जन्म लेते समय दाईयाँ सहायता करती है।

प्रसिद्ध विधि शास्त्री सी.के. एलेन सामाजिक न्याय की अवधारणा को एक अस्पष्ट अवधारणा की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार कुछ लोग इसे सम्पत्ति के वितरण या पुनर्वितरण की संज्ञा देते हैं तो कुछ इस अवसर की समता से जोड़ते हैं। परन्तु यह सही नहीं है, क्योंकि मानव समुदाय में समता हो ही नहीं सकती क्योंकि अवसर की समता को भुनाने के लिए सबमें समान क्षमता नहीं होती। सामाजिक न्याय की अवधारणा अस्तु के वितरणीय न्याय की अवधारणा से भिन्न है।

अतः सामाजिक न्याय की अवधारणा का आशय यही है कि मानव मानव की असमानता को दूर करने का प्रत्येक प्रयास किया जाना चाहिए तथा व्यक्ति के रूप के विकास में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं खड़ी की जानी चाहिए।[१८] यह माना जाता है कि सरकारों का साध्य सामाजिक न्याय की अवधारणा को अनुभूतित कराना है। इसको अनुभूतित कराने की प्रक्रिया तब तक निरन्तर चलती रहनी चाहिए, जब तक इस लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाय। अरस्तु ने न्याय की अवधारणा को समता की संकल्पना से जोड़ा था। उनके अनुसार समता की अवधारणा सुधारक (Corective Justice) तथा वितरणीय न्याय (Distributive Justice) से जुड़ी हुई है। सुधारक न्याय की अवधारणा समाज के सभी व्यक्तियों के बीच वस्तुओं के वितरण को रेखांकित करती है, जब कि वितरणीय न्याय व्यक्तियों के वैभिन्नय के सन्दर्भ में सापेक्षिक समता की अवधारणा को रेखांकित करती है। वर्तमान सन्दर्भों में न्याय की अवधारणा इस सामाजिकता को इंगित करती है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी स्थिति में ला दिया जाय ताकि जिसे प्राप्त करने के लिए विधि के अन्तर्गत अधिकृत है, वह उन्हें प्राप्त हो जाय, तथा जब तक कोई व्यक्ति विधि का उल्लंघन न करे, उसे किसी भी प्रकार के दण्ड का पात्र न बनाया जाय। विधि शब्द यहाँ केवल विधायिका द्वारा निर्मित विधि को ही घोषित नहीं करता, वरन् अपनी व्यापकता में इस शब्द से ऋजुता का मापदण्ड, युक्तियुक्त और न्यायिक मूल्य भी अभिप्रेत है।[१९]

वस्तुतः समता शब्द से मनुस्मृति में ''समता नचेत''[२०] के रूप में परिभाषित कर धन के विभाजन में बराबरी का संकेत किया गया है।

ऋग्वेद में भी यही कहा गया है कि-

''समानी व आकूतिः समाना हृदयानिवः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति''[२१]

अर्थात् तुम सबके संकल्प समान हो, तुम्हारा हृदय एक समान हो और मन एक समान हो जिससे तुम्हारा कार्य परस्पर पूर्ण रूप से संगठित हो। इसी तरह वहाँ यह भी कहा गया है कि ''अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरोषा वृधुः सौभगाय।''[२२]

अर्थात् न कोई श्रेष्ठ है, न कोई कनिष्ठ है सभी एक दूसरे के भाई हैं। सबको सबके हितों की रक्षा करते हुए सामूहिक रूप से सबके प्रगति का प्रयास करना चाहिए।

पाश्चात्य विधिशास्त्र में सामाजिक न्याय एवं समता की अवधारणा को प्राकृतिक अधिकारों से जोड़ा गया है। सिसरो[२३] जस्टिनियन इन्स्टीट्यूट[२४] तथा अल्पियन की कृतियों[२५] में यह स्पष्ट अवधारित किया गया है कि नैतिक अधिकारों के संदर्भ में प्रत्येक व्यक्ति समान है। मैग्ना कार्टा[२६], पेटिशन ऑफ राइट्स[२७], सामाजिक संविदावादी[२८] ने यही तथ्य रेखांकित किया है कि समता एक नैतिक अधिकारों की अवधारणा है और सभी को प्राप्त है।

प्रसिद्ध ब्रिटिश विधिशास्त्री ब्लैक स्टोन ने यह स्पष्टतः निरूपित किया है कि प्राकृतिक रूप से प्राप्त अधिकारों को सबको समान रूप से उपभोग करने का अधिकार है और

प्रत्येक मानवीय विधि का यही पावन लक्ष्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के इस अधिकार को संरक्षित करे तथा अनुभूतित कराये।[२६] **१७७६ की** अमरीकी स्वतंत्रता की घोषणा, फ्रांस की १७६१ की मनुष्य के अधिकारों की घोषणा, थामस पेन की कृतियाँ, १७७१ की अमरीकी संविधान की 'बिल ऑफ राइट्स' सभी में समता तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा को व्यवहृत करना राज्य का साध्य माना गया है।

सामाजिक न्याय की अवधारणा एक महत्वपूर्ण सांविधानिक अवधारणा है। इसे कार्यान्वित करने के लिए अनेक सांविधानिक, सांविधिक तथा सामुदायिक उपाय किए गए हैं। अस्पृश्यता का समापन, बंधुआ मजदूरों की मुक्ति, खाद्य सुरक्षा, राशन प्रणाली एवं अन्य उपाय भी प्रयुक्त हुए हैं। पर वास्तविकता यही है कि गरीबी, शोषण, गुलामी इन शब्दों को हटाया गया है, इनके अर्थ आज भी समाज में व्यापक रूप से कार्यरतता को चरितार्थ कर रहे हैं। भारत में आज भी गरीबी का अभिशाप सामाजिक न्याय के मंत्र को निरस्त कर रहा है। ६७ वर्षों की स्वतंत्र जीवन की धारा में आज भी अधिकांश गरीब न तो न्याय वितरण की प्रणाली को जानते हैं और न ही वे अपने उन अधिकारों को जानते हैं जिन्हें सामाजिक न्याय का कवच प्रदान किया गया है। विधि की जीवन रेखा जीवन की वास्तविकता की लकीरों से खिची जाती है, शुष्क तर्कों की लकीरों से नहीं। अभी मेकेन्सी ग्लोबल इन्स्टीट्यूट ने एक रपट प्रकाशित की है जिसके अनुसार भारत की आबादी के ६८० लाख लोगों के पास भोजन, कपड़ा, स्वास्थ्य, शिक्षा, पानी, मकान, स्वास्थ्यवर्धक वातावरण की न तो प्रास्थिति प्राप्त है और न ही इन्हें प्राप्त करने का कोई साधन उनके पास है।[३०] सामाजिक न्याय की सशक्तभित्ति आर्थिक प्रजातांत्रिकता है। अतः सामाजिक न्याय की अवधारणा को लकवाग्रस्त होने से बचाने के लिए गरीबों, शोषितों तथा दुर्बलतर वर्गों की आर्थिक समृद्धि के व्यावहारिक उपाय ही सामाजिक न्याय को वास्तविक मूल्यवत्ता प्रदान कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. Jurisprudence, 1948, p. 62.
2. The Indian Constitution, (1966) p. 50-51.
3. AIR 1958 SC 923.
4. AIR 1955 SC 70.
5. AIR 1965 SC 1643.
6. AIR 1958 SC 30.
7. Ashok Kumar Thakur v. Union of India, (2008) 6 SCC 1.
8. (2012) 3 SCC 1.
9. हितोपदेश मित्र लाभ/७४/२.
10. Law, Liberty and Social Justice, pp. 77, 1965.
11. Social Justice, SunSet or Dawn. Eastern Book Company, Lucknow, 1987, p. 59.
12. Law, Lawers and Judges, (1963) 2 SCJ 1.
13. Directive Principles of State Policy in the Constitution of India, 5JCPS.1.
14. 1980 p. 157.
15. Violence and Terrorism (1979) 4 SCC 6.
16. Justice and Beyond 1980, p. 158.
17. Law and Environmental Pollutions, p. 14
18. Aspects of Justice, Universal Law Publishing Co. Third Indian Reprint 2009, p. 31.
19. Constitutional Government and Democracy C.J. Fried Rich, Oxford 1966, p. 101.
20. 9/218.
21. Rigveda, 10/191
22. Rigveda 5/60-5.d
23. De figufus 1, 10, 28.
24. Ibid
25. Digest, 1.17.32
26. 1215
27. 1701
28. Hobbes, Locke, Rousseall.
29. (1765) 1 Common, Chapter I p. 123.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा | वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 | ISSN 0974-0074

पर्वतीय महिलाओं में पर्यावरणीय ज्ञान : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ प्रोफेसर जे०पी०पचौरी
❖ डा० किरन बाला

भारत के सन्दर्भ में ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रकृति के इर्द-गिर्द घूमती है, कृषि, पशुपालन, ईधन, चारा, पत्ती इसके आवश्यक अंग हैं। दूसरी तरफ घरेलू तथा खेती के अधिकतर कार्य महिलाएं ही करती हैं, खासतौर पर पर्वतीय क्षेत्रों में पुरूष रोजगार की तलाश में शहरों की ओर प्रवास करते हैं। फलस्वरूप सभी कार्यो की जिम्मेदारी महिलाओं पर ही होती है। भौगोलिक परिस्थितियाँ उन पर दोहरा दबाब ड़ालती हैं। पहला काम और दूसरा पर्यावरण असन्तुलन का जिसके कारण आये बदलाव से दिनचर्या, घास-चारा, लकड़ी एकत्रित करने के कार्य कठिन होते जा रहे है। जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादन मे भी कमी आ रही है। ऐसी स्थिति में यदि महिलाओं को पर्यावरण का ज्ञान होगा तो वे इसके संरक्षण में योगदान कर सकती हैं। प्रस्तुत अध्ययन पर्यावरण के प्रति पर्वतीय महिलाओं की अभिवृत्ति जानने का एक प्रयास रहा है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य एवं पर्यावरण का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पर्यावरण के साथ मनुष्य की अन्तःक्रिया बहुत व्यापक है। पर्यावरण का सम्बन्ध उन सभी दशाओं से हैं जो व्यक्ति को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। मैकाइवर का कथन है कि 'पर्यावरण जीवन के आरम्भ से ही नहीं, यहाँ तक कि उत्पादक कोष्ठो तक में विद्यमान है'[१]। प्रारम्भ में मनुष्य प्रकृति के साथ सन्तुलन बनाकर चलता था। किन्तु पिछले हजारों वर्षो में पर्यावरण में वे बदलाव नहीं हुए जो कि पिछले १००, २०० वर्षो में हुए हैं। इसी बदलाव के कारण पर्यावरण चर्चित विषय बन चुका है। पर्यावरण में हो रहें ये बदलाव पर्यावरण असन्तुलन पैदा कर रहे हैं। जिसका कारण एक तो यह है कि मनुष्य ने यह क्षमता प्राप्त कर ली है कि वह प्राकृतिक परिवेश में बदलाव कर सकता है।[२] जिसके नकारात्मक परिणामों के रूप में ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाएं जैसी समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। दूसरा यह कि आज औद्योगीकरण, शहरीकरण, बेतरकीब प्राकृतिक संसाधनों के दोहन ने भी समस्याओं को पैदा किया है। आई०पी०सी०सी० के अध्यक्ष आर०के० पचौरी वैज्ञानिक आधार पर बताते हैं कि ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन दुनियाँ के मुल्को में यदि इसी स्तर पर जारी रहा तो भू-मण्डल का औसत तापमान खतरनाक बिन्दु तक बढ़ जायेगा।[३] संयुक्त राष्ट्र की अर्न्तराष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन की ताजा रिपोर्ट बता रही है कि वायुमण्डल में बढ़ती कार्बन की मात्रा भूख, संसाधन विवाद, बाढ़ पलायन, जैसी समस्याओं को जन्म देगी, जिससे होने वाले नुकसान की भरपाई काफी मुश्किल है।[४] ऐसा नहीं है कि इसके लिए प्रयास नहीं किये जा रहे हैं। पर्यावरणीय नीति एवं प्रबन्धन पर करोड़ों रूपये खर्च किये जा रहे हैं लेकिन भ्रष्टाचार तथा सुनियोजित रणनीति के अभाव में दोनों ही स्तरों पर कार्यक्रम सफल नहीं हो पा रहे हैं। समस्या जस की तस बनी हुई है। ऐसे समय में पर्यावरण से जुड़े हर पहलू को समझने की नितान्त आवश्यकता है।

यद्यपि पर्यावरण इस भू-मण्डल के प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक है। पर्यावरण विनाश अनैतिक है किन्तु प्रत्येक की अन्तःक्रिया का स्वरूप भिन्न है। विषय यह है कि पर्यावरण की समस्याओं से कैसे निपटा जाये। कारण कुछ भी हो किन्तु इससे समाज का हर वर्ग प्रभावित होता है। पर्यावरण का मुद्दा राजनैतिक व आर्थिक कारणों से भी जुड़ा हुआ है जिसके कारण संसाधनो का असमान वितरण होता रहा है।[५]

भारत के सन्दर्भ में ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रकृति के इर्द-गिर्द घूमती है, कृषि, पशुपालन, ईधन, चारा, पत्ती इसके आवश्यक अंग हैं। दूसरी तरफ घरेलू तथा खेती के अधिकतर कार्य महिलाएं ही करती है, खासतौर पर पर्वतीय क्षेत्रों में पुरूष रोजगार की तलाश में शहरों की ओर प्रवास करते हैं। फलस्वरूप सभी कार्यो की जिम्मेदारी महिलाओं पर ही होती है। भौगोलिक परिस्थितियाँ उन पर दोहरा दबाब ड़ालती हैं। पहला काम और दूसरा पर्यावरण असन्तुलन का जिसके कारण आये बदलाव से दिनचर्या, घास-चारा, लकड़ी एकत्रित करने के कार्य कठिन होते जा रहे है। जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादन मे भी कमी आ रही है। घास-चारा लकड़ी की तलाश में इन महिलाओं का

❑ अध्यक्ष, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, एस०एस०डी०पी०सी० गर्ल्स (पी०जी०) कॉलेज, रूड़की (उत्तराखण्ड)

पूरा दिन बर्बाद हो जाता है। प्रति व्यक्ति खाद्यान में कमी आयी है वहीं बेमौसम बरसात, ओलावृष्टि से फसलों को ५० प्रतिशत से भी अधिक नुकसान हुआ है। यदि अभी भी हम पर्यावरण के प्रति सचेत नहीं हुए तो और भी गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। अतः पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति, ज्ञान को जानना आवश्यक है। यदि हमे पर्यावरण के प्रति ज्ञान होगा तो पर्यावरण संरक्षण में भूमिका निभा सकते हैं। इस दृष्टिकोण से भी महिलाओं में पर्यावरण के सम्बन्ध में ज्ञान का अध्ययन प्रासंगिक है जिसके अन्तर्गत पर्यावरण का अर्थ, पर्यावरणीय समस्याएं, प्रदूषण, आदि विषयों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रचना : प्रस्तुत अध्ययन पर्वतीय जनपद चमोली के जोशीमठ विकास खण्ड पर आधारित है। जिसकी ४६ ग्राम पंचायतों में से १० का चयन क्रमांक सूची विधि से किया गया, जिसमें से १८ से ४६ आयुवर्ग की कुल १२६२ महिलाओं में से ३०-३० सूचनादाताओं का चयन दैव निदर्शन की लॉटरी प्रणाली से किया गया। अतः कुल ३०० महिला सूचनादाताओं को अध्ययन हेतु चयनित किया गया।

अध्ययन के अन्तर्गत प्राथमिक तथ्यों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची तथा अवलोकन के माध्यम से किया गया, द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु पुस्तकें, शोध ग्रन्ध, पत्र पत्रिकाएं, प्रशासनिक आकड़ों आदि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

१ पर्यावरण के सम्बन्ध में महिलाओं के ज्ञान का अध्ययन करना।

२ पर्यावरणीय समस्याओं के विषय में महिलाओं की जानकारी का विश्लेषण करना।

३ प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के सम्बन्ध में महिलाओं का दृष्टिकोण ज्ञात करना ।

उपलब्धियॉं : पर्यावरण की जानकारी एवं अर्थ

वर्तमान समय में पर्यावरण शब्द अत्यधिक प्रचलित है। पहले इसके लिए वातावरण शब्द का प्रयोग किया जाता था। सर्वप्रथम जी० एम० ओझा ने आज से लगभग २७ वर्ष पूर्व पर्यावरण शब्द को प्रयुक्त किया था।[६] पर्यावरण परि व आवरण से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है चारों ओर का वातावरण। किन्तु व्यापक अर्थ में चारों ओर की प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दशाएं जो हमें प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रभावित करती हैं पर्यावरण हैं।

सारिणी संख्या-०१
पर्यावरण की जानकारी एवं अर्थ

	पर्यावरण की जानकारी		पर्यावरण का अर्थ					
	हाँ	नहीं	पेड़-पौधे	आस-पास का वातावरण	समाजिक आर्थिक परिवेश	जीव-जन्तु	उपरोक्त सभी	जानकारी नहीं है
आवृत्ति	२५०	५०	५४	६५	८	८	७७	३८
प्रतिशत	८३.३३	१६.६७	२१.६०	२६	३.२०	३.२०	३०.८०	१५.२०

उपर्युक्त सारणी (सं.१) से स्पष्ट होता है कि ८३.३३ प्रतिशत महिलाएं पर्यावरण की जानकारी रखती हैं, जबकि १६.६७ प्रतिशत महिलाएं पर्यावरण की जानकारी नहीं रखती है वे पर्यावरण शब्द से अनभिज्ञ हैं।२१.६ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार पेड़-पौधे ही पर्यावरण है। २६ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार आस-पास का वातावरण पर्यावरण है। ३.२ प्रतिशत महिलाएं सामाजिक-आर्थिक परिवेश को पर्यावरण समझती है, ३.२ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार जीव- जन्तु ही पर्यावरण है।३०.८ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार उपरोक्त सभी पर्यावरण के अन्तर्गत आते हैं। १५.२ प्रतिशत महिलाओं को इस विषय में जानकारी नहीं हैं।

उपभोक्तावादी संस्कृति से पर्यावरण को क्षति एवं स्वस्थ पर्यावरण का महत्व : बढ़ती जनसंख्या के साथ-साथ संसाधनों का उपयोग भी बढ़ने लगा। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप संसाधनों का दोहन और भी तेजी से होने लगा। संसाधनों का अधिक दोहन ही उपभोक्तावादी संस्कृति का घोतक है।'आज भूमि माता है मैं उसका पुत्र हूँ'[७] की भावना नहीं रह गई है बल्कि मनुष्य व प्रकृति का सम्बन्ध भोग वस्तु व उपभोक्ता की हो गई है जिसमें आत्मीयता व सामाजिकता का भाव समाप्त हो गया है।

सारिणी संख्या-०२
उपभोक्तावादी संस्कृति से पर्यावरण को क्षति एवं स्वस्थ पर्यावरण का महत्व

	उपभोक्तावादी संस्कृति से पर्यावरण को क्षति			स्वस्थ पर्यावरण का महत्व			
	हाँ	नहीं	पता नहीं	अत्यधिक	मध्यम	बहुत कम	पता नहीं
आवृत्ति	१८२	२२	६६	२६४	२५	४	७
प्रतिशत	६०.६७	७.३३	३२	८०	८.३३	१.३३	२.३३

सारणी सख्या २ से स्पष्ट है कि ६०.६७ प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि उपभोक्तावादी संस्कृति से पर्यावरण को हानि हुई है, ७.३३ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार पर्यावरण पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। ३२ प्रतिशत को इसके बारे में जानकारी नहीं हैं। ८८ प्रतिशत महिलाएं पर्यावरण को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानती हैं, ८.३३ प्रतिशत महिलाएं मध्यम, १.३३ प्रतिशत महिलाएं पर्यावरण को कम महत्वपूर्ण मानती है, वहीं २.३३ प्रतिशत महिलाओं को इस विषय में जानकारी नहीं है। अत अधिकांश महिलाओं को पर्यावरण के महत्व का ज्ञान है।

पर्यावरणीय समस्याओं के विषय में ज्ञान

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ता ही जा रहा है। विश्व के २१ औद्योगिक देश वायुमण्डल में ८०प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड छोड़ते हैं। यदि हम समय पर जागृत नहीं हुए तो पृथ्वी के विनाश का कारण ग्लोबल वार्मिंग ही होगा। परिणामस्वरूप हिमालय की बर्फ तीव्र गति से पिघलती है। पिछले १०० वर्षों में लगातार यह प्रक्रिया चल रही है। गढ़वाल हिमालय स्थित गंगोत्री ग्लेशियर हर वर्ष ३० मीटर, पिन्डारी ग्लेषियर १३ मीटर की दर से सिमट रहा है।[८] इस प्रघटना से समुद्र के जल स्तर में भी बढ़ोतरी होती है।हिमालय की बर्फ के पिघलने,जलवायु परिवर्तन, ग्रीन हाउस प्रभाव जैसी प्राकृतिक प्रकोप की घटनाओं के बारे में महिलाओं की जानकारी से सम्बन्धित प्रश्नों का विष्लेषण किया गया।

सारिणी संख्या-०३
पर्यावरणीय समस्याओं के विषय में ज्ञान

	हिमालय की बर्फ का पिघलना			ग्रीन हाउस प्रभाव			जलवायु परिवर्तन			ग्लोबल वार्मिंग		
	हाँ	नही	पता नहीं	हाँ	नही	पता नहीं	हाँ	नही	पता नहीं	हाँ	नहीं	पता नहीं
आवृत्ति	२४०	३	३३	७५	१६५	६०	२७३	९	१८	१२२	९	१६९
प्रतिशत	८६.६६	१.०८	११.६६	२५	५५	२०	९१	३	६	४०.६७	३	५६.३३

सारणी संख्या ३ से स्पष्ट है कि ८६.६६ प्रतिशत महिलाएं हिमालय की बर्फ के पिघलने को पर्यावरणीय समस्या मानती है,१.०८ प्रतिशत इसे पर्यावरणीय समस्या नहीं मानती है, जबकि ११.६६ प्रतिशत को इस विषय में कोई ज्ञान नहीं हैं। २५ प्रतिशत महिलाओं को वैज्ञानिक शब्दावली ग्रीन हाउस प्रभाव के बारे में जानकारी है, ५५ प्रतिशत को जानकारी नहीं है वहीं २० प्रतिशत को इस विषय का ज्ञान ही नहीं हैं। ९१ प्रतिशत को यह जानकारी है कि पहले की तुलना में जलवायु परिवर्तन हो रहा है, ३ प्रतिशत यह मानती है कि जलवायु परिवर्तन नहीं हो रहा है, ६ प्रतिशत को इस विषय की जानकारी नहीं हैं। ४०.६७ प्रतिशत ग्लोबल वार्मिंग से पृथ्वी को सर्वाधिक खतरा मानती हैं, ३ प्रतिशत खतरे के रूप में नहीं देखती, जबकि ५६.३३ प्रतिशत को इसके शाब्दिक अर्थो की भी जानकारी नहीं हैं।

उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था के स्रोत एवं दोहन का स्वरूप : उत्तराखण्ड देश का पर्वतीय राज्य है जिसकी भौगोलिक परिस्थितियाँ अन्य प्रदेशों से अलग व विषम है। अर्थव्यवस्था का मुख्य स्रोत कृषि, वन व नदियाँ हैं। यहाँ के वनों से महंगी इमारती लकड़ियाँ व औषधियुक्त जड़ी-बूटियाँ प्राप्त होती हैं। पूरे प्रदेश में भू-भाग का ६७ प्रतिशत भाग वनाच्छादित है।[९] वहीं अब ४५.८ प्रतिशत भू-भाग पर ही जंगल रह गये है।[१०]

यहाँ की नदियों पर बड़ी-बड़ी जल विद्युत परियोजनाओं के बनने से स्थानीय लोगों को हानि हुई है। उनके वन व गाँव डूब क्षेत्रों में आने से उन्हें अपनी जगह से विस्थापित होना पड़ा, जिसके बदले उन्हें उचित मुआवजा न मिलने से उन पर भी नकारात्मक असर पड़ा है।

सारिणी संख्या-०४

उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था के स्रोत प्राकृतिक संसाधन एवं उनके दोहन का स्वरूप

मुख्यस्रोत	आवृति	प्रतिशत	दोहन का रूप	आवृति	प्रतिशत
हाँ	२८०	६३.३४	समावेशी सामाजिक आर्थिक विकास	२४०	८५.७१
नहीं	४	१.३३	जल विद्युत परियोजनाओं का निर्माण	०	०
पता नहीं	१६	५.३३	उद्योग धन्धे हेतु	३२	११.४३
			उपरोक्त सभी	८	२.८६
योग	**३००**	**१००**	**योग**	**२८०**	**१००**

सारणी संख्या ४ से स्पष्ट है कि ६३.३४ प्रतिशत सूचनादाताओं का मानना है कि प्राकृतिक संसाधन उत्तराखण्ड अर्थव्यवस्था के मुख्य स्रोत हैं वहीं १.३३ प्रतिशत सूचनादाता इससे असहमत तथा ५.३३ प्रतिशत सूचनादाताओं को इस विषय में ज्ञान नहीं हैं। ८५.७१ प्रतिशत सूचनादाताओं का मानना है कि प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का स्वरूप समन्वयित सामाजिक-आर्थिक विकास होना चाहिए। कोई भी सूचनादाता जल विद्युत परियोजना के निर्माण को प्राकृतिक संसाधन के दोहन का स्वरूप नहीं मानतीं, ११.४३ प्रतिशत सूचनादाता उद्योग धन्धों हेतु व २.८६ प्रतिशत सूचनादाता उपरोक्त सभी को प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का स्वरूप मानती हैं।

पर्यावरण प्रदूषण कम करने तथा संतुलित पर्यावरण का उपयुक्त विकल्प : वर्तमान युग में हम सिर्फ संसाधनों की सीमितता पर बल देकर विकास कार्यों को नहीं रोक सकते अपितु विकास कार्यों का सन्तुलन प्रकृति के साथ बनाए रखना भी उतना ही जरूरी है। पर्यावरण प्रदूषण को सन्तुलित करने का सबसे बड़ा विकल्प वृक्षारोपण है। इस संदर्भ में जनसंख्या नियन्त्रण के साथ ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत पर जोर देने की भी जरूरत है। ग्रामीण परिवेश में महिलाओं की वनों पर निर्भरता को कम करने लिए उन्हें सुविधाएं देनी आवश्यक हैं।

सारिणी संख्या-०५

पर्यावरण प्रदूषण कम करने तथा संतुलित पर्यावरण का उपयुक्त विकल्प

प्रदूषण कम करने हेतु उपाय	आवृति	प्रतिशत	संतुलित पर्यावरण का उपयुक्त विकल्प	आवृति	प्रतिशत
प्लास्टिक पुर्नचक्रण	४५	१५	सामाजिक अर्थिक समानता	११०	३६.६७
उद्योगों का शहर से दूर	४	१.३३	पर्यावरण आधारित विकास	६१	२०.३३
रसोई गैस का प्रयोग	१२२	४०.६६	सरकारी नीतियों में परिवर्तन	७८	२६
पर्यावरण शिक्षा	८१	२७	पर्यावरण आधारित विकास एवं नीतियाँ	५	१.६७
वृक्षारोपण	११	३.६६	सामाजिक अर्थिक समानता एवं नीतियाँ	३६	१२
उपर्युक्त सभी	३७	१२.३३	उपर्युक्त सभी	१०	३.३३
योग	**३००**	**१००**	**योग**	**३००**	**१००**

उपर्युक्त सारणी संख्या ५ से स्पष्ट है कि १५ प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि प्रदूषण रोकने का बेहतर उपाय प्लास्टिक पुनर्चक्रण, १.३३ प्रतिशत का मत है उद्योगों का शहर से दूर होना, ४०.६६ प्रतिशत का मत है कि रसोई गैस

के प्रयोग से, २७ प्रतिशत महिलाएं मानती हैं प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरणीय शिक्षा देकर, ३.६६ प्रतिशत महिलाओं का मानना है वृक्षारोपण से तथा १२.३३ प्रतिशत महिलाओं का मानना है उपर्युक्त सभी उपायों से प्रदूषण को रोका जा सकता है। ३६.६७ प्रतिशत सूचनादातात्रियों का मानना है कि सन्तुलित पर्यावरण का उपयुक्त विकल्प सामाजिक आर्थिक समानता हैं, २०.३३ प्रतिशत सूचनादाता सन्तुलित पर्यावरण का उपयुक्त विकल्प पर्यावरण आधारित विकास मानती हैं। २६ प्रतिशत का मानना है कि सरकारी नीतियों में बदलाव से सन्तुलित पर्यावरण होगा, १.६७ प्रतिशत सूचनादात्रियों का मानना है कि पर्यावरण आधारित विकास एवं सरकारी नीतियों में बदलाव, १२ प्रतिशत का मानना है सामाजिक-आर्थिक समानता व नीतियों में बदलाव तथा ३.३३ प्रतिशत सूचनादाताओं का मानना है उपरोक्त सभी विकल्प सन्तुलित पर्यावरण के विकल्प हैं।

निष्कर्ष : अधिकाश ८३.३३ प्रतिशत महिलाओं ने पर्यावरण शब्द किसी न किसी रूप में सुना है। वे पर्यावरण के अर्थ को भी भली भॉति समझती हैं। अधिकतर ६०.६७ प्रतिशत महिला सूचनादाता इससे सहमत हैं कि भोगवादी संस्कृति से पर्यावरण को अपार क्षति हुई है। अधिकतर ८६.६६प्रतिशत महिलाएं हिमालय की बर्फ का तेजी से पिघलने को पर्यावरण के लिए खतरा मानती हैं। वहीं ५५ प्रतिशत महिला सूचनादाता ग्रीन हाउस प्रभाव, ५६.३३ प्रतिशत ग्लोबल वार्मिंग के विषय में नहीं जानती हैं तथा ६१ प्रतिशत इससे सहमत हैं कि वर्तमान में जलवायु परिवर्तन हो रहा है। अधिकांशतः (६३.३४ प्रतिशत) सूचादात्रिओं का मानना है कि प्राकृतिक संसाधन उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था के प्रमुख स्त्रोत हैं किन्तु इनका दोहन समन्वयित सामाजिक अर्थिक विकास को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। ३६.६७ प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि पर्यावरण सन्तुलन के लिए आवश्यक है सामाजिक-आर्थिक समानता स्थापित की जाये जिससे पर्यावरण जैसे संवेदनशील विषय पर आम जन सोच सके।

विपुलांशतः महिलाएं पर्यावरण तथा पर्यावरण सम्बन्धी चुनौतियों का समझती हैं, यद्यपि महिला सूचनादाता ग्रीन हाउस प्रभाव, ग्लोबल वार्मिंग जैसे वैज्ञानिक शब्दावली से अनभिज्ञ हैं किन्तु इसके बाबजूद इनके अर्थ को स्पष्ट करने पर वे तुरन्त प्रत्युत्तर देती हैं जो पर्यावरण के प्रति उनकी सकारात्मक अभिवृत्ति को दर्शाता है। सूचनादात्रिओं का यह मानना है कि प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, समावेशी विकास के लिए होना चाहिए जो इस ओर संकेत करता है कि महिलाओं को 'भावी पीढ़ी'के लिए पर्यावरण आधारित विकास भी अत्यावश्यक है, इसका ज्ञान है।

सन्दर्भ

१. मैकाइवर एण्ड पेज, 'सोसायटी', मैकमिलन, १९६२, पृ. ७३
२. रंगराजन, महेश, 'भारत में पर्यावरण के मुद्दे', पियर्सन प्रकाशन, २०१०, पृ. १३
३. इण्डिया टुडे, २३ दिसम्बर २००६, पृ. ११
४. अनिल जोशी, संम्पा लेख, अमर उजाला, २२ अप्रैल २०१५, पृ. १२
५. गाडगिल माधव, गुहा, रामचन्द 'हालात-ए-हिन्दुस्तान' (भारत का समकालीन पारिस्थिति की परिदृश्य) पहाड़ पोथी, २००४, पृ. ११४
६. कुलश्रेष्ठ, नीलम, 'हरा-भरा रहे पृथ्वी का पर्यावरण', सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, २००८, पृ. १४
७. अथर्ववेद १२, १, १२, 'माता भूमि पुत्रों अहं पृथ्व्यिा'
८. कुरूक्षेत्र, जून २००६ए अंक-८ पृ. ६
९. Ghildyal, m.c. And A. Banerjee, "Status of Participatory Management in Uttarakhand Himalayas" Paper Presented at Regional Workshop on Participatory Forest Management Implications for Policy and Human Resource Development, Kunming, People"s Republic of China, 1998.
१०. अमर उजाला, १५जून, २०१३, पृ. १२

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 1, जनवरी-जून 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

प्रगतिशील भारतीय समाज में बढ़ता अपराध और पुलिस : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (जनपद उधम सिंह नगर के विशेष संदर्भ में)

❑ रवि कान्त कुमार
❖ डॉ. कमला शर्मा

भूमिका : भारत एक विकासशील समाज है। बदलते समय के साथ समाज ने विकास के हर क्षेत्र में प्रगति के नित्य नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। नवीन खोज, आविष्कार, तकनीकी प्रसार, खेल, आर्थिक जगत, शिक्षा एवं स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में भारतीय समाज ने मजबूती के साथ कदम बढ़ाये हैं। प्रगति की इस प्रक्रिया ने समाज में विकास के नित्य नये द्वार सृजित करने के साथ-साथ समाज में आपराधिक गतिविधियों को भी बढ़ावा दिया है। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के बढ़ते प्रभाव ने सामाजिक नियंत्रण के पारंपरिक अनौपचारिक साधनों को शिथिल बना दिया है। समकालीन समाज में लॉ इनफोर्समेंट एजेंसी जैसे औपचारिक साधनों का बढ़ता महत्व सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधनों के घटते प्रभाव का ही परिणाम है। वर्तमान लोकतांत्रिक समाज में आपराधिक घटनाओं पर नियंत्रण स्थापित करना एवं समाज में कानून-व्यवस्था को बनाये रखना राज्य का परम दायित्व बन गया है। अपराध कोई नवीन घटना या विचारधारा नहीं है। यह मानवीय एवं सामाजिक विकास के आरंभिक समय से अब तक सार्वभौमिक रूप में विभिन्न स्वरूपों एवं दरों के साथ मौजूद रहें हैं। हाल के वर्षों में अपराध की प्रकृति एवं दर में अकल्पनीय परिवर्तन एवं वृद्धि की दशा ने समाज के समक्ष गंभीर चुनौती खड़ी कर दी है। भारत में सन २००३ में कुल ५४६४८१४ आपराधिक घटनायें घटित हुयीं जो २०१३ में बढ़कर ६६४०३७८ हो गयीं।[१] इस प्रकार पिछले एक दशक में अपराधिक घटनाओं में २०.८ प्रतिशत वृद्धि हुई है। समकालीन प्रजातांत्रिक समाज में मानवाधिकार संरक्षण एवं कानून व्यवस्था बनाये रखना एक लोक कल्याणकारी राज्य का दायित्व है। तीव्र गति से बढ़ती मानवाधिकार हनन, असामाजिक एवं गैरकानूनी घटनाओं पर नियंत्रण स्थापित करने की जिम्मेदारी आज राज्य संचालित पुलिस प्रशासन की है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पुलिस को अपराध निवारण एवं अन्वेषण करना, अपराधियों पर अभियोग चलाना तथा कानून व्यवस्था बनाये रखना आदि कर्तव्यों का निर्वहन करना होता है। इस कार्य की सफलता के लिए पुलिस जनता के बीच मधुर संबंध और आपसी समझ होना अनिवार्य है। इन दोनों के बीच व्याप्त गलतफहमी समाज में बढ़ते अपराध का एक महत्वपूर्ण कारण है। अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए पुलिस को कई बार कानूनी मजबूरियों की वजह से ऐसी अप्रिय कार्यवाही करनी पड़ती है जिससे लोगों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह परिस्थिति पुलिस-जनता के बीच की खाई को बढ़ाने का काम करती है। पुलिस प्रशासन की कार्य-प्रणाली तथा उनकी व्यवसायिक विवशता और कर्तव्य निर्वहन के दौरान जाने-अनजाने आमजनों के अधिकारों की उपेक्षा उनकी छवि को धूमिल कर देती है।[२] राष्ट्रीय पुलिस आयोग के अध्यक्ष ने पुलिस की वर्तमान छवि से गृह मंत्रालय को अवगत कराते हुए अपनी पहले रिपोर्ट में लिखा था "जो कुछ हमने देख तथा सुन

पुलिस प्रशासन सामाजिक नियंत्रण का एक औपचारिक साधन है। सामाजिक प्रगति के साथ ही सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधनों के टूटते बंधनों ने औपचारिक साधनों को महत्वपूर्ण बना दिया है। समाज में अपराध का बढ़ता ग्राफ आज पुलिस प्रशासन के लिए गंभीर चुनौती बन गया है। समाज के समक्ष उत्पन्न इस प्रकार की परिस्थिति के लिए अन्य अनेक कारकों के साथ ही पुलिस-प्रशासन की कार्य प्रणाली और उनमें व्याप्त कमियाँ भी बहुत हद तक जिम्मेबार हैं। समाज में बढ़ती आपराधिक प्रवृति पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए पुलिस-जनता संबंध, पुलिस-प्रशासन की कार्य प्रणाली और उनमें व्याप्त कमियों को जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र पुलिस प्रशासन की इन्हीं कमियों और इनके अपराध पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन पर आधारित है।

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र विभाग, राधे हरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर (उत्तराखण्ड)
❖ विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, राधे हरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर (उत्तराखण्ड)

रखा है, पुलिस के जालिम व्यवहार और ज्यादतियों के खिलाफ जनता द्वारा शिकायतों की उत्तरोत्तर वृद्धि के विषय में हम अत्यधिक दुखी तथा गंभीरतापूर्वक चिन्तित हुए हैं। इससे साफ जाहिर है कि पुलिस द्वारा अधिकारों के अतिदुरूपयोग को रोकने के वर्तमान प्रबंधों के प्रति और देश की कानून व्यवस्था तथा आपराधिक स्थिति से कारगर रूप से निपटने में पुलिस की दक्षता के प्रति, जनता का विश्वास शीघ्रतापूर्वक उठता जा रहा है।[३]

पुलिस और समाज एक दूसरे के आवश्यक अंग हैं। पुलिस समाज पर निर्भर है तथा समाज को अपनी सुरक्षा और नियमों को लागू करने के लिए पुलिस की आवश्यकता है। एक प्रजातांत्रिक समाज में पुलिस की भूमिका एक सामाजिक सेवा संस्था तथा प्रजातांत्रिक प्रणाली के संरक्षक की है। भारतीय विकासशील समाज में पुलिस का उत्तरदायित्व और अधिक है। उसे अपनी छवि जनता की मित्र, सलाहकार एवं दार्शनिक के रूप में कार्य करते हुए सुधारनी होगी। पुलिस व्यवस्था के महत्व के संदर्भ में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि पुलिस गलत और सही के चौराहे पर खड़ा एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी जिम्मेदारी सही की रक्षा करना और गलत को पकड़ना है। अपनी सर्वश्रेष्ठ भूमिका में वह अपने आप में ही एक संरक्षक, एक मार्गदर्शक, एक सामाजिक कार्यकर्ता तथा व्यवस्था और प्राधिकार का प्रतीक है।[४]

समाज सामाजिक संबंधों की एक जटिल व्यवस्था है। यह व्यवस्था मानवीय व्यवहार पर निर्भर करती है। मानव का अमानवीय, गैर सामाजिक एवं गैर-कानूनी व्यवहार ही अपराध कहा जाता है। बदलते सामाजिक परिवेश में मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों की एक लंबी सूची तैयार की जा सकती है। बढ़ती तीव्र जनसंख्या, प्रवास, शैक्षिक बेरोजगारी, सामाजिक-सांस्कृतिक कारक, आर्थिक परिस्थिति, लॉ इनफोर्समेंट एजेंसी की विफलता, राजनीतिक शक्ति का दुरूपयोग, आम जनता का कर्तव्य विमुख होना, उपभोक्तावादी प्रवृति आदि कारकों नें समाज में नित्य नये अपराध को जन्म दिया है। इनमें लॉ इनफोर्समेंट एजेंसी की विफलता समाज में बढ़ते अपराध का प्रमुख कारण माना जाता है। आज समाज में घटने वाली हर छोटी-बड़ी घटनाओं के लिए पुलिस-प्रशासन को ही जिम्मेदार माना जाता है। पुलिस-प्रशासन जनसहयोग के अभाव और राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण निष्पक्ष रूप में अपराध अन्वेषण का कार्य नहीं कर पाता है। साक्ष्य के अभाव में बड़े-बड़े अपराधी आसानी से बच जाते हैं, जबकि आमजन निर्दोष होते हुए भी कभी-कभी गुनहगाार की जिन्दगी जीने को विवश हो जाते हैं। समाज में इस प्रकार की बढ़ती प्रवृति ने अपराध की वृद्धि के अनुकूल परिस्थिति को तैयार किया है। इस प्रकार की परिस्थिति पर नियंत्रण करने के लिए पुलिस प्रशासन को आमजनों के सहयोग की नितांत आवश्यकता है। इसके अभाव में पुलिस प्रशासन द्वारा समाज में कानून-व्यवस्था स्थापित करना टेढ़ी खीर साबित हो रहा है।

उद्देश्यः प्रस्तुत शोध-पत्र के सम्पादन हेतु निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है-

१ पुलिस प्रशासन और जनता के बीच के अंतः संबंधों का अध्ययन करना;

२ पुलिस व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के मूल कारणों से अवगत होना;

३ पुलिस बलों के दैनिक कार्य के दौरान आने वाली समस्याओं का अध्ययन करना;

४ समय के साथ पुलिस प्रशासन की बदलती जिम्मेदारियों का अध्ययन करना।

अध्ययन क्षेत्र : प्रस्तुत शोध-पत्र के सम्पादन हेतु अध्ययन क्षेत्र के रूप में उधम सिंह नगर का चयन किया गया है। यह आपराधिक दृष्टिकोण से उत्तराखण्ड का अत्यन्त संवेदनशील जनपद है। आपराधिक घटनाओं के आधार पर यह उत्तराखण्ड में हरिद्वार जनपद के बाद दूसरे पायदान पर है। यहाँ का बदलती जनसंख्यात्मक परिदृश्य, भौगोलिक परिस्थिति, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन, शैक्षिक एवं औद्योगिक विकास ने सामाजिक विकास के साथ-साथ आपराधिक गतिविधियों के लिए भी जमीन तैयार करने का कार्य किया है। एन. सी आर. बी. के २०१३ के ऑकड़ों के अनुसार उत्तराखण्ड में कुल १७७६६० आपराधिक घटनायें घटित हुयी जिनमें ६५४६ माामले आई. पी. सी. तथा १६८४१४ मामले एस. एल. एल. के अंतर्गत आते थे। इनमें से २४२६ आई. पी. सी. के मामले केवल उधम सिंह नगर में घटित हुई है।[५] समाज में घटित अपराध के आँकड़े एवं यहाँ की अन्य परिस्थितियों प्रस्तुत अध्ययन कार्य हेतु इस क्षेत्र को महत्वपूर्ण बना देती है।

शोध प्रारूपः- प्रस्तुत शोध-पत्र मौलिक रूप से प्राथमिक तथ्यों पर आधारित है। इस पत्र के सम्पादन हेतु द्वितीयक तथ्यों का भी प्रयोग किया गया है। अध्ययन की विशेषता एवं महत्व के आधार पर प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु चयनित अध्ययन क्षेत्र के ५० पुलिस कर्मचारियों एवं अधिकारियों का चयन उद्‌देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया है। इन चयनित उत्तरदाताओं से साक्षात्कार द्वारा शोध विषय से संबंधित सूचनाओं को प्राप्त कर तथ्यों के रूप में संकलित कर

लिया गया। यह साक्षात्कार-अनुसूची में निहित प्रश्नों पर आधरित है। इस क्रम में यथासंभव अवलोकन विधि का भी प्रयोग किया गया है। द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं, इंटरनेट आदि का भी प्रयोग किया गया है।

उपलब्धियाँः प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली में पुलिस की सफलता जनता के सहयोग पर निर्भर करती है। इसके लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह जनता के सामने एक रचनात्मक एवं सहानुभूतिपूर्ण विभाग होने की छवि प्रस्तुत करे और इसी अभिप्राय से आजकल पुलिस प्रशिक्षण संस्थाओ में आधुनिकीकरण पर जोर दिया जा रहा है। पुलिस व्यवस्था को प्रभावशाली होने के लिए व अपने कर्तव्य निर्वहन के लिए यह आवश्यक है कि जनता और पुलिस के बीच में सौहार्दपूर्ण संबंध हों और पुलिस के विषय में लोगों के मन में शुभ भावना हो। यह तभी संभव है जबकि पुलिस भी जनता के बीच में अपना कानून पालन संबंधी कार्य सहानुभूति और कल्याणकारी अभिप्राय से करती हो।[६]

समकालीन समाज में आमजन अपने दैनिक कार्य के दौरान पुलिस से दूरी बनाये रखता है। समाज में पुलिस क्या कर रही है और क्या नहीं इसकी जानकारी उन्हें मीडिया के माध्यम से प्राप्त होती है। मीडिया के माध्यम से पुलिस की छवि को जिस रूप में आम जनता के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, उसकी वही धारणा बन जाती है। मीडिया के द्वारा अक्सर पुलिस के अवगुणों को तो प्रसारित किया जाता है लेकिन गुणों का प्रचार-प्रसार बहुत कम हो पाता है। आमजनों के बीच पुलिस की छवि को सुधारने एवं अपराध पर बेहतर नियंत्रण के लिए पुलिस का मीडिया एवं आमजन के बीच अंतःसंबंध का पाया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। सारणी क्रमांक ०१ में पुलिस और मीडिया तथा जनता के बीच के अन्तःसंबंध से संबंधित विचारों का वर्गीकरण किया गया है।

सारणी क्रमांक ०१

पुलिस प्रशासन, मीडिया तथा जनता के बीच के अंतःसंबंध

विचार	उत्तर					
	पूर्णतः सहमत	सहमत	तटस्थ	असहमत	पूर्णतः असहमत	योग
पुलिस और मीडिया के बीच संवाद का अभाव है	७ (१४)	३० (६०)	१ (२)	१० (२०)	२ (४)	५० (१००)
जनता और पुलिस के बीच अंतःसंबंध का अभाव है	९ (१८)	३६ (७२)	२ (४)	२ (४)	१ (२)	५० (१००)
बढ़ता अपराध पुलिस और समाज के बीच संवाद की कमी को दर्शाता है	११ (२२)	३० (६०)	४ (८)	३ (६)	२ (४)	५० (१००)

प्रस्तुत सारणी क्रमांक ०१ में पुलिस प्रशासन और मीडिया तथा जनता के बीच के अंतःसंबंध के संदर्भ में तीन प्रमुख प्रश्नों पर उत्तरदाताओं के विचारों को सारणीबद्ध किया गया है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है- 'पुलिस और मीडिया के बीच संवाद का अभाव है' विचार से सर्वाधिक ६० प्रतिशत उत्तरदाता सहमत और १४ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः सहमत हैं। २० प्रतिशत उत्तरदाता असहमत और ४ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः असहमत हैं। जबकि २ प्रतिशत उत्तरदाता तटस्थ हैं। 'जनता और पुलिस के बीच अंतःसंबंध का अभाव है' के बारे में सर्वाधिक ७२ प्रतिशत उत्तरदाता सहमत और १८ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः सहमत हैं। ४ प्रतिशत उत्तरदाता असहमत और २ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः असहमत हैं। जबकि ४ प्रतिशत उत्तरदाता तटस्थ हैं। 'बढ़ता अपराध पुलिस और समाज के बीच संवाद की कमी को दर्शाता है' के संदर्भ में सर्वाधिक ६० प्रतिशत उत्तरदाता सहमत और २२ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः सहमत हैं। ६ प्रतिशत उत्तरदाता असहमत, ४ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः असहमत तथा ८ प्रतिशत उत्तरदाता तटस्थ हैं।

भारत में उच्च स्तर का भ्रष्टाचार, शासन की गुणवत्ता में वृद्धि में बड़े अवरोधक के रूप में उभरकर सामने आया है। मानवीय लालच जहाँ एक तरफ सभी संस्थानों में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है वहीं दूसरी ओर भ्रष्ट लोगों को सजा देने की लचर नियंत्रण प्रणाली इसे और गति प्रदान करने का कार्य कर रही है। परिणामस्वरूप संसाधनों की अंधाधुंध बर्बादी हो रही

है। देश में भ्रष्टाचार ने अन्य विभागों की तरह पुलिस के प्रशासनिक विभाग को भी अपने चंगुल में ले लिया है। सीधी भर्ती प्रक्रिया से लेकर संसाधनों की खरीद फरोख्त तक हर क्षेत्र में कमोबेस भ्रष्टाचार के अंश फैले हुए हैं। पुलिस व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारणों में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक अवस्था को प्रमुख कारण माना जाता है। अध्ययन कार्य के दौरान पुलिस व्यवस्था में भ्रष्टाचार के विषय में उत्तरदाताओं के विचार को सारणी क्रमांक ०२ में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी क्रमांक ०२

पुलिस व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के मूल कारण

कारण	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
आर्थिक	१७	३४
सामाजिक	८	१६
शैक्षिक	०	०
राजनीतिक	२५	५०
योग	५०	१००

सारणी क्रमांक ०२ में पुलिस व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के मूल कारणों से संबंधित प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सर्वाधिक ५० प्रतिशत उत्तरदाता अपराध का मूल कारण राजनीतिक परिस्थितियों को मानते हैं। ३४ प्रतिशत उत्तरदाता आर्थिक एवं १६ प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक परिस्थितियों को अपराध का मूल कारण मानते हैं। कोई भी उत्तरदाता शैक्षिक परिस्थिति को अपराध का मूल कारण नहीं मानते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में बढ़ता अपराध मुख्य रूप से राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की देन है।

समाज में शान्ति व्यवस्था कायम रखना एवं यातायात को सुचारू रूप से जारी रखने के अलावा समाज एवं राष्ट्र के विकास में योगदान देने वाली क्रियाओं को अनवरत रूप से जारी रखना पुलिस दैनिक क्रिया कलाप का एक प्रमुख हिस्सा है। अपने दैनिक कार्य के सम्पादन के दौरान सामाजिक सहयोग का अभाव, असामाजिक तत्वों, सहयोगियों की कमी, नेतृत्व का अभाव, उच्च अधिकारियों के सहयोग का अभाव आदि में से किस प्रकार की समस्याएँ पुलिस को अधिक परेशान करती है। अध्ययन के महत्व के दृष्टिकोण से यह जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। इस विषय पर प्राप्त विचारों का वर्गीकरण सारणी क्रमांक ०३ में किया गया है।

सारणी क्रमांक ०३

पुलिस बलों के कार्य के दौरान आने वाली समस्याएं

विचार	संख्या	प्रतिशत
सामाजिक सहयोग का अभाव	२८	५६
असामाजिक तत्वों के कारण	५	१०
सहयोगियों की कमी	२	४
नेतृत्व का अभाव	४	८
उच्च अधिकारियों के सहयोग का अभाव	११	२२
योग	५०	१००

सारणी क्रमांक ०३ में पुलिस बलों के दैनिक कार्य के दौरान आने वाली समस्याओं के संदर्भ में उत्तरदाताओं के विचारों से संबंधित प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सर्वाधिक ५६ प्रतिशत उत्तरदाता दैनिक कार्यों में आने वाली समस्याओं का मूल कारण सामाजिक सहयोग का अभाव मानते हैं। १० प्रतिशत उत्तरदाता असामाजिक तत्वों, ४ प्रतिशत उत्तरदाता सहयोगियों की कमी, ८ प्रतिशत उत्तरदाता नेतृत्व का अभाव और २२ प्रतिशत उत्तरदाता उच्च अधिकारियों के सहयोग का अभाव को मूल कारण मानते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में बढ़ता अपराध का एक मुख्य कारण सामाजिक सहयोग का अभाव है जिसका एक मुख्य कारण पुलिस और जनता के बीच अन्तः संबंध का अभाव प्रतीत होता है।

विगत दो दशकों में समाज में आये परिवर्तन से पुलिस प्रशासन के कार्य क्षेत्र एवं उनकी जिम्मेदारियों में व्यापक परिवर्तन हुआ है। समाज में संयुक्त परिवार के विघटन एवं महिलाओं के बाह्य कार्य क्षेत्र में प्रवेश ने पुलिस की जिम्मेदारी में घर की सुरक्षा को भी सम्मिलित कर दिया है। सामाजिक नियंत्रण के पारंपरिक साधनों का कमजोर पड़ना, समाज में अनेक प्रकार की अराजक स्थिति को उत्पन्न कर रहा है। वर्तमान समय में पुलिस प्रशासन के समक्ष इससे संबंधित अनेक घटनाएँ सामने आती रहती हैं। समय के साथ पुलिस प्रशासन की बदलती जिम्मेदारियों के संबंध में उनके विचारों को जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे संबंधित उत्तरदाताओं के विचारों को सारणी क्रमांक ०४ में वर्गीकृत किया गया है।

सारणी क्रमांक ०४
समय के साथ पुलिस प्रशासन की बदलती जिम्मेदारियां

विचार	उत्तर					
	पूर्णतः सहमत	स्हमत	तटस्थ	असहमत	पूर्णतः असहमत	योग
बदलते सामाजिक परिदृश्य में सुरक्षा की जिम्मेदारी केवल पुलिस की है	५ (१०)	३ (६)	३ (६)	२७ (५४)	१२ (२४)	५० (१००)
पारम्परिक नियंत्रण की कमी ने पुलिस की जिम्मेदारी बढ़ायी है	१४ (२८)	३२ (६४)	० (०)	४ (८)	० (०)	५० (१००)

उपर्युक्त सारणी से सुस्पष्ट है कि बदलते सामाजिक परिदृश्य में सुरक्षा की जिम्मेदारी के सन्दर्भ में २४ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः असहमत हैं जबकि ५४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने असहमति व्यक्त की है। पारम्परिक सामाजिक नियंत्रण समूहों के प्रभाव में आयी कमी से पुलिस की जिम्मेदारी के बढ़ने के संबंध में २८ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः सहमत हैं जबकि ६४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति व्यक्त की है। कहना न होगा कि बदले परिवेश में पुलिस की जिम्मेदारी बढ़ने को अधिकतर लोग महसूस करते हैं लेकिन इस बढ़ी हुई जिम्मेदारी को अपना पेशागत दायित्व मानने को तत्पर नहीं हैं।

निष्कर्ष : उपर्युक्त पूर्ण के विश्लेषण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि समाज में पुलिस प्रशासन रूपी अपराध नियंत्रण प्रणाली सामाजिक अपेक्षाओं एवं अपने उद्देश्यों में विफल रही है। जहाँ अपराधी प्रवृति वाले साक्ष्य के अभाव में कानूनी शिकंजे से बाहर रहते हैं वहीं आमजन अपराधी नहीं होने पर भी कानूनी दण्ड के शिकार होते रहते हैं। इसके लिए पुलिस प्रशासन की कार्य प्रणाली जितना जिम्मेदार है उतना ही सामाजिक असहयोग की भावना भी। वर्तमान में राजनीतिक दलों ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए पुलिस प्रशासन को पंगू बना दिया है। अपराध के नित नये तरीकों ने जहाँ पुलिस प्रशासन की कार्य प्रणाली पर सवाल खड़े किये हैं वहीं सामाजिक आकांक्षाओं और सहयोग की भावनाओं पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। 'बढ़ता अपराध पुलिस और समाज के बीच संवाद की कमी' के संबंध में ६० प्रतिशत उत्तरदाताओं में अपनी सहमति व्यक्त की है। पुलिस व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के संबंध में सर्वाधिक ५० प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक कारण मानते हैं। 'बदलते सामाजिक परिदृश्य में सुरक्षा की जिम्मेदारी केवल पुलिस की है' तथ्यों के बारे में सर्वाधिक ५४ प्रतिशत सहमत नहीं हैं। वे मानते हैं कि जब तक समाज का सहयोग नहीं मिलेगा तब तक पुलिस प्रशासन द्वारा अपराध पर नियंत्रण सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है। ५६ प्रतिशत उत्तरदाता 'सामाजिक सहयोग का अभाव' से सहमत हैं।

पुलिस प्रशासन समकालीन समाज का प्रहरी है। एक सजग, कर्तव्य परायण एवं लोकप्रिय प्रहरी ही अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है। समाज में दिन-प्रतिदिन बढ़ता अपराध का ग्राफ प्रहरी की कार्य निष्ठा और समर्पण पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। समाज से अपराध को मिटाने का भार उठाये पुलिस-प्रशासन आज स्वयं अपराध की गर्त में धंसता जा रहा है। पुलिस और जनता के बीच बढ़ती खाई ने अपराध को समाज में फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया है। आज जनता अपने अधिकार के लिए सड़कों पर उतरती है लेकिन वही जनता कर्तव्य निर्वहन से अपने को दूर रखती प्रतीत होती है। एक अपराधी जनसहयोग और साक्ष्य के अभाव में पुलिस के चंगुल से दूर आजाद घूमता है। सामाजिक नियंत्रण का अभाव, अपराधियों को राजनीतिक तथा प्रशासनिक संरक्षण, जनता में अपराधियों के प्रति भय एवं पुलिस पर अविश्वास के कारण असहयोग की स्थिति ने समाज में अपराध को गंभीर रूप धारण करने का अवसर प्रदान किया है। आज जरूरत इस बात की है कि आम जनता और पुलिस के बीच की खाई को कम करने का यथासंभव प्रयास किया जाय ताकि अपराध पर नियंत्रण पाने में पुलिस को अपेक्षानुरूप सफलता प्राप्त हो सके।

सन्दर्भ

१. क्राइम इन इंडिया २०१३ स्टेटिस्टिक्स, एन. सी. आर. बी. नई दिल्ली, २०१४, पृ. १६४
२. भारती दलवीर, 'पुलिस एवं लोग', ए. पी. एच. पब्लिसिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली, २००७, पृ. ७, ८
३. अखिलेश एस., 'पुलिस और समाज', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १६६५, पृ. २६२
४. शर्मा कृष्ण कुमार, 'पुलिस और मानवाधिकार', अर्जुन पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली, २०१२, पृ. ३२
५. क्राइम इन इंडिया २०१३ स्टेटिस्टिक्स, एन. सी. आर. बी. नई दिल्ली, २०१४, पृ. २६५
६. सिंह शिशिर कुमार, 'भारतीय पुलिस और जनता', डी. जे. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २०१०, पृ. ६५, ६६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

एकल अर्जक एवं द्वि–अर्जक दम्पत्तियों के सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य

❑ डा० अन्जू रानी
❖ डा० नीलम चौहान

स्वतंत्रोपरांत भरत में स्वतंत्रता एवं समानता की आधारशिला पर प्रतिष्ठित भारतीय संविधान ने स्त्रियों और पुरूषों के बीच किए जाने वाले समस्त भेदभावों को समाप्त कर दिया है। फलस्वरूप आज स्त्रियां जीवन के समस्त क्षेत्रों में कार्यरत हैं। इससे देश में द्विअर्जक दम्पत्तियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप जहां द्विअर्जक परिवारों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो रही है वहीं ऐसे परिवारों में स्त्रियों की स्थिति, पति-पत्नी संबंध, परिवार के अंतर्गत कार्यों में दोनों की भूमिकाओं, लिंग वैचारिकी आदि में भी परिवर्तन हो रहा है। प्रस्तुत अध्ययन स्त्री-पुरूष की वैचारिकी एवं मूल्यों का एकल तथा द्विअर्जक दम्पतियों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

समाजिक मूल्य किसी भी समाज की निरन्तरता और अस्तित्व को बनाये रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं क्योंकि मूल्य किसी भी देश की संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं। हम मूल्यों को ऐसे प्रतिमान कह सकते हैं जो मनुष्यों की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मार्गदर्शन करते हैं। मूल्यों को सामाजिक संगठन एवं व्यवस्था का आधार माना जा सकता है इसीलिए समाज के सदस्य मूल्यों की रक्षा के लिए हर सम्भव प्रयास करते हैं। राधा कमल मुकर्जी के अनुसार ''मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएं तथा लक्ष्य हैं जिनका अन्तरीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो प्राकृतिक अधिमान्यताएं मानक तथा अभिलाषाएं बन जाते हैं।''[१] जबकि जॉनसन के अनुसार ''मूल्यों को एक मानक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि सांस्कृतिक हो सकता हैं या केवल व्यक्तिगत और जिसके द्वारा वस्तुओं की एक साथ तुलना की जाती है और वे एक दूसरे के संदर्भ में स्वीकार या अस्वीकार की जाती हैं, वांछित या अवांछित, अच्छी या बुरी, अधिक या कम उचित मानी जाती हैं।''[२] वास्तव में मूल्य एक प्रकार से सामाजिक माप या पैमाना हैं जिसके आधार पर किसी वस्तु का मूल्यांकन किया जाता है। सामाजिक मूल्यों का निर्माण सम्पूर्ण समूह एवं समाज के सदस्यों की पारस्परिक अन्तःक्रिया के दौरान होता है अतः वे सारे समूह या समाज की वस्तु हैं। इसीलिए फिचर ने कहा है कि ''समाजशास्त्रीय दृष्टि से मूल्यों को उन कसौटियों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनके द्वारा समूह या समाज व्यक्तियों, प्रतिमानों, उद्देश्यों और अन्य सामाजिक सांस्कृतिक वस्तुओं के महत्व का निर्णय करते हैं।''[३]

मूल्य समाज के साथ-साथ पारिवारिक परम्पराओं के भी आधार हैं। मूल्यों का हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्वतः होता है जिसमें परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परन्तु वर्तमान समय में आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है। इसीलिए आज भी पीढ़ी को मूल्यों का हस्तान्तरण टेलीविजन, पत्र, पत्रिकाओं, सिनेमा, इण्टरनेट जैसे संचार माध्यमों से हो रहा हैं।

प्रस्तुत अध्ययन कानपुर नगर के महाविद्यालयों के कार्यरत एकल अर्जक एवं द्वि–अर्जक दम्पत्तियों (महाविद्यालयों के पुरूष शिक्षकों के विशेष संदर्भ में) पर आधारित है। अध्ययन में १५० एकल अर्जक शिक्षक (जिनकी पत्नी नौकरी नहीं करती हैं) १५० द्वि–अर्जक शिक्षक (जिनकी पत्नी किसी भी क्षेत्र में नौकरी करती हैं) को शामिल किया गया है। कानपुर में कुल ६३ महाविद्यालय हैं। जिसमें केवल २३ कालेज प्रशासनिक सहायता प्राप्त हैं। इसमें कुछ पूर्णतः महिला महाविद्यालय हैं। अतः उद्देश्य पूर्ण निदर्शन से उन महाविद्यालयों को चुना गया जहाँ पुरूष शिक्षक अधिक मात्रा में कार्यरत हैं। अतः डी० ए० वी० कालेज, पी० पी० एन० कालेज, वी० एस० एस० डी० कालेज, क्राइस्ट चर्च कालेज, वी० एन० डी० कालेज एवं डी० वी० एस० कालेज को शामिल किया गया है। प्रत्येक महाविद्यालय से एकल अर्जक एवं द्वि–अर्जक शिक्षकों की सूची बना कर दैव निदर्शन की लाटरी विधि द्वारा २५ एकल अर्जक एवं २५ द्वि–अर्जक शिक्षकों का चुनाव किया गया।

प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि एक

❑ एसोशिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, ए. एन. डी. कालेज, कानपुर (उ.प्र.)
❖ एसोशिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, ए. एन. डी. कालेज, कानपुर (उ.प्र.)

अर्जक एवं द्वि-अर्जक दम्पत्तियों के परिवारों में मूल्यों का क्या महत्व है। इन परिवारों की क्रियाओं में मूल्यों का कितना प्रभाव है। आज परिवारों में महिलाएं घर के बाहर नौकरी करने निकलती हैं पर कुछ परिवारों में महिलाओं को नौकरी करने की आज्ञा है पर परिवारों के मूल्यों एवं नियमों को तोड़ने की आज्ञा नहीं है। कपाड़िया ने इस संदर्भ में अपना तथ्य प्रस्तुत किया है ''आज परिवार के बुजुर्ग भी अपनी बहुओं से यह अपेक्षा करने लगे हैं कि वे आर्थिक उपार्जन कर परिवार की आय में अपना योगदान दें। आज भी हम नारी को उनकी मर्यादा सीमा रेखा लांघने की आज्ञा नहीं दे सकते परन्तु उनसे यह आशा अवश्य की जाती है कि परिवार की आर्थिक समस्याओं के निवारण हेतु वह धनोपार्जन कर परिवार की आय में अपनो योगदान दें।''[४] अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया कि सूचनादाता स्वयं मूल्यों का पालन करने के साथ क्या अपने बच्चों को भी मूल्यों पर चलने के संस्कार दे रहे हैं।

सूचनादाताओं द्वारा अपने बच्चों को अन्तर्जातीय विवाह की अनुमति : भारतीय समाज में पहले जाति में विवाह करना अनिवार्य था। पर आज कानून, संविधान और आय की दृष्टि में सभी जातियाँ समान अधिकार रखती हैं। कानून की दृष्टि में एक जाति के व्यक्ति को दूसरी जाति में शादी करने का अधिकार है। विशेष विवाह अधिनियम १९५४ अन्तर्जातीय विवाह की मान्यता देता है। पर वास्तव में समाज में एक बड़ा वर्ग जाति से बाहर शादी करने की नहीं सोच सकता क्योंकि जाति पंचायतों का दबाव उन्हें ऐसा करने से रोकता है आज जहाँ लड़के लड़कियां साथ में पढ़ते हैं, काम करते हैं, तब बड़े शहरों में जातिगत बंधन टूट रहे हैं। अतः सूचनादाताओं से पूछा गया कि क्या वे अपने बच्चों की अन्तर्जातीय विवाह करने की अनुमति देगें?

सारणी संख्या-१

सूचनादाताओं द्वारा अपने बच्चों को अन्तर्जातीय विवाह की अनुमति

अन्तर्जातीय विवाह की अनुमति	एकल अर्जक	प्रतिशत	द्विअर्जक	प्रतिशत
हाँ	९०	६०.०	११०	७०.३
नहीं	४२	२८.०	२५	१६.७
परिस्थितियों पर निर्भर	१८	१२.०	१५	१०.०
कुल योग	१५०	१००	१५०	१००

प्रस्तुत सारणी से यह पता चलता है कि सर्वाधिक ६० प्रतिशत सूचनादाता एकल अर्जक तथा ७३.३ प्रतिशत सूचनादाता द्वि-अर्जक वर्ममान समय से विवाह सम्बन्धी समस्याओं को देखते हुये अपने बच्चों को अन्तर्जातीय विवाह की अनुमति देगें जबकि २८ प्रतिशत एकल अर्जक १६.७ प्रतिशत द्वि-अर्जक सूचनादाता इसके पक्ष में नहीं हैं जबकि एकल अर्जक १२ प्रतिशत तथा द्वि-अर्जक १० प्रतिशत सूचनादाताओं ने कहा कि यह फैसला परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। अतः स्पष्ट है कि एकल अर्जक की तुलना में द्वि-अर्जक दम्पति अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में ज्यादा हैं।

पति-पत्नी के बीच संबंधः भारतीय परम्परा के अनुसार पति-पत्नी का संबंध जन्म-जन्मान्तर का माना जाता है। पति परमेश्वर के बराबर होता है और पत्नी को उसकी हर बात मानना अनिवार्य सा है। पर आज जब संविधान ने स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार दे दिये हैं। आज नारी न सिर्फ पुरूषों के समान पढ़ रही हैं बल्कि हर क्षेत्र में नौकरी भी कर रही हैं। विवाह के समय लड़के के साथ लड़की की मर्जी भी पूछी जाती है आज पति-पत्नी वैवाहिक जीवन को चलाने में समान महत्व और अधिकार रखते हैं। आधुनिकता के इस दौर में क्या सूचनादाता भी अपनी पत्नी की बराबर के अधिकार देते हैं या स्वयं से नीचा समझते हैं। उनमें विचारों को सारणी संख्या-२ में प्रदर्शित किया गया हैं-

सारणी संख्या-२

सूचनादाताओं के विचार से पति-पत्नी के बीच संबंध

पति-पत्नी के बीच संबंध	एकल अर्जक	प्रतिशत	द्विअर्जक	प्रतिशत
देवता-दासी	००	००	००	००
उच्चता निम्नता	१२४	७६.०	९२	६८.०
समानतावादी	३६	२४.०	५८	३२.०
कुल योग	१५०.०	१००.०	१५०.०	१००.०

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि पति-पत्नी के सम्बन्धों की जो प्राचीन धारणा थी उसमें काफी परिवर्तन आ चुका है। आज स्त्री पुरूषों के समान ही बुद्धिमता एवं कुशलता प्रदर्शित करके वे पुरूषों के समकक्ष खड़ी हो गयी हैं। इसलिए उनके बीच देवता-दासी के सम्बन्ध मानने वालों की संख्या एकल अर्जक तथा द्वि-अर्जक में शून्य है जबकि उच्चता निम्नता पर विश्वास करने वाले दम्पत्ति एकल अर्जक में ७६ प्रतिशत तथा द्वि-अर्जक में ६८ प्रतिशत है जबकि एकल अर्जक में २४ प्रतिशत तथा द्वि-अर्जक में ३२ प्रतिशत है जो समानतावादी संम्बन्धों पर विश्वास करते हैं। सारणी में यह भी

पता चलता हैं परिवर्तन के इस दौर में भी पुरूष प्रधान मानसिकता अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई परिवार में भी भले ही पत्नी नौकरी करें घर के सारे काम भी उसी को करने पड़ते हैं पुरूषों के द्वारा उनके कार्य में मदद भी बहुत कम परिवारों में देखने को मिलती हैं। पुरूष कहता तो जरूर है कि दोनों समान है पर व्यवहारिक रूप में उच्चता-निम्नता दिखाई देती है।

आप अपने बच्चों को कैसे कपड़े पहनाना पंसद करेंगेः भारतीय समाज ने हर क्षेत्र में पाश्चात्य देशों की नकल की है। फिर चाहें वो खान-पान, बोल-चाल, उठना-बैठना या फिर वेश-भूषा। आज आफिस या कालेज में ज्यादा लड़कियां जीन्स-टॉप पहने दिखायी देती हैं। शायद जीन्स-टॉप में वो अपने आप को ज्यादा स्मार्ट महसूस करती हों या सलवार-सूट पहनना पिछड़ापन लगता हो। लड़कियां ही नहीं लड़के भी फटी जीन्स, लम्बे बाल, कान में बाली पहने मिल जाते हैं। आज घरों में माँ साड़ी छोड़कर सलवार सूट और सलवार सूट छोड़कर जीन्स टॉप में आ गयी हैं तो वो अपने बच्चों को भी आधुनिक कपड़े पहनना चाहती हैं। पुरूषों में कुर्ता-पैजामा, धोती-कुर्ता सिर्फ ग्रामीण क्षेत्र में दिखाई देता है। हमने सूचनादाताओं से पूछा कि वो अपने बच्चों को कौन से कपड़े पहनाना पंसद करेगें। उनके विचार सारणी संख्या-३ में प्रदर्शित किये गये हैं-

सारणी संख्या-३

आप अपने बच्चों को कैसे कपड़े पहनाना पंसद करेंगे

बच्चों के कपड़े	एकल अर्जक	प्रतिशत	द्विअर्जक	प्रतिशत
भारतीय	३४	२२.७	३०	२०.०
भारतीय+पाश्चात्य	६०	४०.०	६२	४१.३
पाश्चात्य	३३	२२.०	४०	२६.७
तटस्थ	२३	१५.३	१८	१२.०
कुल योग	१५०	१००.०	१५०	१००.०

सारणी संख्या-३ पता चलता है कि दोनों ही वर्गो एकल अर्जक ४० प्रतिशत तथा द्वि-अर्जक ४१.३ प्रतिशत अपने बच्चों को भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों तरह के कपड़े पहनाना चाहते हैं। जबकि एकल अर्जक २२.७ प्रतिशत भारतीय २२ प्रतिशत पाश्चात्य कपड़े पहनाने के पक्ष में हैं जबकि द्वि-अर्जक वर्ग में २० प्रतिशत भारतीय एवं २६.७ प्रतिशत पाश्चात्य के पक्ष में हैं जबकि १५.३ प्रतिशत एकल अर्जक एवं १२ प्रतिशत द्वि-अर्जक इस पर अपने विचार नहीं देना चाहते। शायद उनका सोचना यह हो कि बच्चे जैसे कपड़े पहनना चाहते हैं वैसे ही पहन सकते हैं।

पूजा पाठ करना : भारतीय समाज की बुनियाद को धर्म पर टिकी माना जाता है। तभी व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कारों की व्यवस्था है। आज जब शिक्षा और विज्ञान ने हमें तर्कवादी बना दिया है और हम अपने आपको आधुनिक कहने लगे हैं। पर आज भी घर में सुबह पूजा की घण्टी सुनने को मिलती है। टेम्पों, बसों में भगवान की तस्वीर, दुकान में सुबह दीपक, अगरबत्ती जलाना, नये घर व इमारत बनाने से पहले भूमि पूजन, घर दुकान में पहली बार जाने पर गृह प्रवेश आदि आज भी बहुतायत से देखने को मिल जाते हैं। तो जब हमें चारों तरफ धार्मिक गतिविधियां देखने को मिलती हैं क्या सूचनदाताओ भी घर में पूजा करते हैं जिसे हम तालिका संख्या-४ में देख सकते हैं-

सारणी संख्या-४

क्या आप पूजा करते हैं

पूजा करना	एकल अर्जक	प्रतिशत	द्विअर्जक	प्रतिशत
प्रतिदिन	९७	६४.७	८४	५६.०
कभी-कभी	१२	०८.०	२६	१७.३
त्यौहार आदि पर	२४	१६.०	२८	१८.७
नहीं	१७	११.३	१२	०८.०
कुल योग	१५०.०	१००.०	१५०.०	१००.०

सारणी संख्या-४ से पता चलता है कि एकल अर्जक में ६४.७ प्रतिशत सूचनादाता प्रतिदिन पूजा करते हैं। १६ प्रतिशत त्यौहारों पर एवं ८ प्रतिशत कभी-कभी पूजा करते हैं। जबकि द्वि-अर्जक वर्ग में ५६ प्रतिशत प्रतिदिन पूजा करते हैं। १८.७ प्रतिशत द्वि-अर्जक त्यौहारों पर एवं १७.३ कभी-कभी पूजा करते हैं। बहुत कम संख्या में एकल अर्जक ११.३ प्रतिशत एवं द्वि-अर्जक ८ प्रतिशत ने पूजा न करने की बात कही। भारतीय समाज में पूजा सामान्यतः सभी परिवारों में होती है और समाजीकरण के द्वारा बचपन से पूजा करना अनिवार्य हो जाता है पर कुछ परिवारों मे महिलाएं अधिक पूजा करती है और पुरूष कभी-कभी ही पूजा करते हैं।

बच्चों का पूजा पाठ करना : माता-पिता के कार्यो एवं विचारों का प्रभाव बच्चों पर गहराई से पड़ता है। आज के युग में बच्चे टी.वी. इंन्टरनेट के सम्पर्क में अधिक रहते हैं इसीलिए धर्म से जुड़ी परम्परागत बातें, स्वर्ग-नरक, कर्म का सिद्धान्त, मोक्ष, पाप-पुण्य आदि पर विश्वास नहीं करते। पर आज का युवा वर्ग फैशन के लिए कुछ भी करता है तभी मनोरंजन एवं खुशी देने वाले धार्मिक उत्सवों में उनकी भागेदारी बढ़ रही है। आज गणेश उत्सव, नव-दुर्गा, जन्माष्टमी आदि पर मूर्ति-पूजा, मूर्ति-विसर्जन एवं अन्य कार्यो में युवा

बढ़-चढ कर हिस्सा लेते हैं। क्या सूचनादाताओं ने भी अपने बच्चों को नियमित या कभी-कभी पूजा करने की आदत डलवायी है या क्या उनके बच्चे स्वयं पूजा व ईश्वर में विश्वास करते हैं उनके विचार सारणी संख्या-५ में प्रदर्शित हैं-

सारणी संख्या-५

क्या आपके बच्चे पूजा करते हैं

पूजा करना	एकल अर्जक	प्रतिशत	द्विअर्जक	प्रतिशत
हाँ	६३	६२.०	८७	५८.०
नहीं	५७	३८.०	६३	४२.०
कुल योग	१५०.०	१००.०	१५०.०	१००.०

सारणी से पता चलता है सूचनादाताओं के ही समान उनके बच्चे भी पूजा करते हैं जो यह दर्शाता है कि आज परिवार अपने ही समान बच्चों में संस्कार डालते हैं। अतः एकल अर्जक सूचनादाताओं में ६२ प्रतिशत के बच्चे पूजा करते हैं जब ३८ प्रतिशत के बच्चे पूजा नहीं करते। जबकि द्वि-अर्जक वर्ग में ५८ प्रतिशत सूचनादाताओं के बच्चे करते हैं पर ४२ प्रतिशत के बच्चे पूजा नहीं करते। पूजा न करने वाले बच्चे भी अपने माता-पिता की तरह प्रतिदिन पूजा न करके कभी-कभी पूजा करते होगें।

शगुन-अपशगुन पर विश्वास : सामान्यतः भारतीय समाज में ऐसी धारणा है कि हमारे आस-पास की चीजें, पक्षी, जानवर आदि में विशेष शक्ति होती है जो समाज मे होने वाली अच्छी या बुरी घटनाओं को पहले से बता देती हैं। अच्छे काम के लिए जाते समय पीछे से छींकना, बिल्ली का रास्ता काटना, खाली बर्तन देखना अच्छा नहीं माना जाता जबकि शरीर के अंग फड़कने पर कभी अच्छा या कभी बुरा माना जाता है। तो आज के वैज्ञानिक युग जहाँ प्राकृतिक घटनाओं को भी जोड़ दिया जाता है हम इन शगुन-अपशगुन पर विश्वास करते हैं। इसी वजह से बड़ी फिल्मी हस्ती, खिलाड़ी नेता भी खास दिन फिल्म रिलीज करना, खास कपड़ा या सामान साथ में रखना आदि बातों को महत्व देते हैं तो क्या सूचनादाता भी इस तरह की बातों पर विश्वास करते हैं या नहीं। उनके विचार सारणी संख्या-६ में प्रदर्शित किये गये हैं-

सारणी संख्या-६

क्या आप शगुन-अपशगुन पर विश्वास करते हैं

शगुन अपशगुन	एकल अर्जक	प्रतिशत	द्विअर्जक	प्रतिशत
हाँ	०४३	२८.७	५४	३६
नहीं	१०७	७१.३	६६	६४
कुल योग	१५०.०	१००.०	१५०.०	१००.०

सारणी संख्या-६ से पता चलता है कि शिक्षा के प्रभाव के कारण आज समाज से स्वर्ग-नरक, भागुन अपशगुन समाप्त होते जा रहे हैं पर चूंकि भारतीय समाज का आधार धर्म है अतः कुछ लोग आज भी इन चीजों में विश्वास करते है। एकल अर्जक वर्ग में ७१.३ प्रतिशत शगुन-अपशगुन में विश्वास नहीं करते जबकि २८.७ प्रतिशत करते हैं। जबकि द्वि-अर्जक वर्ग में ६४ प्रतिशत विश्वास नही करते पर ३६ प्रतिशत करते हैं।

त्यौहार, व्रत, परम्पराओं को मानना : मूल्य एवं परम्पराएं समाज की धरोहर और पहचान हैं। उन्हें आगे की पीढ़ी को हस्तान्तरित करना हमारा दायित्व है अन्यथा हम संस्कृति विहीन हो जायेंगे। भले ही ईश्वर है या नहीं पर त्यौहार, व्रत परम्पराएं हमारे जीवन को एक लय देती हैं, हमें एकता के सूत्र में बाँधती हैं। सामूहिक रूप परम्पराओं को मनाने से लगाव और प्यार बढ़ता हैं। परम्परागत तरीके से शादी करने में सारे नातेदारों का इकठ्ठा होना, मस्ती करना, नाचना, गाना आदि का सुख दूसरे विवाह में नही मिल सकता। अतः सूचनादाताओं से पूछा गया कि क्या परम्पराओं का मानना आवश्यक हैं। उनके विचार सारणी संख्या-७ में प्रदर्शित हैं-

सारणी संख्या-७

त्यौहार, व्रत, परम्पराओं को मानना आवश्यक

त्यौहार, व्रत परम्परां मानना	एकल अर्जक	प्रतिशत	द्विअर्जक	प्रतिशत
सहमत	६२	६१.३	८६	५६.३
असहमत	३३	२२.०	३७	२४.७
तटस्थ	२५	१६.७	२४	१६.०
कुल योग	१५०	१००.०	१५०	१००.०

सारणी से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति को बनाये रखने के लिए परम्पराओं को मानना आवश्यक है। एकल अर्जक वर्ग में ६१.३ प्रतिशत सहमत हैं जबकि २२ प्रतिशत सहमत नही हैं। द्वि-अर्जक वर्ग में ५६.३ प्रतिशत सहमत एवं २४.७ प्रतिशत सहमत नही हैं। दोनों वर्गो में एकल अर्जक १६.७ प्रतिशत एवं द्वि-अर्जक वर्ग में १६ प्रतिशत इस विषय में कोई जवाब नही देना चाहते।

क्या संचार साधन युवा पीढ़ी को मूल्यों एवं परम्पराओं से दूर कर रहे हैं : विश्व में घटने वाली किसी भी घटना की जानकारी हमें तुरन्त मिल जाती है इस क्षेत्र में संचार साधन महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। पर आज फिल्मों, टी०वी० सीरियल में परिवार के सदस्यों के संबंध में राजनीति, कपड़ो का धीरे-धीरे कम होना, बालों का स्टाइल ने सब को प्रभावित किया है। गानों के बोल हमारी मानसिकता की प्रभावित कर

रहे हैं। अश्लील गानों को छोट-छोटे बच्चे गाते मिल जाते हैं। भविष्य में क्या हमें राम-सीता, श्रवण कुमार, पन्नाधाय, भरत, गांधी, सुभाष चन्द्र जैसे व्यक्तित्व देखने को मिलेंगे। आज की युवा पीढ़ी बहुत उन्नति कर रही है पर साथ ही वह व्यक्तिवादी होती जा रही आज त्याग से ज्यादा व्यक्तिगत सुख महत्व रखते हैं। अतः सूचनादाओं से पूछा गया कि क्या संचार साधन युवा पीढ़ी को मूल्यों परम्पराओं से दूर कर रहे हैं। उनके विचार सारणी संख्या-८ में प्रदर्शित हैं-

सारणी संख्या-८
क्या संचार साधन युवा पीढ़ी को मूल्यों एवं परम्पराओं से दूर कर रहे हैं

मूल्य एवं परम्परा से युवा दूर	एकल अर्जक	प्रतिशत	द्विअर्जक	प्रतिशत
हाँ	१२३	८२.०	११६	७३.३
नहीं	०१८	१२.०	०१६	१२.७
पता नहीं	००६	०६.०	०१२	०८.०
कुल योग	१५०	१००.०	१५०	१००.०

सारणी से पता चलता है कि वास्तव में संचार साधन भारतीय मूल्य एवं परम्पराओं को समाप्त कर रहे हैं इसलिए एकल अर्जक वर्ग में ८२ प्रतिशत सूचनादाताओं ने पक्ष में एवं १२ प्रतिशत ने कहा कि संचार साधन मूल्य एवं परम्पराओं को खत्म नहीं कर रहे हैं द्वि-अर्जक वर्ग में ७३.३ प्रतिशत ने हाँ में एवं १२.७ प्रतिशत ने नहीं में जवाब दिया।

प्रस्तुत अध्ययन में एकल अर्जक एवं द्वि-अर्जक दम्पत्तियों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि समय के साथ लोगों की सोच में परिवर्तन आ रहा है पर फिर भी हम अपनी भारतीय संस्कृति की बनाये रखने का प्रयास भी कर रहे हैं। बच्चों को अन्तर्जातीय विवाह के संबंध में एक अर्जक वर्ग में ६० प्रतिशत एवं द्वि-अर्जक वर्ग में ७३.३ प्रतिशत अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में हैं जबकि दोनों वर्ग में १० प्रतिशत समय के अनुसार निर्णय लेने के पक्ष में हैं। पति-पत्नी के संबंधों में दोनों में से कोई देवता-दासी का संबंध नहीं मानते पर एकल वर्ग में ८२.७ प्रतिशत एवं द्वि-अर्जक वर्ग में ६१.३ प्रतिशत दोनों में उच्चता निम्नता के संबंध मानते हैं। शिक्षक वर्ग होने के बाद भी द्वि-अर्जक वर्ग में मात्र ३८.७ प्रतिशत दोनों में समानता की बात करते हैं। सूचनादाताओं में एकल अर्जक वर्ग में ४० प्रतिशत एवं द्वि-अर्जक वर्ग में ४१.३ प्रतिशत अपने बच्चों को भारतीय के साथ पाश्चात्य कपड़े भी पहनाना चाहते हैं। धर्म एवं पूजा पाठ के संबंध में एकल अर्जक वर्ग में ६४.७ प्रतिशत एवं द्वि-अर्जक वर्ग में ५६ प्रतिशत प्रतिदिन पूजा करते हैं। जबकि ११.३ प्रतिशत एकल अर्जक एवं ८ प्रतिशत द्वि-अर्जक कभी पूजा नहीं करते हैं। बच्चों पर भी माता-पिता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता हैं। इसीलिए एकल अर्जक वर्ग में ६२ प्रतिशत एवं दि-अर्जक वर्ग में ५८ प्रतिशत सूचनादाताओं के बच्चे प्रतिदिन पूजा करते हैं। भागुन-अपशगुन मानने के संबंध में एकल अर्जक वर्ग में ७१.३ प्रतिशत एवं ६४ प्रतिशत द्वि-अर्जक सूचनादाता भागुन-अपशगुन को नहीं मानते। जबकि आधे के काफी कम इनमें विश्वास करते हैं। एकल अर्जक व्रत, त्यौहार को मनाना अति आवश्यक समझते हैं जबकि दोनों वर्ग में लगभग ३० प्रतिशत इन्हें मनाना आवश्यक नहीं समझते। संचार साधनों के प्रभाव के संबंध में एकल अर्जक वर्ग में ८२ प्रतिशत एवं द्वि-अर्जक वर्ग में ७३.३ प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि संचार साधन युवा पीढ़ी को मूल्यों परम्पराओं से दूर कर रहे हैं।

अतः अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सूचनादाताओं में दोनों ही वर्ग भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों को निभाने का प्रयास कर रहे हैं। आज के प्रौद्योगिक युग में नयी पीढ़ी हर चीज को तर्क से समझना चाहती है। अतः परम्पराओं एवं मूल्यों में समय और आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन भी हो रहा है।

संदर्भ

१. राधा कमल मुकर्जी, इन. बी. सिंह, 'द फ्रन्टियर ऑफ सोशल सांइस', एस. चान्द एण्ड कं., देहली, १९६५, पृ० २३
२. जॉनसन एच. एम., 'सोशियोलॉजी, एलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १९६५ पृ० १४७
३. एच. फीचर, 'सोशियोलॉजी', शिकागो पब्लीकेशन्स, १९६७, पृ० २६३-२६४
४. कपाडिया, 'मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया', ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, १९६५, पृ० ५२

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

भारिया जनजाति में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता : एक अध्ययन (पातालकोट के विशेष संदर्भ में)

❑ डॉ. श्रीमती इंदिरा बर्मन
❖ श्रीमती कंचन ठाकुर

मूलतः सभी आदिवासी क्षेत्रों में स्वास्थ्य एवं पोषण एक गंभीर समस्या के रूप में विद्यमान है। आज भी उनके स्वास्थ्य संबंधी विचार एवं मानयताएं अंधविश्वास एवं धर्म से नियंत्रित होते हैं। केवल आवश्यकता की चरम सीमा आने पर ही वे डॉक्टर अथवा अस्पताल की शरण लेते हैं। प्रत्येक बीमारी का कारण देवी-देवता का क्रुद्ध होना अथवा जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि को मानते हैं जिन्हें दूर करने के लिए उनके समाज में पड़िहार, पंडा, गुनिया आदि विद्यमान होते हैं जिनपर इनका अटूट विश्वास होता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में अविश्वास का प्रमुख कारण इनकी अशिक्षा तो है ही साथ ही इनके क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपलब्धता भी इनके वैचारिक परिवर्तन में बहुत बड़ी बाधा है। प्रस्तुत अध्ययन मध्य प्रदेश के पातालकोट क्षेत्र की भरिया जनजाति में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता जानने की दिशा में एक प्रयास है।

''**मध्यप्रदेश** की जनजातियों में स्वास्थ एवं पोषण एक गंभीर विषय है। मूलतः सभी आदिवासी क्षेत्रों में यह विषय एक वृहत समस्या के रूप में विद्यमान है। आधुनिक स्वास्थ सुविधाओं को अपनाने में आदिवासी शिक्षा की तुलना में पीछे हैं। आज भी स्वास्थ संबंधी विचार अन्धविश्वास एवं धर्म के नियमों से नियन्त्रित होते हैं। केवल आवश्यकता की चरम सीमा आने पर ही वे अपने धार्मिक आदेशों की सीमा लांघने के लिए विवश होते हैं। तब डॉक्टर एवं अस्पताल की शरण लेते हैं। आदिवासियों में कोई भी बीमारी अथवा प्राकृतिक प्रकोप हो, उसके वे दो ही कारण मानते हैंः एक, ग्राम्य देवी देवता क्रुद्ध हो गये हैं जिनकी नाराजगी के कारण आपत्ति आ जाती है। दूसरे, जादू-टोना, भूत और टोटका उनकी बीमारियों के कारण हैं। आदिवासी सामाजिक व्यवस्था में अस्वस्थता के इन दोनों कारणों को दूर करने के उपाय किये गये हैं और उन उपायों को कार्यरूप देने के लिए गाँव अलग-अलग विशेषज्ञ व्यक्ति नियत होते हैं। देवी-देवताओं को सन्तुष्ट करके उन्हें शान्त कराने का काम पंडा का होता है। शान्ति कायम करने की एक निश्चित पद्धति है। अनिष्टकारक और आसुरी शक्तियों से गाँव को सुरक्षित रखने के लिए बलि-पूजन का वार्षिक कार्यक्रम किया जाता है। ये लोग विश्वास करते हैं कि ऐसा करने से चेचक, हैजा आदि बीमारियों से भी बचा जा सकता है।

जादू-टोना, टोटका आदि बीमारियों के दूसरे प्रमुख कारण हैं। जादू और टोना तो यहाँ आम बात है और प्रबुद्ध आदिवासी भी इनके करिश्में को स्वभावतः मानता है। इनका आदिवासी डाक्टर बैगा कहलाता है। अस्वस्थ होते ही बैगा से सम्पर्क किया जाता है और और वह अपनी नियत फीस लेकर झाड़-फूंक आरम्भ करता है। यह कार्यक्रम मरीज के अन्तिम दम तक चलता है। यह झाड़-फूंक वास्तव में यातनापूर्ण प्रक्रिया है। इसके साथ ही वह गुनिया जंगली औषधियों का भी प्रयोग करके मरीज को ठीक करने का प्रयत्न करता है। यह एक बहुत महत्वपूर्ण पक्ष है कि ये लोग अनेकों औषधि वाले पौधों को जानते हैं और उनका उपयोग भी करते हैं। इन पौधों की जड़ से लेकर पत्ती तक की उपयोगिता का इन्हें ज्ञान है। अगर इनके इसी ज्ञान को व्यवस्थित करके उनकी ही इसी औषधि-पद्धति को उन्हें दे दिया जाय तो शायद वे अधिक सहजता से स्वीकार कर सकेंगे। कुल मिलाकर आज भी आम आदिवासी बीमार होने पर डॉक्टर के पास न जाकर बैगा के पास ही जाता है। असहाय स्थिति आने पर ही वह चिकित्सा की आधुनिक पद्धति की ओर आता है। तब तक अनेक रोगी नहीं बचाये जा सकते और मरणासन्न स्थिति में आ जाते हैं। ऐसी दशा में बैगा उनकी मृत्यु का अत्यधिक प्रचार करके आधुनिक पद्धतियों की विफलता को उजागर करते हुए अपनी धाक जमाने की कोशिश करता है।''[1]

अध्ययन क्षेत्र : प्रस्तुत अध्ययन हेतु मध्य प्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले के पातालकोट क्षेत्र का चयन किया गया। ''छिन्दवाड़ा जिले के आदिवासी विकासखण्डों में तामिया विकासखण्ड की स्थापना ०२.१०.१९५६ को प्रशासनिक दृष्टिकोण के आधार

❑ विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, शासकीय गृह विज्ञान स्नातकोत्तर अग्रणी महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
❖ सहा. प्राध्यापक समाजशास्त्र, शासकीय गृह विज्ञान स्नातकोत्तर अग्रणी महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)

पर की गई। आदिवासी वृहत परियोजनाओं को ध्यान में रखते हुए तामिया एकीकृत आदिवासी विकास परियोजनाओं की स्थापना १६७५-७६ में आदिवासी उपयोजना की अवधारणा के अन्तर्गत ०३.०६.१६७६ को स्थापित किया गया। वर्ष १६६० में परियोजना का पुनर्गठन किया गया जिसके अन्तर्गत एकीकृत आदिवासी विकास परियोजना अमरवाड़ा को इस परियोजना में शामिल कर दिया गया। परिणामस्वरूप तामिया परियोजना में ०६ तहसील और ०८ विकासखण्ड शामिल किये गये।[२]

मध्यप्रदेश की तीन विशेष पिछड़ी जनजाति में से एक भारिया जनजाति तामिया के अन्तर्गत आने वाले पातालकोट के १२ ग्रामों में निवास करती है। पातालकोट की नैसर्गिक संरचना १२०० से १५०० फिट गहराई लिये हुए विस्तृत घाटियों का मनोरम भू-भाग है जो सतपुड़ा पर्वत की परतदार ऊँची किलानुमा श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है। यह अद्वितीय विहंगम स्थल जिला मुख्यालय से उत्तर-पश्चिम की ओर ६२ किलोमीटर दूर तथा तामिया से पूर्व-उत्तर की ओर २३ किलोमीटर पर हर्रई बिजौरी मार्ग के पार्श्व में उत्तरी अक्षांश २२°२४' और २२°२६' तथा पूर्वी अक्षांश ७०°४०' से ७०°५०' के मध्य स्थित है।

सम्पूर्ण पातालकोट का लगभग ७६ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र सतपुड़ा की मैकल पर्वतश्रेणी से घिरा हुआ है। पातालकोट का पूर्वी हिस्सा मोटुर पर्वत श्रेणी, दक्षिण-पूर्वी हिस्सा खबहड़, उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र लोटिया, खटकाखापा और दुल्हादेव स्थानीय नामों के पर्वतों से घिरा हुआ है। इस घाटी के पहाड़ों की ऊँचाई लगभग ३३०० फिट है। समुद्र की सतह से इसकी औसत ऊँचाई लगभग ३२५० से ३७५० फुट की है। पातालकोट से समीपवर्ती ग्राम सुखाभांड के निकट सतपुड़ा की सबसे ऊँची चोटी है जो समुद्र सतह से ३७५४ फुट ऊँची है।

छिन्दवाड़ा जिले में स्थित पातालकोट में निवासरत भारिया जनजाति १२०० से १५०० फिट गहराई में स्थित ग्रामों में निवास करती है जिसमें ५०३ परिवार निवासरत हैं तथा २०११ की जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल जनसंख्या २५६१ है जिसमें १२६० पुरुष एवं १२७१ महिलाएं हैं। यह सम्पूर्ण क्षेत्र ७६ वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है जो परतदार ऊँची किला नुमा पर्वतीय श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है।

भारिया जनजाति आज भी इतनी पिछड़ी हुई है कि वे स्वस्थ उपचार हेतु प्राथमिक उपचार के लिए घरेलू चिकित्सा एवं झाड़-फूंक आदि पर विश्वास करने के लिए मजबूर हैं। पातालकोट की जमीन पथरीली है। यहाँ पर रेतीली लाल मिट्टी, महीन मिट्टी (बर्रा) एवं कहीं-कहीं लाल-पीली (मुरम) मिट्टी है। यह सिर्फ कोदो, कुटकी के लिए उपजाऊ है। इसलिये यहाँ पर कृषि उत्पादन निम्न स्तर का है।

पातालकोट भारिया विकास अभिकरण तामिया के अनुसार क्षेत्र का कुल रकबा ५१०५ हेक्टेयर है जिसमें वनक्षेत्र ४६०६ हेक्टेयर तथा कृषि योग्य भूमि ५२५ हेक्टेयर है। २००४-०५ के सर्वेक्षण के अनुसार १२.७० हेक्टेयर सिंचित भूमि है तथा ३८४.७४ हेक्टेयर भूमि असिंचित है इसलिये यहाँ सिंचित भूमि की कमी व सिंचाई के साधनों का उचित सहयोग न होने से कृषि उत्पादन अत्यन्त कम होता है। इनका जन-जीवन कृषि के अलावा वनोपज पर आधारित है।[३]

अध्ययन के उद्देश्यः-

(१) बीमारी के समय प्राथमिक उपचार हेतु भारिया जनजाति द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली वैकल्पिक व्यवस्था को ज्ञात करना।
(२) शासन द्वारा दी जाने वाली स्वास्थ्य सुविधाओं को ज्ञात करना।
(३) भारिया जनजाति की स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

अध्ययन विधि :- प्रस्तुत शोध पातालकोट के १२ ग्रामों में रहने वाले ५०३ भारिया परिवारों में से देवनिदर्शन विधि द्वारा १०० परिवारों का चयन कर साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से प्राथमिक तथा द्वितीय समंकों का संकलन कर निर्धारित स्थानों पर उपयोग किया है।

तालिका क्रमांक-०१

उत्तरदाताओं के ग्रामों में स्वास्थ्य केन्द्र की उपलब्धता

स्वास्थ्य केन्द्र की उपलब्धता	संख्या/आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	०	०
नहीं	१००	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर अध्यायित क्षेत्र में एक भी स्वास्थ्य केन्द्र या उपस्वास्थ्य केन्द्र उपलब्ध नहीं है। ग्रामवासियों को उपचार हेतु २० किलोमीटर तामिया विकासखण्ड आना पड़ता है।

तालिका क्रमांक-०२

बीमारी की स्थिति में प्राथमिक उपचार

प्राथमिक उपचार हेतु वैकल्पिक साधन	संख्या/आवृत्ति	प्रतिशत
वैद्य हकीम	४२	४२
भूमका पढ़ीहार	४०	४०
प्राईवेट डॉक्टर	१०	१०
शा. चिकित्सालय	८	८
योग	१००	१००

उपर्युक्त तालिकानुसार ४२ प्रतिशत उत्तरदाता वैद्य हकीम से

उपचार कराते हैं तथा बहुत कम लोग (केवल ८ प्रतिशत लोग) शासकीय चिकित्सा करवाते हैं। अतः क्षेत्र में सर्वाधिक लोग वैद्य हकीम, भूमका, पड़िहार द्वारा इलाज करवाते हैं। अतः जब वैद्य हकीम, पड़िहार उपचार में खरे नहीं उतरते तब मरीज को डॉक्टर के पास ले जाया जाता है।

तालिका क्रमांक-०३

बीमारी के कारण

बीमारी का कारण	संख्या/आवृत्ति	प्रतिशत
खानपान	-	-
भूतप्रेत	-	-
मौसम	-	-
देवी देवता का प्रकोप	-	-
उपरोक्त सभी	१००	१००

उपर्युक्त तालिका स्पष्ट करती है कि सभी उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त तथ्य यह दर्शाते हैं कि बीमारी के लिए मौसम, खानपान, प्रेत बाधा एवं देवी देवता का प्रकोप में से कोई भी कारण मान्य हो सकता है। इसका अनुमान ये भारिया जब किसी बीमार से ग्रसित होते हैं तब ये प्राथमिक घरेलू उपचार अपने स्तर से करते हैं। अगर ठीक नहीं हो पाते हैं तब वह गुनिया, पड़िहार आदि के पास जाते हैं। मुख्यतः किसी बीमारी के लिए कोई विशेष कारण नहीं है। संभवतः सभी कारण उत्तरदायी हो सकते हैं

तालिका क्रमांक-०४

उत्तरदाताओं में बीमारी का स्तर

बीमारी का स्तर	संख्या/आवृत्ति	प्रतिशत
सामान्य बीमारी (सर्दी, खांसी, हैजा, उल्टी, दस्त, मलेरिया)	८०	८०
गंभीर बीमारी (टीबी, केंसर)	२०	२०
योग १००	१००	

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में ८० प्रतिशत भारिया लोगों में सामान्यतः बीमारियाँ सर्दी, जुकाम, खाँसी, उल्टी, दस्त अधिकतर पाई गई हैं तथा २० प्रतिशत लोग ही गंभीर बीमारी जैसे टीबी, केंसर, लकवा आदि से पीड़ित हैं। **अतः** विश्लेषित सारणी के आधार पर यह सामान्य बीमारियों के लिए जड़ी बूटियों का प्रयोग कर लेते हैं तथा गंभीर बीमारियों की पहचान इन्हें नहीं है। ये इन बीमारियों के इलाज के लिए जड़ी बूटी के साथ-साथ पड़िहार द्वारा तंत्र-मंत्र, पूजापाठ द्वारा ठीक करने का प्रयास करते हैं।

निष्कर्ष :- उपर्युक्त तथ्यों के पूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि आज भी ये भारिया विकास की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। यहाँ साक्षरता के न्यूनतम प्रतिशत ने इनके अंधविश्वास को बनाये रखने में सहायता की है। साथ ही साथ स्वयं यहाँ की आदिवासी सामाजिक आर्थिक संरचना भी इसमें शामिल है। इस संरचना का प्रभाव स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोग के रूप में देखा जा सकता है। ये सुविधाएं सरकारी स्वास्थ्य केन्द्रों पर मुफ्त में उपलब्ध हैं और उनका लाभ लेने पर उनकी कार्य पद्धति में अंतर नहीं आता है परन्तु आम आदिवासी का विश्वास तो पंडा और पड़िहार में है। वह अपने अनंतकालीन विश्वास को तोड़ नहीं पाते हैं। अगर आवश्यकता भी पड़ती है तो वह सरकारी तन्त्र की लंबी प्रक्रिया से बच निकलने के लिये निजी डॉक्टरों के पास जाते हैं।

संदर्भ

१. तिवारी शिव कुमार, 'मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति', म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, २००५, पृ. २६७-२६८

२. दीक्षित ध्रुव कुमार, 'पातालकोट घाटी का भारिया जनजीवन', म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, २०१०, पृ. २

३. भारिया विकास अभिकरण, तामिया-संक्षिप्त रिपोर्ट, वर्ष २००६-१०

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा | वर्ष 17 अंक 1, जनवरी-जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 | ISSN 0974-0074

वरिष्ठ नागरिकों के परिवेश में होने वाले परिवर्तनों की उनके सामाजिक अपवर्जन में भूमिका

❑ डा० उमाचरण
❖ डा० रन्जू राठौर

भूमिका अनेक अनुसंधानकर्ताओं ने पाया है कि बढ़ती आयु के साथ व्यक्ति का भौगोलिक प्रभाव-क्षेत्र संकुचित होता जाता है।[१,२] अपने परिवेश से घनिष्ट सम्पर्क वरिष्ठ नागरिकों के लिए अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण होता है। युवा एवं धनवान लोगों की अपेक्षा वरिष्ठ, अशक्त एवं अल्प आय वाले लोगों के लिए पास-पड़ोस का महत्व अधिक होता है।[३] उनका परिवेश उनके सामाजिक जीवन की धुरी बन जाता है क्योंकि उनके सामाजिक सम्बन्धों का ताना बाना उनके वास्तविक निवास के आस-पास तक ही सिमट कर रह जाता है। परिवेश उनके आत्म-बोध (Self Identity) के चिन्हों को प्रदान कर उसे परिभाषित करता है[४] व्यवसाय-मुक्त एवं शारीरिक रूप से दुर्बल होने के कारण परिवेश पर उनकी निर्भरता बढ़ती जाती है। इस परिवेश में होने वाले परिवर्तन उनके जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। इसका प्रभाव न केवल चाहरदीवारी में उनकी निजी जीवनशैली पर अपितु सार्वजनिक स्थानों एवं सेवाओं के उनके उपयोग पर भी पड़ता है।[५] अनेक प्रकार की हीनताओं-वंचनाओं (Multiple Depriations) से परिवपूर्ण परिवेश में निवास वरिष्ठ नागरिकों के सामाजिक अपवर्जन (Social Exclusion) का कारण बनता है।[६] अपर्वजन की यह प्रक्रिया और मुखर हो जाती है जब अपने परिवेश में होने वाले परिवर्तनों की दशा एवं दिशा पर वरिष्ठ नागरिकों का नियंत्रण दिनों दिन कम होता जाता है। ऐसे क्षेत्र जो अनेक तरह के भौतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहे हों, वहाँ यह समस्या नित नये रूप ले लेती है। अनेक क्षेत्रों में जनसंख्या का स्वरूप भी बदल रहा होता है। निम्न मध्य वर्ग का स्थान अपेक्षाकृत युवा, उच्च, शिक्षित, एवं आर्थिक रूपसे सम्पन्न वर्ग लेने लगता है। घरों का मूल्य, किराया एवं गृहकर आदि बढ़ने से निवास महंगा हो जाता है। बढ़ती हुई वाणिज्यिक गतिविधियों, निरन्तर बढ़ते ट्रैफिक एवं अन्य कारणों से अनेक निवासी अपने परम्परागत आवासों से नवीन किंतु सस्ते क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष पलायन करने को विवश हो जाते हैं। आर्थिक सम्पन्नता स्थानीय प्राधिकरणों/ निगमों की आय वृद्धि के लिए सम्पादित की जाने वाली विभिन्न गतिविधियों जैसे आवासीय क्षेत्रों में वाणिज्यिक क्रियाकलापों को सहमति, गलियों एवं सार्वजनिक स्थानों पर हाट-बाजारों की आज्ञा, नये व्यवसायों एवं सेवाओं के अनुकूल नवीन संस्थानों, कार्यालयों एवं सार्वजनिक स्थानों का विकास किया जाता है। इन नवीन परिस्थितियों के कारण अनेक वरिष्ठ नागरिक अपने परम्परागत आवासीय क्षेत्रों से या तो विस्थापित हो जाते हैं या वहां रहते हुए उपेक्षित अनुभव करते हैं क्योंकि उनकी वर्षों की जीवनशैली में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। उनके परिवेश में प्रिय सांस्कृतिक गतिविधियों, मनोरंजन के स्थान, आवश्यक एवं अपेक्षित सेवाएं, राजनीतिक सहभागिता-सभी में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। निम्न आय एवं जीवन-यापन के बढ़ते मूल्य की असंगति से वरिष्ठ नागरिक आर्थिक एवं मानसिक रूप से असहज हो जाते हैं। **इन** परिवर्तनों के सकारात्मक परिणाम भी देखने को मिलते हैं। घरों के मूल्य एवं किराये में वृद्धि तथा आवासीय क्षेत्रों के

अनेक अनुसंधानकर्ताओं ने पाया है कि बढ़ती आयु के साथ व्यक्ति का भैगोलिक प्रभाव-क्षेत्र संकुचित होता जाता है। अपने परिवेश से घनिष्ट सम्पर्क वरिष्ठ नागरिकों के लिए अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण होता है। युवा एवं धनवान लोगों की अपेक्षा वरिष्ठ, अशक्त एवं अल्प आय वाले लोगों के लिए पास-पड़ोस का महत्व अधिक होता है। उनका परिवेश उनके सामाजिक जीवन की धुरी बन जाता है क्योंकि उनके सामाजिक सम्बन्धों का ताना बाना उनके वास्तविक निवास के आस-पास तक ही सिमट कर रह जाता है। इस परिवेश में होने वाले परिवर्तन उनके जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। प्रस्तुत आलेख इन्हीं व्यक्तियों एवं उनके प्रभावों को उजागर करने का एक प्रयास रहा है।

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, बरेली कालेज, बरेली (उ.प्र.)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, वी.आर.ए.एल. राजकीय महिला महाविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

वाणिज्यिकरण से बढ़ी आय अनेक वरिष्ठ नागरिकों को आर्थिक रूप से सशक्त कर देती है।

इस शोध पत्र के द्वारा वरिष्ठ नागरिकों के आवासीय परिवेश में होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में उनकी अनुभूति एवं विचार जानने का प्रयास किया गया है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप सामाजिक अपवर्जन एवं सामाजिक अन्तरवेशन की प्रक्रिया का भी अध्ययन किया गया है।

सैद्धान्तिक रूपरेखा : सामाजिक अपवर्जन पर किये गये प्रारम्भिक शोध अध्ययनों में से एक रूम[७] ने इंगित किया है कि सामाजिक अपवर्जन मुख्यतः किसी व्यक्ति या समूह के समाज से सम्बन्ध विच्छेद में निहित है। उन्होंने निम्न पांच बिन्दुओं की चर्चा की जो सामाजिक अपवर्जन की परिभाषा के केन्द्र में है।

१. **बहुआयामी–** सामाजिक अपवर्जन को मात्र आय से नहीं मापा जा सकता है इसके अंतर्गत जीवन-स्तर के अन्य अनेक मानक सम्मिलित होते हैं।
२. **गतिशील–** सामाजिक अपवर्जन एक सतत् प्रक्रिया है। इसे प्रारम्भ एवं समाप्त करने वाले कारकों का चिन्हीकरण आवश्यक है।
३. **सामूहिक–** इसका सम्बन्ध पूरे परिवेश में सामूहिक संसाधनों की कमी से है जिसमें सार्वजनिक सुविधाओं एवं सेवाओं का अभाव सम्मिलित है।
४. **सम्बन्धात्मक–** निर्धनता से भिन्न सामाजिक अपवर्जन फोकस किसी व्यक्ति सा समूह को उपलब्ध संसाधनों/सेवाओं पर ना होकर सम्बन्धों पर होता है। इसके अन्तर्गत अपर्याप्त सामाजिक सहभागिता तथा सामाजिक एकीकरण एवं शक्ति का अभाव महत्वपूर्ण है।
५. **परावर्ती–** यह लम्बे समय तक बहुआयामी अभावों के परिणामस्वरूप समाज हानिप्रद सम्बन्ध विच्छेद है।

एटकिंसन[८] सामाजिक अपवर्जन की अपनी परिभाषा में निम्न तीन तत्वों को चिन्हित करते हैं:-

१. **सापेक्षता–** किसी निश्चित समय एवं स्थान पर किसी समाज विशेष से अपवर्जन।
२. **अभिकरण–** अपवर्जन किसी व्यक्ति या अभिकरण के कृत्य का परिणाम है। लोग अन्य लोगों के कृत्य से सामाजिक अपवर्जन के शिकार होते हैं।
३. **गतिकी–** लोग न केवल अपनी वर्तमान परिस्थितियों के कारण अपवर्जित होते हैं अपितु भविष्य में भी वापसी की बहुत कम उम्मीद रहती है।

Billette & Lavoie [९] के अनुसार सामाजिक अपवर्जन समाज के किसी अंग (प्रस्तुत अध्ययन में वरिष्ट नागरिक) के अधिकारों एवं संसाधनों का अपहरण है जो भिन्न विचारों एवं हितों वाले सामाजिक समूहों के मध्य शक्ति-संघर्ष का गतिमान रूप ले लेता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पक्षपात एवं समाज से निम्न सात आयामों में अलगाव दृष्टिगोचर होता है

१. **सांकेतिक अपवर्जन–** नकारात्मक छवि, अतिवर्णन एवं अदृश्यता।
२. **परिचय-अपवर्जन** किसी व्यक्ति के अनेक परिचयों को नकारते हुए किसी एक परिचय पर जोर दिया जाना।
३. **सामाजिक -राजनीतिक अपवर्जन**-सामाजिक एवं राजनीतिक सहभागिता में अवरोध।
४. **संस्थात्मक–** सामूहिक सेवाओं की अल्प उपलब्धता
५. **आर्थिक अपवर्जन–** आर्थिक संसाधनों का अभाव
६. **घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्धों का अपवर्जन–** घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्धों में लगातार ह्रास।
७. **क्षेत्रीय अपवर्जन–** संकुचित एवं असुरक्षित होता आवासीय भौगोलिक क्षेत्र।

उपर्युक्त विवेचना से समझा जा सकता है कि सामाजिक अपवर्जन एक गतिशील प्रक्रिया होने के साथ-साथ बहुआयामी भी है। एक व्यक्ति या समूह के जीवन के विभिन्न पक्षों में सामाजिक अपवर्जन का अनुभव किया जा सकता है। उदाहरण के लिए मकानों का बढ़ता हुआ मूल्य एवं किराया तथा नवीन वाणिज्यिक गतिविधियां उन वरिष्ठ नागरिकों पर आर्थिक बोझ बढ़ा देती हैं जिनकी आय कम है (आर्थिक अपवर्जन)। सामाजिक नीति निर्धारण में वरिष्ठ नागरिकों के राजनीतिक प्रभाव में ह्रास होता जाता है (सामाजिक राजनीतिक अपवर्जन)। अपेक्षाकृत युवा उच्च्य शिक्षित एव धनवान नागरिकों के आगमन से वरिष्ठ नागरिकों के सम्बन्ध में रूढ़िवद्ध धारणाओं जैसे सठियाए हुए, सनकी, बवाली इत्यादि को बढ़ावा मिलता है (सांकेतिक अपवर्जन)। परिस्थितिवश यदि किसी वरिष्ठ नागरिक को अपना आवासीय क्षेत्र छोड़कर जाना पड़े या उसके मित्र एवं परिचित अन्यत्र चले जायें तो उसे सामाजिक सम्बन्धों के अपवर्जन का अनुभव करना पड़ता है। भौगोलिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन जैसे नवीन निर्माण, परिचित भवनों का ध्वस्तीकरण आदि से वरिष्ठ नागरिक असहज एवं असुरक्षित महसूस करते हैं (क्षेत्रीय अपवर्जन)। ऐच्छिक या बाध्यतापूर्ण विस्थापन भी क्षेत्रीय अपवर्जन का ही स्वरूप है।

परिवेश में होने वाले परिवर्तन किस तरह वरिष्ठ नागरिकों को प्रभावित करते हैं, इसे समझने के लिए परिवेश से लगाव की धारणा को भी समझाने की आवश्यकता है। वरिष्ठ नागरिकों के सम्बन्ध में यह और भी आवश्यक हो जाता है

क्योंकि बढ़ती आयु के साथ उनके लिए पास-पड़ोस का महत्व भी बढ़ता जाता है। वे व्यक्तिगत परिचय, अनुराग, एवं सामाजिक विभेदीकरण के द्वारा अपने परिवेश से विशेष सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।[10] इसलिए परिवेश में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वे इन परिवर्तनों की अनुभूति कैसे कर रहे हैं। परिवेश से लगाव के सम्बन्ध में राउलेस (Rowles) ने एक धारणा प्रस्तुत की है जिसमें किसी स्थान से लगाव को निम्न तीन अवयवों से समझा जा सकता हैः- १. आत्मकथात्मक, २. भौतिक, ३. सामाजिक। लम्बे समय तक किसी स्थान पर भौतिक रूप में निवास करने से निवासियों का उस स्थान एवं परिवेश पर एक नियन्त्रण स्थापित हो जाता है, जिसका सीधा सम्बन्ध उनकी दैनिक दिनचर्या से होता है। लम्बे अंतराल में बने सामाजिक सम्बन्ध, लेन-देन तथा सभी निवासियों से परिचय इस लगाव सामाजिक पक्ष को दर्शाते हैं। आत्मकथात्मक पक्ष में अपने परिवेश से जुड़ी व्यक्ति की अच्छी-बुरी यादें आती हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति वृद्ध होता जाता है वह इन स्मृतियों के आधार पर स्वयं की एक छवि बनाता है। परिवेश की सुखद स्मृतियों से वह अधिक ताकतवर, सुरक्षित, सकारात्मक छवि एवं परिस्थितियों पर नियंत्रण महसूस करता है।

अनुसंधान योजना : प्रस्तुत अध्ययन हेतु अन्वेषणात्मक, गुणात्मक वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है। निरन्तर परिवर्तित होते परिवेश में परिवर्तन के सम्बन्ध में वरिष्ठ नागरिकों के व्यक्तिगत अनुभव विवेचना की इकाई हैं। महत्वपूर्ण शोध प्रश्न हैं कि

१. वरिष्ठ नागरिकों के दिन- प्रतिदिन के जीवन में परिवेश का क्या महत्व है।
२. परिवेश में होने वाले किन परिवर्तनों को वरिष्ठ नागरिक संज्ञान में लेते हैं।
३. उक्त परिवर्तन किस तरह वरिष्ठ नागरिकों के सामाजिक अपवर्जन एवं अन्तरवेशन को प्रभावित कर रहे हैं।

इस जटिल विषय के अध्ययन के लिए सूचनाओं के स्रोतों के रूप में उपलब्ध साहित्य एवं सूचनादाताओं से लिए गए साक्षात्कार का प्रयाग किया गया है। सूचनादाताओं के रूप में ६५ वर्ष से अधिक आयु के उन वरिष्ठ नागरिकों को सम्मिलित किया गया है जो शोध-क्षेत्र में कम से कम पिछले दस वर्षों से रहते आये हों। ऐसे २० सूचनादाताओं को साक्षात्कार निर्देशिका के प्रकाश में असंरचित साक्षात्कार सम्पन्न किया गया है। सूचनादाताओं में मकान मालिक एवं किरायेदार, महिला एवं पुरूष को सम्मिलित किया गया है। सूचनादाताओं का चयन सोद्देश्य एवं दैवनिदर्शन से किया गया है। सम्पूर्ण बरेली महानगर शोध क्षेत्र है। गत १५ वर्षों में अत्यधिक वाणिज्यीकरण (अस्पताल, शोरूम, ऑफिस, शैक्षिक संस्थान इत्यादि) से जहां महानगर के कई हिस्सों का स्वरूप ही बदल गया है, वहीं दूसरे हिस्सों में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं आये हैं। **प्रत्येक** साक्षात्कार की पाण्डुलिपि को पढ़कर एक विवेचनात्मक सारांश तैयार किया गया जिससे सामाजिक अपवर्जन एवं अन्तरवेशन की स्थिति एवं गतिकी समझी जा सके। तत्पश्चात उन मुख्य मुद्दों को चिन्हित किया गया जिससे विषय वस्तु को समझा जा सके। सामाजिक अपवर्जन की विवेचना के लिए Billetle and Lavoie के सात आयामी माडल का प्रयोग किया गया है। सामाजिक अन्तरवेशन की विवेचना के लिए राउलेस की तीन अवयवों की धारणा का प्रयोग किया गया है।

उपलब्धियाँ : प्रस्तुत अध्ययन से हमें निरन्तर परिवर्तित हो रहे परिवेश में रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों की अपने परिवेश से संबंधित अनुभूति का उन्नत ज्ञात प्राप्त हुआ है। अध्ययन का एक परिणाम यह है कि अपने चिर-परिचित परिवेश में रहते हुए भी वरिष्ठ नागरिकों को असुरक्षा, असहजता एवं सामाजिक अपवर्जन का अनुभव होता है। सामाजिक अन्तरवेशन के अनुभव परिवेश की प्रकृति के अनुसार बदलते हैं। ऐसे क्षेत्र, जहां जीवन यापन के लिए आवश्यक मूलभूत सुविधाओं, सेवाओं का अभाव है, के निवासियों को अपने परिवेश से बहुत ज्यादा भौतिक लगाव नहीं है। दूसरी तरफ ऐसे क्षेत्र, जहां लोग पुश्तैनी रूप से पीढ़ियों से निवास करते आये हैं तथा जहां उनका एवं उनकी संतानों का जन्म हुआ है, के निवासियों में अपने परिवेश के प्रति आत्मकथात्मक लगाव पाया गया है। ऐसे क्षेत्रों में लोगों को सभी जरूरतें पूरी करने के लिए अपेक्षाकृत कम भौगोलिक क्षेत्र में घूमना पड़ता है। उनके सामाजिक सम्बन्धों का एक घनिष्ठ ताना-बाना बुन गया है जिससे उन्हें न केवल अपने पास-पड़ोस से बहुत लगाव है अपितु उसमें उपलब्ध विशेष दुकानों, सार्वजनिक स्थलों, पूजा स्थलों, भोजनालयों, शैक्षिक संस्थानों से भी लगाव है। इसके विपरीत पिछले १५-२० वर्षों में विकसित क्षेत्रों के निवासियों में परिवेश के प्रति आत्मकथात्मक एवं सामाजिक लगाव कम पाया गया है। उनके लिए परिवेश मात्र जीवन यापन के लिए आवश्यक प्रकार्य है। कुछ सूचनादाता, जो अनेक कारणों से अपने पुराने आवासीय परिवेश से दूर जाकर रहने लगे हैं, अभी भी खरीददारी या सामाजिकता निभाने हेतु पुराने परिवेश लौटकर आते हैं क्योंकि उसमें वह अधिक सुरक्षित एवं सहज अनुभूत करते हैं।

परिवेश में हो रहे परिवर्तनों के सम्बन्ध में भी वरिष्ठ नागरिकों की अनुभूति भिन्न-भिन्न है। अधिकांशतः सूचनादाताओं ने अपने अत्यधिक निकट घटने वाले परिवर्तनों को ही अनुभूत किया है। सबसे महत्वपूर्ण बदलाव जो संज्ञान में लिया गया है वो महानगर में बाहर से आकर बसती हुई विषमजातीय जनसंख्या से संबंधित है। इस बढ़ती अपरिचित भीड़ में वे असहज एवं असुरक्षित महसूस करते हैं। इस कारण से अनेक वरिष्ठ नागरिकों ने अपने चिरपरिचित सार्वजनिक स्थलों पर जाना छोड़ दिया है। इसके विपरीत कई सूचनादाताओं ने बढ़ती भीड़ को बड़ी सहृदयता के साथ स्वीकार किया है एवं अपरिहार्य बताया है। मकानों, दुकानों के बढ़ते मूल्यों एवं किराये को सभी ने संज्ञान में लिया है। जो आर्थिक रूप से सम्पत्ति पर आश्रित हैं वे प्रसन्न हैं। जो किरायेदार या खरीददार हैं वे दुःखी हैं। अपेक्षाकृत उच्च शिक्षित धनवान एवं युवा नवीन निवासियों से उनके भिन्न सामाजिक मूल्यों एवं जीवन शैली के कारण वरिष्ठ नागरिक असहज हैं।

परिवेश के आवासीय क्षेत्रों में बढ़ती व्यवसायिक गतिविधियों से भी वरिष्ठ नागरिक असुरक्षित एवं असहज अनुभूत कर रहे हैं। नये उत्पाद बेचने वाले मेगा स्टोर्स की चमक-दमक एवं उनमें आधुनिक तकनीकी का प्रयोग उन्हें असहज बना रहा है। अभी भी वे अपने पूर्वपरिचित दुकानदारों पर ही भरोसा करते हैं। भुगतान के नवीन तरीकें जैसे डेबिट/क्रेडिट कार्ड आदि पर अभी भी उन्हें कम विश्वास है। परम्परागत भोजन एवं भोजनालयों में ही अभी भी उनकी रूचि है। मनोरंजन के परम्परागत साधनों के बंद होने पर उन्हें दुःख है। उन्हें ऐसा लगता है कि परिवेश में होने वाले आधकांशतः परिवर्तनों के केन्द्र में नयी जनसंख्या है जिससे उनके हितों की अनदेखी हो रही है। स्थानीय कार्यदायी संस्थाओं में वरिष्ठ नागरिकों के हितों की बात करने वाले लोगों का अभाव हो रहा है जिससे वे राजनीतिक रूप से अशक्त महसूस कर रहे हैं। बढ़ते ट्रैफिक ने उनका आवागमन कम कर दिया है। परिणामस्वरूप वे अपने मित्रों, परिचितों से अब कम मिल पाते हैं। बेहतर होती चिकित्सा सुविधाओं से प्रसन्नता किन्तु उसकी बढ़ती कीमतों पर चिंता व्यक्त की गयी है।

उपर्युक्त निष्कर्ष Bowling & Stafford[१२] के अध्ययन के निष्कर्ष कि किसी परिवेश के वाणिज्यिक उत्थान से वहां रहने वाले वृद्धों की सामाजिक एवं भौतिक गतिशीलता बढ़ जाती है, से भिन्न हैं। इसके विपरीत वरिष्ठ नागरिक अनुभूत कर रहे हैं कि अब वे घरों में बंद रहकर जीने को मजबूर हैं इससे उनका एकांत वास एवं अदृश्यता बढ़ती जा रही है जो सीधा भौगोलिक अपवर्जन है। कुछ क्षेत्रों में वरिष्ठ नागरिक अपनी रूचि के सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पादित करने में सफल हैं। किन्तु ऐसे अधिकांशतः क्रियाकलाप धार्मिक हैं एवं क्षेत्रीय पूजाघरों में सम्पन्न होते हैं। साथ ही नवीन जनसंख्या द्वारा आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वे असहज एवं उपेक्षित महसूस करते हैं। कुछ क्षेत्रों में जीवन यापन के बढ़ते मूल्य के कारण वरिष्ठ नागरिक आर्थिक अपवर्जन भी महसूस कर रहे हैं। निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवेश का वरिष्ठ नागरिकों की जीवनशैली पर सीधा प्रभाव पड़ता है। ऐसे परिवेश, जहां वे सहज, सुरक्षित, प्रासंगिक एवं अपेक्षित अनुभूत कर सकें, को बनाये रखने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. Oswald F., Hieber A., Wahl H.W., and Mollenkofp. H., 'Aging and person-environment fit in different urban neighbourhoods', European Journal of Aging, Vol. 2, N. 2, 2005, pp. 88-97.
2. Wiles J., 'Conceptualizing place in the care of older people: the contributions of geographical gerontology', Journal of clinical Nursing, Vol. 14, No. 8b, 2005, pp. 100-108.
3. Cutehin M.P., 'Agenda for future spaces for enquiry into the role of place for older people's care', Journal of Clinical Nursing, Vol.14, N. 8B, 2005, pp 121-129.
4. Bridge G., Forrest R., and Holland E., 'Neighbouring : A Review of the Evidence', University of Bristol, ESRC Centre for Neighbourhood Research, Bristol, U.K. 2004.
5. Guest A.M., Wierzbicki S.K., 'Social ties at the neghbourhood level : two decades of GSS evidence', Urban Affairs Review, Vol. 35, No.1, 1999, pp. 92-111
6. Burns V.F., Lavoie J.P. and Rose D., 'Revisiting the role of Neighbourhood change in Social Exlusion and Inclusion of older people', Journal of Aging Research, Vol. 2012, p. 12
7. Room G, 'Beyond the Threshold : the Measurement and Analysis of Social Exclusion', The Policy press, Bristol, 1995.
8. Atkinson A.B., 'Social Exclusion, Poverty and Unempolyment', CASE Paper No.4, Centre for Analysis of Social Exclusion, London, 1998.
9. Billette V., and Lovoie J.P., 'Introduction fo Social Exlusion', Quebee University Press, Canada, 2010, pp. 1-22
10. Twigger Ross C. and Uzzell D.,' Place and Indentity Processes', Journal of Environmental Psychology, Vol. 16, No.3, 1996, pp. 205-220.
11. Rowles G., 'Prisioners of Space? Exploring the Geographical Experience of older people', Westview Press, Colo, USA, 1978.
12. Bowling M., and Stafford M., 'Findings from British Survey of Aging', Social Science and Medicine, Vol. 64, No. 12, 2007, pp. 2533-2549.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

भारतीय समाज में महिला उत्पीड़न एवं कानून : चुनौतियां एवं समाधान

❑ डा० रूपेश कुमार सिंह

वर्तमान भारतीय समाज में महिलाओं का उत्पीड़न विभिन्न प्रकार से किया जा रहा है तथा दिन-प्रतिदिन उत्पीड़न की नई-नई घटनाएं समाज में प्रकाश में आती हैं। महिलाओं पर हो रहे उत्पीड़न एवं अत्याचारों को रोकने के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर कानून बनाये गए हैं। आज हमारे समाज में महिलाओं के उत्पीड़न को रोकने के लिए लगभग तीन दर्जन कानून/अधिनियम लागू हैं इसके पश्चात् भी भारतीय समाज में महिला उत्पीड़न बदस्तूर जारी है। प्रस्तुत शोध पत्र में महिला उत्पीड़न रोकने में आने वाली चुनौतियों तथा कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन के द्वारा इसके समाधान पर चर्चा की गई है।

भारतीय समाज में महिलाओं का शोषण एवं उत्पीड़न सदैव से चर्चा का विषय रहा है कि किन स्थितियों एवं परिस्थितियों के कारण महिलायों का उत्पीड़न शुरू हुआ और उसके पीछे कौन- कौन से कारक उत्तरदायी हैं। जब हम भारतीय समाज के इतिहास का अवलोकन करते हैं तो पता चलता है कि प्राचीन भारतीय समाज, मध्यकालीन एवं आधुनिक (स्वतन्त्रतापूर्व एवं स्वतन्त्रता पश्चात) भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति एवं प्रस्थिति परिवर्तित होती रही है। इसलिए प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन आवश्यक है तभी इनके शोषण एवं उत्पीड़न के मूल कारणों का पता चल सकेगा।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मूल स्त्रोत वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति है और इस काल में महिलाओं की स्थिति एवं प्रस्थिति सम्मानजनक थी इनको पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे। ऋग्वेदकाल में स्त्रियों को पुरूषों की भाँति शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था कन्याओं का उपनयन संस्कार भी होता था और वह ब्रहाचर्य का पालन भी करती थी और इस काल में कुछ स्त्रियों ने ऋग्वेद के स्रोतो की रचना की जिनमें सबसे प्रमुख नाम ‘विश्वारा’ का आता है । इसके साथ कई अन्य विदुषी स्त्रियों के भी नाम आते है जैसे- घोषा, लोपामुद्रा, शाश्वती, अपाला, इन्द्राणी, सिकता, निवावरी आदि।[१] इस काल में महिलाएं पुरूषों से वाद-विवाद भी करती थी। साथ ही साथ कन्याओं का विवाह १५-१६ वर्ष में होता था एवं पर्दा प्रथा का प्रचलन नही था लेकिन ऋग्वेद के एक मंत्र में विधवा से पति की चिता पर से उठने को कहा गया है। फिर भी ऋगवेद में सती प्रथा के स्पष्ट प्रचलन का साक्ष्य उपलब्ध नही है।[२] इस प्रकार इस काल के अध्ययन से पता चलता है कि इस काल में महिलाओं को शिक्षा, उपनयन जैसे अधिकार प्राप्त थे और यह काल मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक समाज था।

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति की जानकारी अथर्ववेद से मिलती है जिसमें कहा गया है कि ब्रह्मचर्येण कन्यानं युवा विदन्ते पतिम’। इसका अर्थ है कि ब्रह्मचर्य द्वारा ही कन्या योग्य पति को प्राप्त कर सकती है।[३] इस समय कन्याओं को अधिकांश अधिकार वैदिक काल के समान प्राप्त थे। कन्याओं को शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञों, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने का अधिकार था साथ ही साथ वयस्क होने पर विवाह एवं विधवा होने पर पुनर्विवाह करने संबंधी अधिकार प्राप्त थे। इस समय की प्रमुख दार्शनिक महिलाएं मैत्रेयी, गार्गी, अत्रेयी आदि थीं। लेकिन समय के साथ महिलायों की स्थिति में परिवर्तन हुआ और अथर्ववेद में एक स्थान पर कन्याओं को चिन्ता का कारण बताया गया है। साथ ही कन्याओं को गुरूकुल में शिक्षा ग्रहण के स्थान पर घर पर रहकर शिक्षा देने का समर्थन किया गया है। फिर भी इस काल में महिलाओं की स्थिति संतोषजनक थी क्योकि सती प्रथा एवं बाल विवाह के उल्लेख नही मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इस काल में भी महिलाओं को गृह कार्यो एवं उत्तरदायित्वों के निर्वाह में पुरूषों का बराबर का भागीदार माना जाता था।

सूत्र-महाकाव्य में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आनी शुरू हो गयी थी इस काल में स्त्रियों का उपनयन संस्कार बन्द कर दिया गया और विवाह की आयु घटा दी गयी जिससे वह विधिवत शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाती थीं। इस समय स्त्रियों के विवाह के समय (८-१३ वर्ष की आयु) केवल वैदिक मंत्रो का उच्चारण होता था। साथ ही साथ स्त्रियों के वैदिक मंत्रो के उच्चारण एवं यज्ञों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगाकर उनकी स्वतन्त्रता सीमित कर दी गयी। इसका पता वशिष्ट स्मृति से

❑ सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, डा० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ०प्र०)

चलता है जिसमें उल्लेखित हैं ''पिता रक्षति कौमारे भर्तारक्षित यौवने, रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वतन्त्रयमर्हति।[४]

भारतीय समाज में स्मृति युग का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इस काल में स्मृतियो की रचना की गयी और इन्हें हम धर्मशास्त्र के रूप में मानते हैं। जिसमें प्रमुख एवं सबसे प्राचीन स्मृति 'मनुस्मृति' को माना जाता है। मनुस्मृति में उल्लिखित व्यवस्थाओं को भारतीय समाज में लागू किया गया और इसी के द्वारा महिलाओं के शिक्षा, उपनयन, यज्ञों, धार्मिक अनुष्ठानों पर प्रतिबन्ध लगाते हुए बाल विवाह पर जोर दिया गया। विधवाओं को पुनर्विवाह करने से रोका गया। साथ ही साथ विधवा स्त्री को मृत पति के उत्तराधिकारी के रूप में सिद्धान्ततः स्वीकार किया गया और 'मिताक्षरा' एवं 'दायभाग' में स्त्री को पति की मृत्यु होने पर सम्पति का पूर्ण उत्तराधिकारी माना गया। इस काल में स्त्रियों की विवाह की आयु ८ वर्ष से लेकर १० वर्ष के मध्य कर दी गयी तथा विधवा पुनर्विवाह प्रतिबन्धित कर सती प्रथा पर जोर दिया जाने लगा जिसका प्रचलन राजपूत कुलों में अधिक हो गया। इस समय कुलीन परिवारों में बहुविवाह का भी प्रचलन सामान्य हो गया था। इस प्रकार इस काल में महिलाओं का उत्पीड़न बाल विवाह, बहुविवाह, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध के रूप में मिलता है। साथ ही साथ सती प्रथा का प्रथम अभिलेखीय प्रमाण गुप्त काल के एरण लेख (भक्तानुरक्ता च प्रिया च कान्ता, भार्यावलग्नानुगताग्निराशिम) से मिलता है।[५]

महिलाओं की स्थिति एवं प्रस्थिति का इतिहास बौद्ध साहित्य से भी पता चलता है। इस समय महिलाओं की स्थिति वैदिक काल की तुलना में खराब हो गयी थी और महात्मा बुद्ध महिलाओं के संघ में प्रवेश के विरोधी थे लेकिन अपने प्रिय शिष्य आनन्द के आग्रह के पश्चात ही महिलाओं को संघ में प्रवेश दिया। इससे स्पष्ट होता है कि महात्मा बुद्ध जैसे महान व्यक्ति भी महिलाओं के अधिकारों आदि के प्रति संवेदनशील नहीं थे। इस समय भी सती प्रथा एवं पर्दा प्रथा (कुलीन परिवारों में) का प्रचलन दिखाई देता है।

भारतीय समाज पर इस्लाम का भी प्रभाव पड़ा क्योंकि भारत में मुस्लिम काल का प्रारम्भ दिल्ली सल्तनत की स्थापना से माना जाता है। इस समय रजिया केवल एक मात्र मुस्लिम शासिका बनी लेकिन उसका भी शासन काल अल्प था। इस काल में हिन्दू महिलाओं की स्थिति अत्यन्त निम्न और दयनीय हो गयी और उनको घर से बाहर निकलने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। साथ ही साथ इससे पूर्व जो पर्दा प्रथा का प्रचलन कुलीन परिवारों में था वह अब हिन्दू समाज की परम्परा का भाग बन गया क्योंकि मुस्लिम वर्ग में यह व्यवस्था थी। इस समय वैदिक काल में जो महिलाएं देवी के रूप में पूजी जाती थीं वह इस काल के शासकों के हरमों की शोभा बढ़ाने लगीं और महिलाओं पर जबरदस्ती या बलपूर्वक विवाह करने का चलन बढ़ गया। इसी समय सती प्रथा भी तेजी से बढ़ने लगी क्योंकि युद्ध में पराजय के पश्चात सेना महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार करती थी इसी से बचने के लिए महिलाएं अपने जौहर का प्रदर्शन करते हुए सती हुईं। मुगल साम्राज्य में अकबर ने महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए प्रयास किया लेकिन वह नगण्य था और इस समय महिलाओं का शोषण एवं उत्पीड़न चरम सीमा पर था। इस प्रकार मुगलकाल में महिलाओं की स्थिति एवं प्रस्थिति बहुत ही दयनीय हो गयी और वह केवल उपभोग की वस्तु मात्र बनकर रह गयी क्योंकि उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समाप्त कर उसके ऊपर अनेकों प्रतिबन्ध लगा दिये गये जिसमें इस काल में प्रमुख था पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि।

मुगल काल के अन्तिम दिनों से ही अंग्रेजों ने भारत में आना शुरू कर दिया था और धीरे-धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 'फूट डालो राज करो' की नीति अपनाते हुए अपना शासन स्थापित किया और उन्होंने सर्वप्रथम कलकत्ता को अपनी राजधानी बनाया। इस समय बंगाल की सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति बहुत दयनीय थी स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार नहीं था साथ ही साथ बाल विवाह, सती प्रथा, बहुपत्नी विवाह आदि का प्रचलन जोर शोर से था। विधवा महिलाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था और इन्हें अशुभ मानकर हरिद्वार, बनारस एवं मथुरा (वृन्दावन) आदि में छोड़ दिया जाता था इसीलिए इसका नमूना आज भी हम इन तीनों स्थानों पर देख सकते हैं। साथ ही साथ हृदय को दहला देने वाली प्रथा सती प्रथा भी तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त थी जिसकी ओर सबसे पहले ध्यान आकृष्ट हुआ राजाराम मोहन राय का और उन्होंने इस कुप्रथा को समाप्त करने का बीड़ा उठाते हुए अपने लेखों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। राजाराम मोहन राय के अथक प्रयासों के पश्चात ही इस प्रथा को समाप्त करने के लिए विलियम बैंटिक ने सती प्रथा रेगुलेशन एक्ट, १८२९ पास कर इसे पूर्णतः प्रतिबन्धित किया। इस प्रकार राजाराममोहन राय पहले समाज सुधारक थे जिन्होंने महिलाओं के शोषण एवं उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठायी। तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों एवं कुप्रथाओं विशेषकर महिलाओं के साथ भेदभाव, शोषण एवं उत्पीड़न के विरूद्ध संवेदनशील व्यक्तियों विशेषकर

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, द्वारिका नाथ टैगोर, देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, रानाडे, ज्योतिबा फुले आदि महापुरूषों ने आन्दोलन प्रारम्भ कर समाज सुधारने का बीड़ा उठाया। इन्ही महापुरूषों में एक शशीपदा बनर्जी ने विधवा पुनर्विवाह के क्षेत्र में एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हुए पत्नी की मृत्यु के पश्चात एक विधवा स्त्री से विवाह किया। इन लोगों के प्रयासों के पश्चात १८७२ में विवाह अधिनियम पारित हुआ। जिसमें महिलाओं को विवाह से सम्बन्धित उत्पीड़न से मुक्ति मिली। इस प्रकार महिलाओं के उत्पीड़न के विरूद्ध हमारे समाज में पुरूष वर्ग ने देश के भिन्न-भिन्न स्थानों से आवाज उठानी शुरू की और इसमें इनके साथ सावित्री बाई फुले, एनीबेसेन्ट, पाण्डिया रमाबाई ने भी महिलाओं की स्वतन्त्रता के लिए कार्य प्रारम्भ किया।

महिलाओं से जुड़ी समस्याओं, शोषण, उत्पीड़न को लेकर बम्बई के कुछ प्रगतिशील समाज सुधारकों ने १६०४ में 'आल इण्डिया वुमेन कान्फ्रेंस' आयोजित की और इसमें महिलाओं से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों पर चर्चा हुई। इसके पश्चात ऐनी बेसेन्ट ने महिलाओं के अधिकारों से सम्बन्धित एक संगठन बनाया और १६२५ में एक राष्ट्रीय संगठन के रूप में 'नेशनल काउन्सिल आफ वुमेन' का गठन किया गया। इस प्रकार यह सभी संगठन महिलाओं के शोषण के विरूद्ध कार्य कर रहे थे। इसी समय भारतीय समाज में महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति का आगमन हुआ जिन्होने विदेशों में शिक्षा ग्रहण कर दक्षिण अफ्रीका में शोषण के विरूद्ध अपनी आवाज उठायी थी। इन्होंने यहां आते ही तत्कालीन भारतीय समाज को संगठित करने का प्रयास शुरू किया क्योंकि इस समय यहां का समाज विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों, क्षेत्रों, भाषाओं के आधार पर विभाजित था और महिलाओं को बहुत ही निम्न श्रेणी का माना जाता था। महात्मा गांधी ने पहले चम्पारण में आन्दोलन किया और उसके पश्चात असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसमें समाज के सभी वर्गों ने भाग लिया लेकिन चौरी चौरा काण्ड ने गांधी के अहिंसा के सिद्धान्त को तोड़ दिया जिससे वह व्यथित हुए और उन्होंने आन्दोलन स्थगित कर दिया और इसके पश्चात ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को रचनात्मक कार्य करने के लिए आह्वान किया। इन रचनात्मक कार्यों में महिला हिंसा, महिला शिक्षा तथा महिला उत्पीड़न से भी सम्बन्धित कार्य थे। इसके कुछ वर्षों के पश्चात गांधी जी ने डाण्डी मार्च प्रारम्भ किया जिसमें महिलाओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया साथ ही १६४२ के भारत छोड़ों आन्दोलन में भी महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभायी।

महात्मा गाँधी के साथ ही भारतीय समाज में व्याप्त जातीय व्यवस्था, छुआछूत, अस्पृश्यता जैसी सामाजिक बुराइयों के खिलाफ डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने समाज के शोषित, वंचित एवं कमजोर वर्गों के अधिकारों की वकालत शुरू की। सामान्यतः जनमानस में यह धारणा है कि डा० अम्बेडकर केवल दलितों के उत्थान के लिए कार्य कर रहे थे लेकिन यह धारणा बिल्कुल गलत है क्योंकि डा० अम्बेडकर ने महिलाओं के शोषण एवं उत्पीड़न के खिलाफ भी कार्य किया और उन्हीं के प्रयासों से फलस्वरूप मातृत्व लाभ (१६४२), हिन्दू कोड बिल एवं संवैधानिक व्यवस्था के द्वारा महिलाओं को अधिकार सम्पन्न बनाया गया।

स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय समाज के पुनर्निमाण के लिए प्रयास शुरू हुए जिसमें मुख्य था भारतीय समाज में व्याप्त भेदभाव, शोषण एवं उत्पीड़न (धर्म, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर) इसको समाप्त करने और देश को चलाने के लिए भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और इसको बनाने का दायित्व भी डा० भीमराव अम्बेडकर पर सौंपा गया। चूंकि डा० अम्बेडकर प्रारम्भ से ही महिलाओं के साथ भेदभाव, शोषण, उत्पीड़न आदि के विरूद्ध थे इसलिए उन्होंने संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों- १४, १५ (१), (३), १६ (२), १६, २१, ३६ (क), (ख), (ग), ४२, ४७, ५१ (३) आदि के द्वारा महिलाओं को भेदभाव, शोषण एवं उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया गया। सन् १६६३ में पंचायतीराज अधिनियम के द्वारा (अनुच्छेद- २४३ (क)) सरकार ने महिलाओं को आरक्षण प्रदान कर निर्णय लेने की प्रक्रिया में भी सम्मिलित किया है। उक्त संवैधानिक प्रावधानों के बाद भी निरन्तर भारतीय समाज में महिलाओं का शोषण एवं उत्पीड़न घर के अन्दर, बाहर एवं कार्यस्थल पर देखने को मिलता है। यह कहने में अतिश्योक्ति नहीं होगी कि महिलाओं के गर्भधारण काल से लेकर वृद्धावस्था तक निरन्तर इनका शोषण एवं उत्पीड़न होता रहता है।

भारतीय समाज में महिला उत्पीड़न

जीवन काल	**उत्पीड़न का स्वरूप**
नवजात काल	जन्मजात शिशु हत्या, नवजात कन्या शिशु को फेंकना, कुपोषण
बाल्यकाल	शिक्षा एवं चिकित्सीय सुविधाओं का अभाव, यौन उत्पीड़न, शारीरिक हिंसा
किशोरावस्था व वयस्क काल	कम आयु में विवाह, शीघ्र गर्भ धारण, यौन हिंसा, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, दहेज उत्पीड़न, बलात्कार,

	आनर किलिंग, बांझपन, लड़का पैदा करने में असफलता, परित्याग करना, वेश्यावृत्ति में धकेलना, तेजाब फेंकना, ओझागिरी का शिकार, बहुविवाह, उच्च प्रसव- मातृ मृत्यु
वृद्धावस्था	परित्याग उपेक्षा हिंसा

वर्तमान भारतीय समाज में महिलाओं का उत्पीड़न बदस्तूर जारी है और आज भी भ्रूण हत्या, जन्मजात शिशु हत्या, यौन उत्पीड़न, शारीरिक हिंसा, दहेज उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, कार्य स्थल पर हिंसा, सार्वजनिक स्थलों व आवागमन में उत्पीड़न आम बात बन गयी है। भारत वर्ष में प्रतिवर्ष ५ लाख कन्या भ्रूणों की हत्या कर दी जाती है और यहां प्रतिवर्ष पैदा होने वाली १५ लाख बच्चियों में १.५ लाख बच्चियां अपने प्रथम जन्मदिन से पूर्व तथा लगभग २५ प्रतिशत बच्चियां १५वां जन्मदिन देखने से पूर्व ही मर जाती हैं।[६]

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार ७७ प्रतिशत महिलाएं घरेलू हिंसा का शिकार हैं जिसमें ५२ प्रतिशत महिलाएं लम्बे समय से शारीरिक हिंसा से पीड़ित हैं। अगर महिलाओं से सम्बन्धित अपराध की घटनाओं, दहेज उत्पीड़न एवं यौन उत्पीड़न पर नजर डालते हैं तो पता चलता है कि भारत में हर घण्टे २० महिलाएं अपराध का शिकार होती हैं। दहेज उत्पीड़न और यौन उत्पीड़न के मामले में उत्तर प्रदेश प्रथम स्थान पर हैं।[७] इस प्रकार दिन प्रतिदिन भारतीय समाज में महिलाओं का उत्पीड़न बढ़ता जा रहा है और उत्पीड़न का स्वरूप एवं तरीके भी बदल रहे हैं चाहे वह तेजाब के हमले की शिकार महिलाएं हों या फिर इण्टरनेट द्वारा उनकी आपत्तिजनक फोटो अपलोड करना। लेकिन विभिन्न प्रकार के शोषण, उत्पीड़न, हिंसा आदि से महिलाओं को सुरक्षित एवं संरक्षित करने के उद्देश्य से लगभग तीन दर्जन कानून सरकार द्वारा बनाये गये हैं।

महिलाओं से सम्बन्धित कानून एवं विधेयक

१. सती प्रथा निषेध अधिनियम, १८२६
२. विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, १८५६
३. महिला शिशु हत्या निवारण अधिनियम, १८७०
४. विशेष विवाह अधिनियम, १८७३
५. शारदा एक्ट, १६२६
६. हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार अधिनियम, १६३७
७. हिन्दू विवाहित महिला का अलग निवास और भरण पोषण अधिकार अधिनियम, १६४६
८. कारखाना अधिनियम, १६४८
६. न्यूनतम वेतन भुगतान अधिनियम, १६४८
१०. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, १६४८
११. बागान श्रमिक अधिनियम, १६५१
१२. हिन्दू विवाह अधिनियम, १६५५
१३. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १६५६
१४. हिन्दू दत्तक और भरण पोषण अधिनियम, १६५६
१५. अनैतिक व्यापार और संरक्षता अधिनियम, १६५६
१६. दहेज प्रतिषेध अधिनियम, १६६१
१७. प्रसूति लाभ अधिनियम, १६६१
१८. भारतीय तलाक अधिनियम, १६६६
१६. गर्भपात अधिनियम, १६७१
२०. समान वेतन अधिनियम, १६७६
२१. परिवार न्यायालय अधिनियम, १६८४
२२. स्त्रियों के अशिष्ट रूपण प्रतिरोध अधिनियम, १६८६
२३. बालश्रम प्रतिषेध अधिनियम, १६८६
२४. सतीप्रथा निवारण अधिनियम, १६८७
२५. राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, १६६०
२६. महिला कर्मकार अधिनियम, १६६३
२७. प्रसवपूर्व तकनीक निवारण अधिनियम, १६६४
२८. किशोर न्याय अधिनियम, २०००
२६. पी०सी०पी०एन०डी०टी० अधिनियम, २००३
३०. घरेलू हिंसा से महिलाओं को संरक्षा अधिनियम, २००५
३१. द राइट आफ चिल्ड्रेन टू फ्री एण्ड कम्पल्सरी एजुकेशन अधिनियम, २००६
३२. द राइट टू एजुकेशन अधिनियम, २०१०
३३. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न निषेध विधेयक, २०१०
३४. घरेलू कर्मचारी कल्याण और सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, २०१०
३५. इज्जत के नाम अपराध की परम्परा विधेयक, २०१०

महिलाओं को शोषण एवं उत्पीड़न का शिकार होने से बचाने के लिए अधिनियमों, कानूनों के अतिरिक्त भारतीय दण्ड संहिता की विभिन्न धाराओं- ३०२, ३०४-ठ, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३५४, ३६३, ३६६, ३७३, ३७६, ४१७, ४६८-।, ५०६ आदि से भी सुरक्षा प्रदान की गयी है। इस प्रकार विभिन्न कानूनों एवं भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं के लागू होने के पश्चात भी भारतीय समाज में महिलाओं का शोषण एवं उत्पीड़न विभिन्न रूपों में हो रहा है जो आज के नीति निर्माताओं, नेताओं, शासकों, प्रशासकों, सामाजिक

कार्यकर्ताओं के लिए चुनौती का विषय है कि किस प्रकार इन घटनाओं पर अंकुश लगाया जाय। महिलाओं के ऊपर होने वाले भिन्न-भिन्न उत्पीड़न, हिंसा, अपराध आदि का विवरण हम एन०सी०आर०बी० २०१२ की रिपोर्ट में देख सकते हैं।

अपराध का स्वरूप	वर्ष (२०११)	वर्ष (२०१२)
बलात्कार (Section- 376 IPC)	२४,२०६	२४६२३
अपहरण (Section- 363to373 IPC)	३५,५६५	३८,२६२
दहेज हत्या (Section-302/304 IPC)	८,६१८	८२३३
महिला पर पति एवं रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता (Section- 498-A IPC)	९९,१३५	१०६,५२७
महिलाओं पर अत्याचार (Section- 354 IPC)	४२,९६८	४५,३५१
महिला का उपहास (Section- 509 IPC)	८,५७०	९,१७३
लड़कियों का अन्य देशों से आयात (Section- 366 IPC)	८०	५९
योग	**२,१९,१४२**	**२,३२,५२८**

महिलाओं के उत्पीड़न एवं हिंसा से सम्बन्धित राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो की सन् २०१२ की रिपोर्ट में ११,७४२ प्रकरण सती प्रतिषेध अधिनियम, १९८७, अनैतिक व्यापार (निषेध) अधिनियम, १९५६, स्त्रियों के अशिष्टरूपण प्रतिरोध अधिनियम, १९८६ एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम, १९६१ के तहत पंजीकृत किये गये हैं। इस प्रकार दोनो प्रकार के कुल प्रकरणों की संख्या सन् २०१२ में २,४४,२७० है। इससे यह प्रतीत होता है कि महिलाओं का उत्पीड़न निरन्तर भारतीय समाज में हो रहा है और उसमें वर्ष २०११ से २०१२ में ६.८ प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

वर्तमान भारतीय समाज में हाल की कुछ घटनाओं ने हमारी सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था को हिला कर रख दिया और हमें महिलाओं के उत्पीड़न के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। जिसमें दिल्ली गैंग रेप काण्ड, जस्टिस गांगुली एवं स्वतन्त्र कुमार तथा तरूण तेजपाल के प्रकरण प्रमुख है। यह कुछ ऐसे प्रकरण थे जिसमें महिलाओं के साथ-साथ पुरूषों ने भी आवाज उठायी और महिलाओं से सम्बन्धित कानूनों के क्रियान्वयन पर नई बहस शुरू हो गयी साथ ही यह पता करने का प्रयास शुरू किया जाने लगा कि अनेकों कानूनों के होने के बावजूद भारतीय समाज में महिलाओं का उत्पीड़न क्यों हो रहा है और इन कानूनों के क्रियान्वयन में क्या चुनौतियां आ रही हैं और इनको किस प्रकार दूर किया जाय या इन चुनौतियों का समाधान किस प्रकार किया जाय।

भारतीय समाज एक पितृसत्तात्मक समाज है और इस समाज में महिलाओं को पुरूषों के अधीन रखने की परम्परा चली आ रही है इसीलिए अधीनस्थ या आश्रित व्यक्ति आवाज नही उठाता है चाहे उसका जितना भी शोषण या उत्पीड़न हो। लेकिन इस परम्परा, मनोवृत्ति एवं सोच को बदलना एक बड़ी चुनौती है तभी महिला उत्पीड़न के विरूद्ध आवाज उठेगी।

आज देश में महिलाएं घर के अन्दर और बाहर, गाँवो तथा शहरों, महानगरों एवं कस्बों सभी जगह असुरक्षित हैं। इसके पीछे मुख्य कारण है महिलाओं द्वारा अपने शोषण, उत्पीड़न, हिंसा आदि के प्रति खुलकर आवाज न उठाना। इसीलिए तमाम कानूनों के बावजूद महिलाओं का शोषण हो रहा है। अगर किसी प्रकरण में महिला द्वारा आवाज उठायी भी जाती है तो उसका सहयोग देने वाले लोग ही पीछे हट जाते है इसलिए महिलाएं अपने को निःसहाय महसूस करती है फिर भी अगर वह आगे बढ़ती है तो पुलिस, डाक्टर एवं न्यायालय द्वारा उनको पूरा सहयोग नहीं मिलता है जिससे महिलाएं चुप रहना बेहतर समझती है। इस प्रकार महिला उत्पीड़न के खिलाफ महिलाओं की चुप्पी तोड़ना एक सबसे प्रमुख चुनौती है।

समकालीन भारतीय समाज में महिलाओं का उत्पीड़न एवं शोषण अपनों द्वारा प्रमुखता से किया जा रहा है और इसके विरूद्ध परिवार एवं रिश्तेदारों द्वारा आवाज न उठाना एक बड़ी समस्या है। साथ ही साथ कन्या भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, दहेज उत्पीड़न आदि प्रकरणों में अधिकांश महिलाओं के निकटस्थ लोग ही सम्मिलित होते है जिसके कारण उत्पीड़ित महिला सशक्त कदम नहीं उठा पाती है।

यह निर्विवाद सत्य है कि महिलाओं का शोषण एवं उत्पीड़न पुरूषों द्वारा किया जाता है लेकिन दहेज उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, कन्या भ्रूण हत्या, गर्भपात, नवजात कन्या शिशु हत्या आदि मामलों में महिलाएं पुरूषों को पूरा सहयोग प्रदान करती हैं। इसीलिए यह सभी समस्याएं अद्यतन भारतीय समाज

में व्याप्त हैं।

हमारे समाज में महिलाओं के उत्पीड़न में प्रमुख भूमिका हमारी संस्कृति, प्रथा और परम्पराओं को पैरवी करने एवं इन्हें क्रियान्वित करने का बीड़ा उठाने वाली हमारी जातीय एवं खाप पंचायतें हैं जो अपने को कानून से ऊपर समझती हैं और इन पंचायतों के आगे कानून के रखवाले भी अपने को निःसहाय समझते हैं। इसीलिए यह पंचायतें दिन-प्रतिदिन महिलाओं का उत्पीड़न करने का फरमान जारी करती हैं जो कानून के क्रियान्वयन में चुनौती बनकर खड़ी हैं।

बलात्कार एवं सामूहिक बलात्कार के प्रकरणों में महिलाओं को कानूनी संरक्षण प्रदान किया जाता है लेकिन पुलिस द्वारा असहयोग, डाक्टरों का चिकित्सीय रिपोर्ट में हेरफेर एवं लम्बी तथा जटिल न्यायिक प्रक्रिया के कारण महिलाओं का मनोबल टूट जाता है। साथ ही वह समाज में उपहास का पात्र बनती हैं तथा समाज के लोग इन प्रकरणों में महिलाओं का साथ न देकर उसके चरित्र पर ही प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। इस प्रकार जहां पुरूषों या समाज के अन्य वर्गों को इसका जोरदार विरोध करना चाहिए वहां यह लोग चुप्पी साध लेते हैं। इन्हीं कारणों से महिलाओं का उत्पीड़न जारी रहता है।

महिलाओं का कार्यस्थल पर उत्पीड़न, शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों एवं सहपाठियों द्वारा शोषण एवं उत्पीड़न, गली-बाजार में छेड़छाड़, मारपीट, तेजाब फेंकने आदि के प्रकरणों में समाज के साथ शासन एवं प्रशासन द्वारा उदासीनता दिखाना एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

इन चुनौतियों के साथ-साथ महिलाओं में अशिक्षा, अज्ञानता, आर्थिक निर्भरता, कुपोषण, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं आदि है जिसके कारण महिलाएं उत्पीड़न का विरोध नहीं कर पाती हैं और न ही जागरूकता के अभाव में कानून का सहारा ले पाती हैं। समकालीन भारतीय समाज में महिलाओं के उत्पीड़न की घटनाओं को समाप्त करने के लिए जो कानून बनाये गये हैं और इन कानूनों के क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों को दूर करने के लिए कुछ सकारात्मक कदम उठाये जा सकते हैं।

१. महिलाओं की उत्पीड़न से मुक्ति के लिए समय-समय पर कानून बनाये गये हैं और उनमें आवश्यकतानुरूप संशोधन भी किया गया है इसलिए सबसे पहले इन कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन अपने स्तर के अधिकारियों, आयोगों को करना चाहिए। साथ ही साथ कानून को क्रियान्वियत करने वाले अधिकारियों की जवाबदेही भी तय की जाय तभी हमारे समाज से महिला उत्पीड़न की घटनायें कम होगी।
२. महिलाओं की स्वतन्त्रता, समानता के अधिकारों के लिए केवल नारीवादी आन्दोलन ही पर्याप्त नहीं है। हमें राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले जैसे महापुरूषों के कार्यों को आदर्श मानते हुए समाज के पुरूष वर्ग के लोगों को इनके उत्पीड़न के खिलाफ आवाज बुलन्द करनी पड़ेगी और कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन में प्रशासन का सहयोग करना पड़ेगा तभी भारतीय समाज से महिला उत्पीड़न समाप्त होगा।
३. महिला उत्पीड़न के बारे में सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा जागरूकता कार्यक्रमों, कार्यशालाओं आदि के माध्यम से लोगों को संवेदनशील बनाना होगा ताकि समाज के युवा वर्ग से लेकर सभी लोग इस प्रकार की घटनाओं को रोकने में मदद करें।
४. महिलाओं से सम्बन्धित भेदभाव, शोषण, उत्पीड़न, हिंसा, अपराध आदि के बारे में जेण्डर शिक्षा छात्र/छात्राओं को स्कूल स्तर से प्रदान की जाय। साथ ही उन्हें महिला उत्पीड़न से सम्बन्धित कानूनों की जानकारी पाठ्यक्रम का एक भाग बनाकर दी जाए ताकि वह इन मुद्दों के प्रति संवेदनशील बन सके और ऐसी घटनाओं में उनकी संलिप्तता न हो सके।
५. महिलाओं के उत्पीड़न से सम्बन्धित कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए पुलिस को संवेदनशील बनाया जाय तथा पुलिस बलों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ायी जाय ताकि महिला उत्पीड़न से सम्बन्धित घटनाओं में प्रभावपूर्ण कार्यवाही हो सके।
६. महिला उत्पीड़न से सम्बन्धित प्रकरणों के त्वरित निस्तारण के लिए फास्ट ट्रैक कोर्ट का गठन कर इन मुकदमों का एक निश्चित समय सीमा में निस्तारण किया जाय साथ ही न्यायिक प्रक्रिया से जुड़े लोगों को और अधिक संवेदनशील बनाया जाय।
७. वर्तमान पंचायतीराज व्यवस्था में लगभग १० लाख महिलाएं प्रतिनिधि के रूप में विभिन्न स्तरों (ग्राम, मध्य एवं जिला) पर कार्य कर रही हैं। इन महिला पंचायत प्रतिनिधियों को महिला उत्पीड़न से सम्बन्धित घटनाओं के प्रति संवेदनशील बनाते हुए कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन में सक्रिय एवं सशक्त भूमिका निभाने के लिए तैयार किया जाय।
८. भारतीय समाज के लोगों में पितृसत्तात्मक, मर्द एवं मर्दानगी की मनोवृत्ति, सोच एवं व्यवहार में परिवर्तन के लिए ग्रामीण क्षेत्रों से लेकर शहरी क्षेत्रों में जागरूकता

अभियान चलाना होगा जिसमें पुरूषों को सक्रिय भूमिका निभानी होगी।

९. महिला उत्पीड़न की घटनाओं में महिलाओं की चुप्पी तोड़ने के लिए पुरूष वर्ग को आगे आना होगा और उनका सहयोग करना होगा तभी शासन एवं प्रशासन कठोर कार्यवाही कर पायेगा।

१०. राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय महिला आयोगों को और अधिक अधिकार सम्पन्न बनाया जाय तथा महिला उत्पीड़न की घटनाओं में सीधे हस्तक्षेप करने एवं कानूनी कार्यवाही की समीक्षा करने की शक्ति प्रदान की जाय।

११. हमारे देश के नीति निर्माताओं को महिलाओं से सम्बन्धित मुद्‌दों पर प्रभावशाली नीतियां एवं कार्यक्रम बनाने चाहिए ताकि पीड़ित महिला को उचित एवं संतोषपूर्ण न्याय मिल सके। साथ ही दोषी व्यक्ति, परिवार, समुदाय एवं समाज को कठोर दण्ड मिल सके।

१२. महिलाओं के साथ भेदभाव, शोषण, उत्पीड़न, हिंसा, अपराध आदि से मुक्त समाज की रचना के लिए महिलाओं को विधायिका में उनकी जनसंख्या के अनुरूप आरक्षण प्रदान किया जाय ताकि महिलाएं विधायिका में बैठकर कानून निर्माण की प्रक्रिया में अपनी सक्रिय एवं सशक्त भूमिका अदा कर सके।

वर्तमान भारतीय समाज में महिलाओं के उत्पीड़न के **विरूद्ध** समाज के सभी वर्गों, धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों को मिलकर एवं पितृसत्तात्मक तथा मर्दानगी की सोच से बाहर निकलकर एक भेदभाव, उत्पीड़न, हिंसा, अपराध मुक्त समाज की रचना के लिए मुहिम चलानी होगी और इसका नेतृत्व हमारे पुरूष वर्ग को करना होगा तभी हमारे समाज से यह घटनायें समाप्त होगी और एक समतामूलक भारतीय समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा।

सन्दर्भ

१. श्रीवास्तव, के०सी०, ''प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति'', यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, २०००, पृ. १६४

२. थपलियाल, के०के०, ''वैदिक संस्कृति'', अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, २००६, पृ. १८

३. थपलियाल, पूर्वोक्त, पृ. १७

४. श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृ. १६६

५. वही, पृ. २०१

६. मोहन, ममता, ''सशक्तीकरण : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण'' योजना, योजना भवन, नई दिल्ली, अंक जून, २०१२, पृ. ४४

७. आलम, शम्स एवं सिद्‌दकी, इकबाल, ''महिलाओं के विरूद्ध घरेलू हिंसा तथा उत्पीड़न'', ''भारतीय नारी : कल और आज'' (सम्पा०), गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा (म०प्र०), २०१२, पृ. २८१

८. अखिलेश, एस एवं शुक्ला, संध्या, ''भारतीय नारी : कल और आज'' गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा (म०प्र०), २०१२

९. निकुंज एवं पँवार, मीनाक्षी , ''नारी उत्पीड़न और कानून, ''निकुंज प्रकाशन, बड़वानी (म०प्र०), १९९४

१०. सिंह, राम गोपाल, ''डॉ० अम्बेडकर सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन'' नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, जयपुर, २००६

११. योजना, ''स्त्री सशक्तिकरण, ''योजना भवन, नई दिल्ली, अंक जून, २०१२

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

म.प्र. के ग्रामीण समुदायों में व्यावसायिक गतिशीलता एवं बदलाव लेता हुआ जातीय संस्तरण

❑ डॉ. संजय जोशी

प्रस्तावनाः लंबे समय तक भारत की पहचान जाति प्रथा पर आधारित एक बंद व्यवस्था वाले परम्परागत समाज के रुप में रही है। परंतु अंग्रेजों के भारत आगमन एवं स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात् उत्पन्न विभिन्न नवीन व्यावसायिक अवसरों यथा बैंक, न्यायालय, रेलवे, डाकघर, कल कारखानें, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, अस्पताल, पुलिस, सेना तारघर, सरकारी कार्यालय एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों ने भारत में भी संस्तरण की खुली वर्ग व्यवस्था का सूत्रपात किया, जिसके द्वारा विभिन्न जातियों के लोगों ने अपने परम्परागत धंधे में बदलाव कर नवीन माध्यम वर्गो व व्यावसायिक समूहों को जन्म दिया।[१] सन १९९० के बाद सूचना एवं संचार क्रांति, आर्थिक, उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से उभरे नये बाजार एवं नई आर्थिक संस्थाओं व मल्टीनेशनल कंपनियों ने भारत के परम्परागत स्वरुप को परिवर्तित करते हुए उसे विश्व पटल पर आर्थिक, सामाजिक तथा गतिशीलता की दृष्टि से एक मुक्त समाज के रुप में स्थापित किया। इन सब प्रक्रियाओं का प्रभाव ग्रामीण समाज पर पड़े बिना नहीं रह सकता था।[२] स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण समाज के उन्मुखीकरण हेतु विभिन्न नियोजित प्रयासों, कल्याण कार्यक्रमों, संवैधानिक अधिकारों, शिक्षा के प्रसार, कृषि की दशा में सुधार, कृषि कार्य से संबंधित नवीनतम वैज्ञानिक मशीनी आविष्कार व यंत्र, शिक्षा एवं नौकरियों में आरक्षण आदि ने ग्रामीण समाज में व्यवसायात्मक एवं शैक्षणिक गतिशीलता के नये अवसर उत्पन्न किये। आरक्षण की सुविधा ने निम्न जातियों एवं जनजातियों के लोगों को भी धंधागत परम्परात्मक व्यवसाय में बदलाव के द्वारा व्यावसायिक गतिशीलता के अवसर प्रदान किये हैं।[३] १९९० में वी.पी.सिंह की नेतृत्व वाली सरकार ने बी.पी. मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करते हुए अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों में भी आरक्षण का प्रावधान लागू करके बड़े पैमाने पर व्यावसायिक एवं शैक्षणिक गतिशीलता को प्रसारित किया।[४]

> स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण समाज के उन्मुखीकरण हेतु विभिन्न नियोजित प्रयासों, कल्याण कार्यक्रमों, संवैधानिक अधिकारों, शिक्षा के प्रसार, कृषि की दशा में सुधार, शिक्षा एवं नौकरियों में आरक्षण, नए वैज्ञानिक व मशीनी आविष्कारों ने ग्रामीण समुदायों में व्यवसायात्मक गतिशीलता के नए अवसर उत्पन्न किये हैं। आरक्षण की सुविधा ने निम्न जातियों एवं जनजातियों के लोगों को भी धंधेगत बदलाव के द्वारा व्यावसायिक गतिशीलता के अवसर प्रदान किये हैं। म.प्र. के गांवों में उत्पन्न इन परिवर्तनों से सामाजिक स्तरीकरण का स्वरूप बदल रहा है और बदलाव का यह स्वरूप इस तरह का है कि एक प्रकार का पुनर्स्तरीकरण होता हुआ दिखाई दे रहा है। इस पुनर्स्तरीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति की जाति एवं वर्ग का नाम इतना महत्वपूर्ण नहीं रह गया है जितनी उसकी व्यायसायिक पहचान। प्रस्तुत अध्ययन इसी स्थिति को उजागर करने का प्रयास है।

इसके फलस्वरुप निम्न एवं मझोली जातियों ने इनका लाभ उठाकर अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को ऊचां उठाया है। इन प्रावधानों के फलस्वरुप निम्न जातियों एवं मझोली जातियों में नव मध्यम वर्ग उत्पन्न हुए है जो पहले इन जाति समूहों में नही थे।[५] परिवर्तन के इन प्रतिमानों ने ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था एवं संरचना में काफी हलचल उत्पन्न कर दी है। ग्रामीण व्यवस्था में उत्पन्न इस परिवर्तन से ग्रामीणों की वैचारिक सोच, दृष्टिकोण एवं जीवन शैली भी बदली है।

उद्देश्य :- श्रम और स्थायित्व पर आधारित ग्रामीण जीवन अब उत्पादन के नए साधनों और स्थानों की ओर प्रवाहित होने लगे हैं। सामाजिक परिवर्तन का अर्थ इस संदर्भ में है कि समाज के बहुसंख्यक व्यक्तियों का पेशा उनकी पुरानी पीढ़ी की तुलना में भिन्नता लिये हुए तो अथवा उनके अपने कार्यो से भिन्न हो जिन्हें वे कुछ समय पूर्व तक करते थे। ग्रामीण समुदायों मे उत्पन्न व्यावसायिक गतिशीलता ने किस प्रकार ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था में परिवर्तन उत्पन्न किया है इसको आनुभाविक स्तर पर जानने का प्रयास ही इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है।

❑ विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

यहां पर यह बात उल्लेखनीय है कि सामाजिक गतिशीलता भी सामाजिक परिवर्तन का ही एक स्वरुप है। गतिशीलता को समाजशास्त्री एक सामाजिक तथ्य के रुप में स्वीकार करते हैं। समाजशास्त्र में सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन सामाजिक, संस्तरण एवं सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में किया जाता है। बेतई[६] का मत है कि हम सामाजिक गतिशीलता के अध्ययन के द्वारा सामाजिक संस्तरण एवं सामाजिक गतिशीलता के अध्ययन के द्वारा सामाजिक संस्तरण एवं सामाजिक ढांचें में होने वाले परिवर्तन एवं उसकी गति को ज्ञात कर सकते हैं। इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं :-

१. ग्रामीण समाज मे सामाजिक गतिशीलता के आयाम क्या हैं ?
२. व्यावसायिक गतिशीलता को उत्पन्न एवं प्रोत्साहित करने वाले कारक क्या है ?
३. व्यावसायिक गतिशीलता ने ग्रामीण समुदायों के परम्परागत जाति संस्तरण की व्यवस्था में क्या बदलाव उत्पन्न किये हैं ?
४. व्यावसायिक गतिशीलता का ग्रामीण विकास में योगदान का पता लगाना।

अध्ययन पद्दति :- शोध हेतु उद्देश्यपूर्ण प्रणाली के आधार पर मध्यप्रदेश के नीमच जिले में स्थित दो गाँवों को, जो जिले की दो भिन्न-भिन्न तहसीलों में स्थित हैं, अध्ययन क्षेत्र के रुप में चयनित किया गया है। अध्ययन के लिये चुने गये दोनो गाँव सरवानिया महाराज एवं रेवली-देवली जिले की क्रमशः जावद एवं नीमच तहसील में स्थित है। सम्पूर्ण अध्ययन में सूचनादाताओं को आधार मानते हुए सौद्देश्यीय एवं कोटा निदर्शन प्रणाली से निदर्शन निर्धारित किया गया है। दोनो गाँवों के चयन हेतु निम्न मापदण्ड तय किये गये।

१. दोनो ही गाँव जिला मुख्यालय के नजदीक स्थित हों।
२. दोनो गाँवों में आधारभूत संरचना (यातायात, संचार, स्वास्थ्य, सिंचाई, पेयजल व शिक्षा) के अभिकरण उपलब्ध हों।
३. गैर कृषिगत धंधों, लघु उद्योग धंधे, स्वरोजगार प्रशिक्षण केंद्र, ग्रामीण कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना हो।

उपर्युक्त विशेषताओं के साथ ही दोनो गांवों के चयन हेतु प्रमुख आधार निम्न तय किये गये -

१. दो गांवो का चयन तुलनात्मक अध्ययन के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर किया गया।
२. इसमें एक विकसित गांव हो व दूसरा कम विकसित या विकासशील गांव हो।
३. विकसित गांव हेतु आधार तय किये गये कि गांव में कम से कम एक हाईस्कूल/हायर सेकेण्डरी स्कूल हो, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र हो, पंचायत मुख्यालय हो, लघुस्तर की कम से कम पांच उद्यम इकाईयां हों एवं लगभग ५००० की आबादी वाला गांव हो।
४. दूसरे कम विकसित गांव हेतु यह आधार तय किये गये कि गांव में कम से कम एक माध्यमिक विद्यालय, उप स्वास्थ्य केंद्र, पंचायत मुख्यालय एवं लगभग २००० की आबादी हो।

इस आनुभविक अध्ययन हेतु चयनित दोनो गांवों का सर्वप्रथम जनगणना सर्वेक्षण किया गया। अध्ययन के दोनो गांवों से उच्च शिक्षित एवं गैर परम्परागत व्यवसायों या धंधों से जुडे हुए ५० सूचनादाताओं का चयन उद्देश्यपूर्ण एवं कोटा निर्दशन पद्दतियों के द्वारा किया गया। प्रत्येक गांव में २५-२५ सूचनादाता चयनित किये गये। इनमें मुख्य रुप से शिक्षक, कम्पाउंडर, सचिव, पटवारी, ग्रामीण, कृषि, विकास/विस्तार अधिकारी, क्लर्क, ड्राइवर, लेखपाल, डॉकटर, वकील, विद्युत विभाग, बैंक, पोस्ट आफिस के प्रबंधक व कर्मचारी, व्यापारी, साहूकार, सेवा यूनिट सचांलकों, ग्रामीण यांत्रिक विकास विभाग के कर्मचारियों तथा परीक्षण द्वारा तथ्य संकलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

इन सूचनादाताओ से साक्षात्कार अनुसूची, सर्केंद्रीत साक्षात्कार, औपचारिक बातचीत, वैयक्तिक अध्ययन इत्यादि पद्दतियों का उपयोग करके विषय में संबंधित तथ्यों व महत्वपूर्ण सूचानाओं को संकलित किया गया।

सन् १९९० के आते आते वैश्वीकरण, आर्थिक सुधार, उदारीकरण, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का ग्रामीण सामाजिक जीवन पर भी व्यापक प्रभाव हुआ है। उपर्युक्त विकास कार्यक्रमों एवं प्रक्रियाओं ने जातियों की भूमिकाओं में उलटफेर करते हुए उन्हें नये सिरे से पुन्रपरिभाषित कर दिया है। विभिन्न जातियों के व्यवसायों में बड़े पैमाने पर परिवर्तन हुआ है। सवैधानिक प्रावधानों ने निम्न जातियों के व्यक्तियों के लिये विभिन्न व्यावसायिक अवसरों को उपलब्ध कराकर वर्षो से अपनी गिरी हुई सामाजिक प्रतिष्ठा एवं प्रस्थिति के उन्नयन का प्लेटफार्म प्रदान किया

इसका आनुभविक अध्ययन कर ग्रामीण समाज में उत्पन्न सदियों पुरानी व्यवस्था, जातियों के आधार पर निर्धारित होने वाली पहचान पद, प्रतिष्ठा व सामाजिक स्थिति किस प्रकार नवीन रुप धारण कर रही हैं। इसका अनुशीलन करना ही लघु शोध अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य है।

सामाजिक पृष्ठभूमिः

तालिका १

आयु के आधार पर वर्गीकरण

उम्र समूह (वर्षो में)	आवृत्ति		योग
	गाँव (अ)	गाँव (ब)	
२१ से ३०	२(८)	-	२(४)
३१ से ४०	०८(३२)	०६(२४)	१४(२८)
४१ से ५०	१० (४०)	१२(४८)	२२(४४)
५१ से ६०	०४(१६)	०५(२०)	०९(१८)
६० से ऊपर	०१(४)	०२(८)	०३(६)
योग	**२५ (१००)**	**२५ (१००)**	**५० (१००)**

सूचनादाताओं का आयु के आधार पर विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो रहा है कि सर्वाधिक ७२ प्रतिशत सूचनादाता ३१ से ५० वर्ष की आयु के मध्य के है। विकसित गाँव में ७२ प्रतिशत और कम विकसित गाँव में भी यह ७२ प्रतिशत समान रुप से परिलक्षित हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यावसायिक गतिशीलता को अपनाकर धंधेगत बदलाव के द्वारा अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति उच्च करने वाले अधिकांश ५० वर्ष से कम आयु युवा एवं वरिष्ठ व्यक्ति है।

तालिका २

जाति स्तर के आधार पर वर्गीकरण

जाति स्तर	आवृत्ति		योग
	गाँव (अ)	गाँव (ब)	
सामान्य जाति (सवर्ण)	०७ (२८)	१८ (७२)	२५ (५०)
अन्य पिछड़ा वर्ग	११ (४४)	०४ (१६)	१५ (३०)
अनुसुचित जाति	०४(१६)	०१(४)	०५(१०)
अनुसूचित जनजाति	०१ (४)	०२ (८)	०३ (६)
अन्य (मुस्लिम/ईसाई)	०२ (८)	०० (०)	०२ (४)
योग	**२५ (१००)**	**२५ (१००)**	**५० (१००)**

जाति के आधार पर गतिशीलता एवं धंधेगत बदलाव का विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि अभी भी यह उच्च जातियों में अधिक है। कम विकसति गाँव में सवर्ण जातियों में ७२ प्रतिशत व्यक्ति एवं विकसति गाँव में ६१ प्रतिशत सूचनादाता सवर्ण जातियों के है। इसके पश्चात् व्यावसायिक गतिशीलता के प्रति जागरुकता पिछड़ा वर्ग एवं अनुसूचित जाति में देखने को मिली।

तालिका ३

धंधेगत् आधार पर वर्गीकरण

व्यवसाय	आवृत्ति		योग
	गाँव (अ)	गाँव (ब)	
व्यावसायिक	१० (४०)	१२ (४८)	२२ (४४)
व्यापारी	०४ (१६)	०२ (८)	०६(१२)
शासकीय सेवक	०६ (२४)	०९(३६)	१५ (३०)
सेवा यूनिट से संबंधित फर्म/संस्थान	०५ (२०)	०२ (८)	०७ (१४)
योग	**२५ (१००)**	**२५(१००)**	**५०(१००)**

धंधेगत बदलाव में सर्वाधिक ४४ प्रतिशत व्यक्ति व्यावसायिक वर्ग के है जिसमें डॉक्टर, प्रोफेसर, वकील एवं शिक्षक को सम्मिलित किया गया है। इसके पश्चात शासकीय सेवाओं से जुड़े हुये सूचनादाताओ का प्रतिशत ३० है। इससे स्पष्ट होता है कि सरकारी नौकरियों एवं प्रतिष्ठित पदों पर काम करके अपनी सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति को ऊंचा उठाने का रुझान ग्रामीण समाज में बढ़ रहा है।

तालिका ४

शैक्षणिक योग्यता के आधार पर वर्गीकरण

शैक्षणिक योग्यता	आवृत्ति		योग
	गाँव (अ)	गाँव (ब)	
निरक्षर	००(०)	०१(४)	०१(२)
सामान्य शिक्षा	०३(१२)	०५(२०)	०८(१६)
माध्यमिक शिक्षा	१२(४८)	१०(४०)	२२(४४)
उच्च शिक्षा	१०(४०)	०९(३६)	१९(३८)
योग	**२५ (१००)**	**२५ (१००)**	**५० (१००)**

शैक्षणिक योग्यता का विश्लेषण करने पर यह परिलक्षित

हुआ है कि ४४ प्रतिशत सूचनादाता हाईस्कूल या हायर सेकेण्डरी स्कूल तक शिक्षित है। विकसित गाँव में यह प्रतिशत ४८ पाया गया। इसके पश्चात ३८ प्रतिशत सूचनादाता उच्च्य शिक्षा प्राप्त पाये गये।

निष्कर्षः ग्रामीण समाजों में उत्पन्न व्यावसायिक गतिशीलता किस प्रकार से ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन एवं विकास का कारक बनी है। व्यावसायिक गतिशीलता के आधार पर ग्रामीण अब अपने गाँच व अंचल में एक नई पहचान के रुप में सामने आ रहा है। इस प्रकार लंबे समय तक व्यक्ति की पहचान व उसकी सामाजिक स्थिति, पद प्रतिष्ठा व सम्मान को निर्धारित करने वाली जाति व्यवस्था अब अपने प्रारंभिक दौर में पार्श्व में जाती हुई दिख रही हैं व इसके स्थान पर एक नव मध्यम वर्ग का सूत्रपात ग्रामीण अचंलों में हो रहा है।[७]

मध्य प्रदेश के गांवों में उत्पन्न इन परिवर्तनों से सामाजिक स्तरीकरण का स्वरुप बदल रहा है। बदलाव का यह स्वरुप इस तरह का है कि एक प्रकार का पुनस्तरीकरण होता हुआ दिखाई दे रहा है। इस नवीन व्यवस्था में पुराने सभी वर्ग एवं जातियों की पहचान व्यक्ति के लिये अब कोई सार्थक व प्रभावशाली नहीं रह गई है। अब सामाजिक स्तरों की पहचान एवं उनके आधारों में जाति/वर्ग का महत्व कम होने लगा है इसके बजाय धन्धेगत पहचान, नौकरी के पद तथा व्यक्तिगत योग्यता/ कुशलता आदि इसका स्थान ले रहे है।[८] अब ग्रामीण अपना परिचय किसी जाति विशेष के आधार पर न देकर शिक्षक, मिस्त्री, कम्पाउंडर, पटवारी, ड्राईवर, ग्राम सचिव, सरंपच, बाबू, पोस्ट मास्टर, ओवरसियर, डेयरी सुपरवाईजर, अधिकारी, इस्पेक्टर आदि के नाम से देकर अपनी नई पहचान व्यवसाय के आधार पर करने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है।शोध निष्कर्ष निम्नानुसार हैं :-

१. नई पीढ़ी में अपने पिता के कृषि व्यवसाय के स्थान पर अन्य व्यवसाय में संलग्नता अधिक बढ़ी है।

२. ग्रामीण समुदायों की नई पीढ़ी में नौकरी एवं व्यापार के प्रति अधिक रुझान परिलक्षित हुआ है।

३. निम्न जातियों में उर्ध्वमुखी व्यावसायिक गतिशीलता बढ़ी है। अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों ने भी अपने परम्परागत जाति व्यवसाय में परिवर्तन करके व्यावसायिक गतिशीलता की प्रवृत्ति में प्रदर्शित किया है।

४. उत्तरदाताओं एवं उसके पिता की सामाजिक प्रस्थिति में शिक्षा, आमदनी, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा भौतिक साधन एवं सुविधा की दृष्टि से तुलना करने पर पाया गया कि बहुसंख्यक उत्तरदाताओं की सीमा प्रस्थिति अपने पिता की तुलना में शिक्षा, आय व भौतिक साधन सुविधाओं की दृष्टि से उच्च्य है जबकि सामाजिक प्रतिष्ठा के संदर्भ में लगभग बराबर की स्थिति पाई गई।

५. ग्रामीण समाज के बहुसंख्यक लोग अपनी संतान हेतु नौकरी के पेशे को पंसद करते हैं। व्यापार एवं कृषि के धंधे से जुड़े व्यक्तियों मे से बड़ी संख्या में लोग अपनी संतान हेतु नौकरी के व्यवसाय को प्रस्तावित किया है। यह सोच न केवल ग्रामीणों की मानसिक सोच में बदलाव का प्रतिबिम्ब है बल्कि सदियों पुरानी उस सामाजिक आर्थिक व्यवसाी में परिवर्तन का द्योतक है जिसमें लम्बे समय तक व्यापार एवं कृषि को उत्कृष्ट एवं प्रतिष्ठित व्यासारय मानकर इनके संदर्भ में यह कहा जाता था कि ''धन खेती धुर चाकरी। धन धन है व्यापार।

६. गैर कृषित धंधों, शिक्षा के विस्तार, आय के नवीन स्त्रोत/साधन व संवैधानिक प्रावधानों ने ग्रामीणों जातियों मे मध्यम वर्ग के उद्‍भव का मार्ग प्रशस्त किया है। जातियों के बीच उभरा यह नवीन व्यवासायों से जुड़ा हुआ व्यावसायिक वर्ग एक प्रेरक के रुप में सामाजिक रुपातंरण की भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

ग्रामीण समाज के संदर्भ में वर्ग की अवधारणा का प्रयोग उनकी धंधेगत या पेशेवर पहचान के लिये ही किया जा रहा है। आजादी के पूर्व के रियासती काल में एक सामान्य धारणा के अनुसार मध्यम वर्ग सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग ५ प्रतिशत के बराबर था।

इनमें पुजारी-पण्डित, दस्तकार, मिस्त्री, पटेल, जमींदार, व्यापारी, पुरोहति, सेठ-साहूकार, वैद्य, शिक्षित, ब्राहमण, गुरुजी (शिक्षक), पटवारी एवं सम्पन्न कृषक थे। आजादी के पश्चात् कई नये धंधेगत एवं पेशेवर वर्ग उभरे हैं। इनमें मुख्य रुप से पंचायत, सचिव, ग्रामीण कृषि विस्तार अधिकारी, सरपंच, विद्युत विभाग के कर्मचारी, लद्यु औद्योगिक ईकाई के मालिक, बाबू-बड़ा बाबू, व्यापारी, निजी उद्योगों एवं दुकानदारों के यहां नौकरही करने वाले लेखाकार, पटवारी, मेट, बैंक के प्रबंधक, एकाउन्टेण्ट, सहकारी समितियों के कर्मचारी, रेस्टोरेंट एवं जलपान गृह के संचालक, ज्योतिष कार्यालय के संचालक पंडित, ब्यूटी पार्लर, सायबर कैफे, आंगनवाड़ी की एवं आशा कार्यकर्ता, रोजगार सहायक, बस कण्डक्टर, ड्राईवर, कम्पाउण्डर, डॉक्टर, अध्यापक, कम्प्यूटर टायपिंग व प्रिंटिंग के संचालक इत्यादि पशु चिकित्सक निम्न स्तरीय जातियों के व्यक्तियों ने परम्परागत व्यवसायों/धंधों में बदलाव करके, आरक्षण का लाभ उठाकर शिक्षा के स्तर व आमदनी के स्तर में वृद्धि

करके अपनी सामाजिक प्रस्थिति में सबसे अधिक सुधार किया है जिससे ग्रामीण जातीय संस्तरण व सामाजिक संरचना में एक बड़ा परिवर्तन करते हुए ग्रामीण प्रस्थिति के निर्धारण में एक बड़ी हलचल उत्पनन कर दी है।

ग्रामीण समाज में उत्पन्न नवीन व्यावसायिक समूहों ने ग्रामीण सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक जीवन को विभिन्न आयामों से प्रभावित किया है। शासन एवं अन्य स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम में गांवों के नियोजित निकाय हेतु किये जाने वाले प्रयत्नों को अमली जामा पहनाने में इस वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका है। यही कारण है कि ग्रामीण समाज में व्यावसायिक गतिशीलता के फलस्वरुप उत्पन्न नवीन व्यावसायिक वर्ग के व्यक्ति अपनी जीवन शैली, सामाजिक प्रस्थिति, शैक्षणिक स्तर एवं जागरुकता से सामान्य ग्रामीणों के लिये एक रोल मॉडल प्रेरक का कार्य करते हुए न केवल उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं बल्कि अनुकरण हेतु प्रेरित भी करते हैं। और इस तरह ये ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के मार्ग को प्रशस्त करते हैं।

सन्दर्भ

1. Mishra, B.B., 'Indian Middle Class: Their Growth in Modern Times'. London : Oxford University Press, 1961, PP.76-78.
2. Das, Gurcharan, 'India Unbound'. New Delhi: Penguin Book India Ltd., 2002, P.286
3. Das, Gurcharan, Op. Cit. P.287
4. Verma, PK., 'The Great Indian Middle Class'. New Delhi : Penguin Books India Ltd., 1999, P.54
5. Ibid, P.90.
6. Beteille, Andre (ed.), 'Caste, Class and Power: Changing Patterns of Stratification in a Tanjore Village'. Bombay: Oxford University Press, 1996.
7. Joshi, Sanjay, 'Emerging Middle classess and Social Change in Rural Communities of Western Madhya Pradesh', Ph.D. Thesis, Udaipur : M.L. Sukhadiya University, 2008 P.326
8. Ibid, P.327.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

भारतीय निर्वाचन प्रक्रिया और 2014 के चुनाव (व्यय के आईने में)

❑ डॉ. साधना पाण्डेय

चुनाव या निर्वाचन को लोकतन्त्र का आधार कहा जाता है, जिसके द्वारा जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है और उन्हें सत्ता सौंप देती है। शायद इसीलिये चुनावों को लोकतन्त्र में 'महोत्सव' की संज्ञा दी जाती है। दुर्भाग्य से आज हमारी चुनाव प्रक्रिया में कुछ खामियाँ आ गयी हैं।

निर्वाचन को लोकतन्त्र का आधार कहा जाता है, जिसके द्वारा जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है और उन्हें सत्ता सौंप देती है। शायद इसीलिये चुनावों को लोकतन्त्र में 'महोत्सव' की संज्ञा दी जाती है। दुर्भाग्य से आज हमारी चुनाव प्रक्रिया में कुछ खामियाँ आ गयी हैं। लोकतन्त्र में सत्ता में भागीदारी पाने के लिये चुनाव लड़ना आवश्यक है और आज स्थिति यह है कि चुनाव लड़ना व जीतना मात्र योग्यता के बल पर ही संभव नहीं है। आज चुनाव जीतना व्यवहारतः एक व्यवसायिक उद्यम है जिसमें चुनाव कोष के रूप में पूँजी विनियोग की और विशिष्ट संगठन की आवश्यकता पड़ती है। कुल मिलाकर चुनाव इतना महँगा हो गया है कि यह आम आदमी की पहुँच से बाहर है। प्रस्तुत अध्ययन २०१४ के लोक सभा चुनाव के व्यय-विश्लेषण पर आधारित है।

लोकतन्त्र में सत्ता में भागीदारी पाने के लिये चुनाव लड़ना आवश्यक है और आज स्थिति यह है कि चुनाव लड़ना व जीतना मात्र योग्यता के बल पर ही संभव नहीं है। आज चुनाव जीतना व्यवहारतः एक व्यवसायिक उद्यम है जिसमें चुनाव कोष के रूप में पूँजी विनियोग की और विशिष्ट संगठन की आवश्यकता प़ड़ती है। कुल मिलाकर चुनाव इतना महँगा हो गया है कि यह आम आदमी की पहुँच से बाहर है।

''चुनाव खर्च लगातार बढ़ने के कई कारण हैं, लेकिन सबसे प्रमुख कारण है राजनीति का अपराधीकरण। आज राजनीति में आर्थिक अपराधियों और माफिया गिरोहों की संख्या बढ़ गयी है। इन लोगों के पास बेशुमार काला धन होता है और ये किसी भी प्रकार से राजनीति का सुरक्षा कवच ओढ़ लेना चाहते हैं। चुनावों में पैसे की बढ़ती महिमा के कारण आज लोकतान्त्रिक मूल्य नष्ट होने लगे हैं।''[1] व्यावहारिक रूप में लोकतन्त्र पर कुछ मुट्ठी भर धनिक लोगों का वर्चस्व हो गया है।

भारतीय लोकतंत्र में पूंजीपतियों, व्यापारियों और बाहुबलियों का प्रभाव सर्वविदित हैं। सभी राजनीतिक दल सैद्धान्तिक और विचारात्मक पाखंडों से ग्रसित हैं। लोकतांत्रिक मूल्यों के फलने-फूलने की सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह है कि संसद के दोनों सदनों के सदस्य अपने चरित्र, विचार-सम्प्रेषण और कार्य प्रणाली द्वारा यह स्पष्ट करें कि वे सच्चे अर्थों में भारतीय जनता के प्रतिनिधि हैं किन्तु भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली में गणतंत्र की स्थापना के साथ भारी क्षरण हुआ है। प्रश्न यह नहीं है कि नेहरू कालीन संसद में जिस प्रकार प्रतिभावान, विद्वान और राष्ट्रीय आंदोलन के तपोनिष्ठ मूल्यों से जुड़े हुए सांसद थे, वैसे अब नहीं हैं बल्कि अधिक जटिल और गंभीर समस्या सांसदों को उत्तरदायित्व की भावना और चरित्रगत शुचिता का ह्रास होना है। सांसद या विधायक अब जनसमस्याओं से विचलित नहीं होते। पिछले दिनों संसद में सूखे की स्थिति और भूख से होती मौतों पर बहस के दौरान सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों के गणमान्य सांसदों ने आंकड़ों का जाल बुनते हुए इस बात पर सहमति जाहिर की कि अकाल की स्थिति बहुत विकराल होने के बावजूद भूख से लोग मरे नहीं हैं, कुपोषण से मरे हैं। कुपोषण किसकी देन है ? सत्ता पक्ष और विपक्ष में इस प्रकार की अद्भुत सहमति सुविधा की राजनीति का ही परिणाम है। ''भू-मंडलीयकरण और बाजारवाद के दौर में जो गरीब हैं, वे लगातार हाशिए पर जा रहे हैं, उनकी सुध लेने वालों की निरन्तर कमी होती जा रही है। यह सुखद तथ्य है कि १६वीं लोकसभा चुनाव भारतीय लोकतंत्र में सुचारू रूप से सम्पन्न हो चुके हैं लेकिन निर्वाचन दंगलों की सच्ची तस्वीर कुछ और कहानी बयां करती है।''[2]

यह एक सामान्य सी बात है कि करोड़ों रुपए फूंक कर संसद में पहुंचने वाले व्यक्ति सबसे पहले चुनाव में अपने द्वारा निवेश की गई राशि, व्यवस्था में भ्रष्ट आचरण के माध्यम से वसूलेगा और उसके बाद लोभ की क्या सीमा? दरिद्रता, अशिक्षा, कुपोषण, भुखमरी और नारकीय जीवन से जूझते भारत के गरीब लोगों के जनप्रतिनिधियों का यह रूप हमारे लोकतंत्र के लिए शुभकारी नहीं है। हर कोई कहता है, आजकल यह फैशन सा बन गया है, कि चुनाव बहुत खर्चीले बन गये हैं।

❑ सहायक प्राध्यापक राजनीतिशास्त्र, उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल (म.प्र.)

आखिरकार इन्हें किसने खर्चीला बनाया ? ''लोकतंत्र में जनता के बीच जाने से वे डरते हैं जो जनता की छद्म नुमाइंदिगी करते येनकेन प्रकारेण जीतने में यकीन रखते हैं। समग्र क्रांति के नायक जयप्रकाश नारायण ने चुनाव में सुधार हेतु Right to Re-call (पुनः बुलाने का अधिकार) का मुद्दा रखा। स्वयं जे.पी. ने १६७४ में वी.एम. तारकुंडे की अध्यक्षता में चुनाव सुधार हेतु कमेटी गठित की। इस कमेटी ने १६७५ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। जे.पी. आंदोलन के सहारे १६७७ में सत्ता में पहुँचने वाले लोगों ने ही सबसे पहले तारकुंडे समिति की सिफारिशों को रद्दी की टोकरी में डालते हुए एक नये आयोग शकधर आयोग का गठन कर यह सिद्ध कर दिया कि जे.पी. आंदोलन केवल सत्ता-सूत्रों तक पहुँचने का सेतु मात्र था''[३] वी.एम. तारकुंडे, शकधर समिति, मोहनधारिया कमेटी, भाकपा के सुझाव, वांचू समिति, आठ दलीय स्मरण पत्र, दिनेश गोस्वामी समिति, के सन्थानम् समिति, इन्दजीत गुप्त समिति, भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट, चुनाव आयोग-मुख्य घटनाएं नवीन पहल आदि-आदि प्रयासों ने चुनावों में शुचिता लोने के लिए अमूल्य सुझाव सुझाये लेकिन सुधारों की दरकार आज भी बनी हुई है। भारत में २०१४ के लोकसभा चुनाव में करीब एक लाख करोड़ रुपये के वारे-न्यारे खुले तौर पर हो रहे हैं। चुनाव आयोग यानी भारत सरकार का बजट सिर्फ साढ़े तीन हजार करोड़ रुपये है। बाकी का पैसा कहाँ से आ रहा है, हवाला है या काला धन, इसमें किसी की रूची नहीं है।

ऐसा नहीं है कि चुनाव पर खर्च किये जाने वाले पैसे की कोई सीमा नहीं है, इस सन्दर्भ में कोई कानून नहीं है लेकिन प्रायः ऐसा होता है, चुनावी खर्च सम्बंधी कानूनों का भी लोग रास्ता निकाल लेते हैं। चुनावी व्यय के मामले में गलती कई स्तरों पर है। पहले सरकार द्वारा चुनाव व्यय की अधिकतम सीमा इतनी कम निर्धारित की गयी थी कि उस सीमा में कोई चुनाव लड़ना संभव ही नहीं था, इसलिये उम्मीदवार अपने द्वारा किये गये चुनावी व्यय का गलत विवरण देता था।

निर्वाचन आयोग ने नई व्यय सीमा लोकसभा चुनाव के लिये ४० लाख से ७० लाख बढ़ाया एवं राज्यों के लिये २२ लाख से बढ़ाकर ५४ लाख निर्धारित करके अपने कर्तव्य को पूरा मान लिया किन्तु इस व्यय सीमा के आधार व्यवहारिक नहीं है। अलग-अलग चुनाव व्यय सीमा निर्धारित करनी थी तो उसका आधार निर्वाचन क्षेत्र होना चाहिये या न कि राज्य। देश की राजधानी दिल्ली में कुल सात संसदीय निर्वाचन क्षेत्र हैं। यहाँ के चाँदनी चौक संसदीय क्षेत्र में मतदाताओं की कुल संख्या लगभग १२,००००० है और प्रत्येक उम्मीदवार को ७० लाख खर्च करने की छूट है (लोकसभा चुनाव में) जबकि बाहरी दिल्ली (लोकसभा चुनाव क्षेत्र में) कुल मतदाताओं की संख्या ५० लाख से अधिक ही है लेकिन वहाँ भी चुनाव खर्च की सीमा ७० लाख है। जब मतदाताओं की संख्या में लगभग चार गुना से ज्यादा का अन्तर हो तो समान खर्च की सीमा किस प्रकार व्यवहारिक व न्यायसंगत है।

हमारे देश में कोई भी उम्मीदवार निर्धारित व्यय सीमा का पालन नहीं करता है और चुनाव सम्पन्न हो जाने के बाद वह गलत तरीके से तैयार गलत विवरण चुनाव आयोग में जमा करा देता है। इस तरह हमारे यहाँ चुनाव खर्च सम्बंधी विवरण महज एक औपचारिकता बनकर रह गया है। साथ ही चुनाव आयोग के पास ऐसी कोई मशीनरी भी नहीं है कि वह प्रत्येक उम्मीदवार द्वारा खर्च किये जा रहे व्यय पर नजर रख सके। इसके लिये आयोग उम्मीदवार द्वारा उपलब्ध कराये गये विवरण पर ही निर्भर रहता है।

''**चुनाव** को कैसे लोकतांत्रित धंधे में बदला गया है। यह देश भर की लोकसभा सीट को लेकर लग रहे सट्टा बाजार की बोली से समझा जा सकता है, जहाँ ६० हजार करोड़ रुपये से ज्यादा का खेल खुले तौर पर हो रहा है। इसमें अभी तक अहम सीट वाराणसी पर दांव नहीं लगा है। उम्मीदवारों के प्रचार का आंकड़ा तीस हजार करोड़ से ज्यादा का हो चला है।''[४] इस आंकड़े पर चुनाव आयोग की नजर है। अंग्रेजी के सबसे बड़े राष्ट्रीय अखबार में किसी के निधन के शोक संदेश के छोटे विज्ञापन पर खर्च आता है २४ हजार रुपये जो अन्दर के एक तय पन्ने पर छापता है। लेकिन राजनीतिक दल या कोई नेता वोट मांगने के लिए अगर पहले पन्ने को ही खरीद लेता है तो तमाम रियायत के बाद भी ७० लाख रुपए से ज्यादा हो जाता है। यह चुनाव आयोग के तय एक उम्मीदवार के प्रचार की बढ़ी हुई रकम है। बावजूद इसके हर कोई खामोश है। पिछले एक महीने में अखबार और टीवी विज्ञापन का कुल खर्चा सौ करोड़ पार कर चुका है।

यदि हम १६५२ में हुये प्रथम लोकसभा चुनाव से लेकर १६वीं लोकसभा चुनाव (२०१४) का तुलनात्मक विवरण एक तालिका के माध्यम से समझें तो हमें यह स्पष्ट दिखायी देगा कि चुनाव में खर्च की स्थिति कहाँ से कहाँ पहुँच गयी है।

''चुनाव खर्च की तालिका विवरण प्रथम से लेकर १६वीं लोकसभा चुनाव की निम्नांकित हैः-

भारतीय निर्वाचन प्रक्रिया और २०१४ के चुनाव एक सर्वेक्षण[५]

वर्ष	खर्च (करोड़ रुपये में)	मतदाता की संख्या	खर्च प्रति वोटर (रु.)	चुनाव बूथ
1952	10.45	17,32,12,343	0.6	1,96,084
1957	5.9	19,36,52,179	0.3	2,20,478
1962	7.32	21,63,61,569	0.3	2,38,031
1967	10.8	25,02,07,401	0.4	2,43,693
1971	11.61	27,41,89,132	0.4	3,42,918
1977	23.04	32,11,74,327	0.7	3,73,910
1980	54.77	35,62,05,329	1.5	4,36,413
1984-85	81.51	40,03,75,333	2	5,06,058
1989	154.22	49,89,06,129	3.1	5,80,798
1991-92	359.1	5,11,533,598	7	5,91,020
1996	597.34	59,25,72,288	10	7,67,462
1998	666.22	60,58,80,192	11	7,73,494
1999	947.68	61,95,36,847	15	7,74,651
2004	1113.88	67,14,87,930	17	6,87,402
2009	846.67	71,69,85,101	12	8,30,866
2014	33000	81,00,00,000	400	

प्रथम लोकसभा चुनाव १९५२ में प्रत्येक उम्मीदवार के प्रचार पर कुल खर्च ७५ लाख रुपये जबकि २०१४ के १६वीं लोकसभा चुनाव में प्रत्येक उम्मीदवार के प्रचार पर खर्च की सीमा स्वयं चुनाव आयोग द्वारा ७० लाख तय की गयी थी।''[६]

प्रथम आम चुनाव (१९५२) से २०१४ के आम चुनाव तक की तुलनात्मक व्यय का विवरण चुनाव में किये जाने वाले व्यय की तस्वीर से देखा जा सकता है।

किसी भी उम्मीदवार से पूछिये तो वह यह कहने से नहीं कतरायेगा कि ७० लाख में चुनाव कैसे लड़ा जा सकता है। यानी पैसा और ज्यादा बहाया जा रहा होगा इससे इनकार नहीं किया जा सकता। एसोशियन फॉर डेमोक्रेटिक रिपोर्ट के मुताबित मौजूदा चुनाव में औसतन पाँच करोड़ तक का खर्च हर सीट पर पहले तीन उम्मीदवार अपने प्रचार में कर ही रहे हैं। बाकियों का औसत भी दो करोड़ से ज्यादा का है। यानी २०१४ के चुनाव का खर्च ३४ हजार करोड़ नजर आ रहा है। वह और कितना ज्यादा होगा इसके सिर्फ कयास ही लगाये जा सकते हैं।

लोकसभा चुनाव में उपर्युक्त व्यय आंकड़ों के साथ ही हम यहाँ २००४, २००९ और २०१४ के लोकसभा चुनाव में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों द्वारा एकत्र की गयी राशि एवं चुनाव में विभिन्न मदों पर खर्च की गयी राशियों में एक वितरण प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे चुनाव में लगातार धन के बढ़ते हुए प्रभाव एवं उसके परिणाम स्वरूप आने वाली गिरावट को सहज ही समझा जा सकता है।

२००४, २००९ एवं २०१४ के लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा एकत्र और व्यय की गयी राशि का विवरण वेबसाईट www.eci.nic.in से संकलित किया गया है।

एकत्रित की गयी धनराशि : राष्ट्रीय दल – भाजपा,

कांग्रेस, बसपा, एनसीपी, सीपीआई, सीपीएम

१. एकत्र की गयी राशि चेक/ड्राट के माध्यम से

क. २००४ के चुनाव में रु. २२३.८० करोड़

ख. २००९ के चुनाव में २८२ प्रतिशत बढ़कर रु. ८५४.८९ करोड़

ग. २०१४ के चुनाव में ३५.५३ प्रतिशत बढ़कर रु. ११५८.५९ करोड

२. २०१४ के चुनाव में राष्ट्रीय दलों द्वारा एकत्रित राशि

१. भाजपा ने सबसे ज्यादा राशि एकत्रित करने की घोषणा की २०१४ में चुनाव के दौरान - रु. ५८८.४५ करोड़ ७५ दिन के चुनावी समयासीमा में।

२. आईएनसी ने रु. ३५०.३९ करोड़ एकत्रित की।

३. एनसीपी ने रु. ७७.८५ करोड़ एकत्रित की।

४. बीएसपी ने रु. ७७.२६ करोड़ एकत्रित की।

५. सीपीएम ने रु. ५५.१२ करोड़ एकत्रित की।

६. सीपीआई ने रु. ६.५२ करोड़ एकत्रित की

३. राष्ट्रीय राजनीतिक दलों द्वारा व्यय की गयी राशि का विवरण

१. बीजेपी ने रु. ७१२.४८ करोड़, ७५ दिन की चुनावी समय सीमा में

२. आईएनसी ने रु. ४८६.२१ करोड़

३. एनसीपी ने रु. ६४.४८ करोड़

४. बीएसपी ने रु. ३०.०६ करोड़

५. सीपीएम ने रु. ८.८ करोड़

६. सीपीआई ने रु. ६.७२ करोड़

४. राजनीतिक दलों द्वारा मुख्य व्यय निम्न शीर्षक के अंतर्गत किये गये।

२००४ चुनाव में :-

व्यय करोड़ रूपये में	२००९	२०१४
प्रचार में	११५.९०	८५८.९७
यात्रा में	३४.५७	
अन्य व्यय	५०.७१५	
उम्मीदवार में	६०.३६४	

रु. ११५.९० करोड़ प्रचार में

रु. ३४.५७ करोड़ यात्रा में

रु. ५०.७१५ करोड़ अन्य खर्च

रु. ६०.३६४ करोड़ उम्मीदवार

२००९ चुनाव में :-

रु. ४०६.८९ करोड़ प्रचार में

रु. १८९.९९ करोड़ यात्रा में

रु. २३५.०४ करोड़ अन्य खर्च

रु. ४८.७९ करोड़ उम्मीदवार में

२०१४ चुनाव में :-

रु. ८५८.९७ करोड़ प्रचार में

रु. ३११.८ करोड़ यात्रा में

रु. १०४.२८ करोड़ अन्य खर्च

रु. ३११.४७ करोड़ उम्मीदवार में

राजनीतिक दलों के आय एवं खर्च के विवरण के समग्र अध्ययन के पश्चात यह प्रश्न अवश्य उठता है कि लोकतंत्र का यह रास्ता किधर जा रहा है। ''एक वक्त अपराधी राजनीति में घुसे क्योंकि राजनेता बाहुबलियों और अपराधियों के आसरे चुनाव जीतने लगे थे। अब कारपोरेट या औद्यौगिक घराने राजनीति में सीधे घुसेंगे क्योंकि राजनेता अब कारपोरेट की पूँजी पर निर्भर हो चले हैं। यह सवाल इसलिये बड़ा हो चला है क्योंकि जिस तर्ज पर मौजूदा चुनाव में रुपये खर्च किये जा रहे हैं उसके पीछे के स्रोत क्या हो सकते हैं और स्रोत अब सीधे राजनीतिक मैदान में क्यों नही कूदे यह सवाल बड़ा हो चला है।[६] बीस साल पहले वोहरा कमेटी की रिपोर्ट में राजनेताओं के साथ बाहुबलियों और अपराधियों के गठबंधन के खेल को खुले तौर पर माना गया था। रिपोर्ट में इसके संकेत भी दिये गये थे कि अगर कानून के जरिये इस पर रोक लगाई गई तो फिर आने वाले वक्त में संसद के विशेषाधिकार का लाभ उठाने में संसद के अपराधी राजनीति में आने से नहीं चूकेंगे। बीस सालों में हुआ भी यही। पन्द्रहवीं लोकसभा में १६२ सांसदों ने अपने खिलाफ दर्ज आपराधिक छवि को महत्व दिया और मौजूदा राज्यसभा में कुल २३२ सांसदों में ४० के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं।

इस बार लोकसभा चुनाव में ४०० हेलीकॉप्टर लगातार नेताओं के लिये उड़ान भर रहे थे। डेढ़ दर्जन से ज्यादा निजी विमान प्रचार में लगे हैं। कुल मिलाकर चुनाव प्रचार में बेहिसाब खर्च हो रहा है। ''मौजूदा वक्त में सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्रोनी कैपटलिज्म यानी कारपोरेट या औद्यौगिक घरानों के साथ सरकार या मंत्रियों के व्यापार सहयोग पर कौन रोक लगायेगा। अगर उस पर रोक लगेगी तो फिर कारपोरेट सत्ता में आने के लिये बेचैन राजनेताओं पर क्यों पैसे लुटायेंगे?''[७]

निष्कर्षः- निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय निर्वाचन प्रक्रिया और २०१४ के लोकसभा चुनाव में सरकार के पास बिना रुपयों के खेल के कौन सा विजन है

? विकास का पूरा विजन केवल रुपयों के मुनाफे पर तेजी से चल रहा है। ज्यां पॉल सार्ते का मानना था कि चुनाव राष्ट्रीय पर्व होते हैं जिनमें उन लोगों को सत्ता से परे करना होता है जो जनसेवा नहीं कर सके। किन्तु आज के परिपेक्ष्य में तो खराब में से खराब का चयन करना ही चुनाव है। प्रश्न यह है कि क्या मतदाता के अर्न्तमन का वजूद जिन्दा भी बचा है? आज आवश्यकता इस बात है कि समय रहते सार्थक समीक्षा और अक्षमताओं की पहचान कर ली जाये वरना राजनीतिक सुनामी के लिये तैयार रहना होगा।

रोज बढ़ता हूँ जहाँ से आगे,
लौटकर आ जाता हूँ बार-बार वहीं,
बार-बार तोड़ चुका हूँ जिन्हें,
उन्हीं दीवारों से सिर टकराता हूँ।

संदर्भ

१. त्रिपाठी मधुसूदन, 'चुनाव प्रक्रिया में सुधार', सन्मार्ग प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ. ४४

२. गोस्वामी भालचन्द्र प्रखर, 'भारत में चुनाव सुधार', शीर्षक में चुनावी व्याधियाँ कहीं कैंसर न बन जायें, पॉइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, पृ. ६७

३. जिग्गा हंसराज, 'करप्ट प्रैक्टीसेज इन इलेक्शन', दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, एफ-१५६, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली, पृ. २८३

४. सिंह भाषा 'आउटलुक' - १-१५ मई २०१४, दिन-दिन महँगा लोकतन्त्र द्वारा, पृ. ४५

५. कानून एवं सामाजिक न्याय मंत्रालय और भारतीय चुनाव आयोग की आधिकारिक वेबसाइट www.eci.nic.in

६. कृष्णामनी, 'इलेक्शन, कैंडिडेट और वोटर्स', पी.एन. इंस्टीट्यूट ऑफ पार्लियामेन्टरी स्टडीज, पृ. १०५

७. जनसत्ता दैनिक समाचार पत्र, २५ अप्रैल २०१४

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

उत्तराखण्ड का राजनीतिक परिदृश्य एवं महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता

❑ **डा० राकेश सिंह नेगी**

महिलाओं में राजनीतिक सक्रियता वर्तमान समय की एक नितान्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है। चूंकि जब तक ग्रामीण व सुदूरवर्ती क्षेत्रों की महिलाएं भी राष्ट्रीय मुख्यधारा में सक्रिय रूप से नहीं जुड़ सकेंगी तब तक स्थितियों में वांछित परिवर्तन आना संभव नहीं होगा। अतः ऐसी महिलाओं की सक्रियता में वृद्धि करने के लिए और प्रावधान किए जाने की आवश्यकता है तथा जो प्रावधान किए गए हैं उन्हें प्रभावशाली रूप से लागू करना भी उतना ही आवश्यक होगा। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत उत्तराखण्ड राज्य का राजनीतिक परिदृश्य तथा उस परिदृश्य में महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता की स्थिति को आनुभविक आधार पर उजागर किया गया है।

परिचय : पुराणों में वर्णन किया गया है कि मानसखण्ड एवं केदारखण्ड से मिलकर वर्तमान में उत्तराखण्ड (पूर्व में उत्तरांचल) राज्य बना है। ऋग्वेद में इस भूमि को स्वर्ग कहा गया है।[१] ब्रह्मपुराण, शिवपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, अग्निपुराण आदि धर्मग्रन्थों में भी उत्तराखण्ड का व्यापक वर्णन मिलता है। इस क्षेत्र को पहले गढ़वाल व कुमायूँ नाम से नहीं जाना जाता था। बल्कि गढ़वाल क्षेत्र को केदारखण्ड तथा कुमायूँ क्षेत्र को मानसखण्ड के नाम से जाना जाता था। माना जाता है कि विष्णु भगवान सूर्य अवतार के रूप में तीन वर्षों तक कानदेव पर्वत की चोटी पर रहे जो कुमायूँ मण्डल में चम्पावत के समीप है, कालान्तर में यह चोटी कूर्मांचल कही गई।[२] कूर्मांचल से ही कुमायूँ शब्द की उत्पत्ति हुई। गढ़वाल शब्द गढ़वाला अर्थात दुर्गों वाला क्षेत्र से बना है, क्योंकि यहाँ पर कई गढ़ व गढ़ियां थीं जिनमें से कई आज भी विद्यमान हैं।[३] वस्तुतः भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा प्रशासनिक तीनों दृष्टियों से कुमायूँ एवं गढ़वाल इस क्षेत्र के लिए नये नाम हैं।

उत्तराखण्ड भारतवर्ष का सत्ताइसवां राज्य है। यह राज्य अपनी सांस्कृतिक, अध्यात्मिक, भौतिक एवं अन्य अनेक विशिष्टताओं से युक्त है। यह भूमि प्राचीन समय से ही ऋषि मुनियों की तपस्थली व नैसर्गिक रूप से सुन्दर होने के कारण देव भूमि कही जाती है। उत्तराखण्ड को दो मण्डलों गढ़वाल एवं कुमायूँ में बांटा गया है।

कुमायूँ मण्डल के ६ तथा गढ़वाल मण्डल के ७ जनपदों को मिलाकर ६ नवम्बर सन् २००० में उत्तराखण्ड राज्य अस्तिव में आया। उत्तराखण्ड का निर्माण यहाँ के पिछड़ेपन व सतत् उपेक्षा की प्रतिक्रियास्वरूप जनता के द्वारा किए गए संघर्ष एवं सक्रिय भागीदारी के कारण ही संभव हो सका। १ अप्रैल २००१ से इस राज्य की परिस्थितियों को देखते हुए अन्य हिमालयी राज्यों की तरह इस राज्य को भी विशेष राज्य का दर्जा दे दिया गया है। नवोदित उत्तराखण्ड राज्य को प्रशासनिक दृष्टि से १३ जनपदों में विभाजित किया गया है। उत्तराखण्ड में लोकसभा की ५ व राज्य सभा की ३ सीटें भी निर्धारित की गयी हैं।

उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से कृषि पर आधारित रही है। रोजगार एवं आजीविका की अपर्याप्तता के कारण यहां के पुरूषों के रोजगार की तलाश में मैदानी क्षेत्रों प्रवास कर जाने के कारण कृषि कार्य का बोझ मुख्यतः महिलाओं के कन्धों पर ही रहता है। हालांकि पिछले दो दशकों में यहाँ के लोगों की कृषि पर निर्भरता घटी है, व उनका सरकारी सेवा या व्यक्तिगत क्षेत्र में या छोटे–छोटे कुटीर उद्योगों की तरफ आकर्षण ज्यादा बढ़ा है, जिसके कारण पुरूषों के पलायन कर जाने से उत्तराखण्ड में मनीआर्डर अर्थव्यवस्था पूरे जोर शोर से प्रभावी है। वस्तुतः जनसंख्या की बढ़ती दर के साथ रोजगारों की उपलब्धता न बढ़ने से युवकों के शहरी क्षेत्रों में पलायन से मनीआर्डर अर्थव्यवस्था मजबूत होती जा रही है।

साक्षरता के दृष्टिकोण से देखें तो किसी भी क्षेत्र का सामाजिक विकास, आर्थिक प्रगति एवं राजनैतिक सक्रियता उस क्षेत्र के नागरिकों की शिक्षा एवं उसके स्तर पर निर्भर करती है, क्योंकि शिक्षा से ही व्यक्ति के व्यक्तिव का विकास होता है जैसा कि साल्टेन का मत है कि "शिक्षित व्यक्ति शीघ्रता व सरलता से किसी भी योजना का निर्माण और निर्णय ले सकता है।"[४] आमण्ड और वर्बा ने भी इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहा था कि "जो व्यक्ति जितना अधिक शिक्षित होगा उतना ही वह सरकार के कार्यों के प्रति सजग होगा, राजनीतिक व सामाजिक जानकारियाँ प्राप्त कर सकेगा

❑ **हे० न० ब० गढवाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय श्रीनगर उत्तराखण्ड**

उसमें राजनीतिक विषयों को प्रभावित करने की अधिक से अधिक योग्यता होगी। वह अपने सामाजिक पर्यावरण में विश्वास व्यक्त करेगा व अपनी भावनाओं को व्यक्त करेगा।"[५]

राजनीतिक परिदृश्य एवं महिला सक्रियता : आज की भागदौड़ भरी जिन्दगी में सबके पास समय की कमी नजर आती है। यह अधिकांश ऑफिस में नौकरी करने वाले लोगों पर ही लागू किया जाता है, जबकि जो सबसे अधिक कार्य करती हैं वह एक आम ग्रामीण परिवेश की महिला है। इन महिलाओं की स्थिति को जानने, समझने के लिए हमें उनके परिवेश की जानकारी होनी चाहिए। इसके अन्तर्गत बहुत मुद्दों पर हम बात कर सकते हैं, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, जीवन, महिला जन्मदर, परिवार में महिलाओं की स्थिति व उनके प्रति परिवार के अन्य सदस्यों की मानसिकता एवं राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक, वैद्यानिक आदि अधिकारों के साथ-साथ पंचायतों में महिलाओं की भूमिका का भी अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है कि इतनी व्यस्तता होने के बावजूद भी वे अन्य सामाजिक, राजनीतिक कार्यो के लिए भी समय निकाल लेती हैं। भारत के परिप्रेक्ष्य में देखें तो विशेषकर कृषि क्षेत्र में ग्रामीण महिला अधिक संख्या में कार्यरत हैं चूंकि वे घर तथा बाहर दोनों जगह काम करती हैं लेकिन उनका कार्य श्रमिक सांख्यिकी रिपोर्ट में शामिल नहीं किया जाता तथा परिवार में भी उनके कार्यो की गणना नहीं की जाती है जो कि एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है, चूंकि पुरूषवादी मानसिकता के शिकार लोग अक्सर यह तर्क देते हैं कि महिलाओं का कार्य घरेलू होता जो नगण्य है व आरामदायक होता है। इन सब बातों को पुरूष मानसिकता हो या अन्य सभी को त्याग करना होगा जिससे महिलाओं पर कोई भी मानसिक दबाव न रह सके। चूंकि हमारा राष्ट्र बहुत बड़ा है। यह कई प्रकार से विभक्त है। ग्रामीण-शहरी, अमीर-गरीब, शिक्षित-निरक्षर तथा विभिन्न जाति घर्म व सम्प्रदाय वाला देश में सभी साथ-साथ तो रहते हैं परन्तु आवश्यकता और उपलब्धता के बीच हमेशा ही एक बड़ा अंतर कायम रहता है।

यद्यपि वर्तमान समय में महिलाओं के प्रति सोच समाज में उनके स्थान व उनके दर्जे के प्रति समाज में एक परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। काफी बड़ी संख्या में महिलाएं घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर आर्थिक भूमिका भी निभा रही हैं व अपने परिवार का एक मजबूत आधार बनती जा रही हैं, लेकिन व्यवहारिक रूप से देखें तो आज भी कई स्थानों पर महिलाओं के कार्यक्षेत्र को परिवार के अन्दर तक ही सीमित रहने देने की प्रवृत्ति भी अधिकतर समुदायों में दृष्टिगोचर होती है। महिलाओं ने शिक्षा, राजनीति, व्यवसाय आदि सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है। उन्होंने अपनी बौद्धिकता एवं उच्च गुणों के कारण अपने परिवार को ऊँचाईयों के शिखर पर पहुँचा कर समाज व राष्ट्र निर्माण में योगदान दिया है तथा दूसरी ओर उन्हीं ने गांवो के उपेक्षित व अत्याचार भोग रहीं अपनी करोड़ों बहनों के भाग्य को महिला शक्ति की पहचान कराके जगाया है। समाज की समस्याओं जैसे बाल-विवाह, दहेज प्रथा, प्र्दा प्रथा, निरक्षरता, अंधविश्वास, असमानता, अस्पृश्यता, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, भ्रष्टाचार आदि सामाजिक रूढ़ियो तथा बंधनों को तोड़ने के लिए सक्रियता के साथ भागीदारी की है। ग्रामीण समाज चूंकि कृषि प्रधान समाज होता है जिससे परिवार की आय में आधे से अधिक भाग महिलाओं का रहता है, परन्तु उनके द्वारा किये गये कार्य को आर्थिक गतिविधि न मानकर सामान्य पारिवारिक दायित्व समझा जाता है, चौका-चूल्हे बर्तन और बच्चों के पालन के साथ-साथ ग्रामीण बालिकाएं होश सम्हालने के समय से ही पशुपालन, ईंधन लाने और खेत-खलियान में काम करने लगती है तथा जीवन पर्यन्त करती रहती हैं लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण समस्त कार्यो को व्यवसाय के बजाय पारिवारिक कार्यों के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह भी एक सोचनीय प्रश्न है कि काम धन्धों में सतत् सक्रिय रहने पर भी महिलाएं आर्थिक दृष्टि से पूर्णतः पराजित हैं।

महिलाओं को राजनीतिक रूप से सक्रिय बनाने के लिए भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी मौलिक अधिकारों एवं राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में स्पष्टतः उल्लेख है तथा ७३वें संविधान संशोधन के माध्यम से ३३ प्रतिशत स्थान स्थानीय स्वशासन में भाग लेने को दिया गया है। लेकिन दुर्भाग्यवश अभी भी शिक्षा व जागरूकता के अभाव में वे अपने राजनीतिक अधिकारों व इन संशोधनों के सम्बन्ध में जानकारी नहीं रखती हैं जो इस बात को इंगित करता है कि ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं अभी अधिक सक्रिय व जागरूक नहीं हो पाई हैं। यदि व्यवहार में महिलाएं उन सभी कार्यक्रमों का लाभ ले पाती जो उनके लिए बनाए जाते हैं तो वे सभी क्षेत्रों में अपनी सक्रिय सहभागिता के साथ विकास के लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सकती हैं।

यद्यपि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि सिद्धान्ततः महिलाओं को पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं तथा इन अधिकारों के कारण शासन, राजनीतिक शिक्षा, विज्ञान, समाज कल्याण, उद्योग, व्यापार, ट्रेड यूनियन आदि क्षेत्रों में महिलाएं महत्वपूर्ण और जिम्मेदार पदों पर आसीन हैं।

जनसंख्या के अनुपात में ५० प्रतिशत मतदान का हिस्सा होने के उपरान्त भी उन्हें आज तक निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में उनकी संख्या के अनुरूप प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो सका है। ज्ञातव्य है कि १५वीं लोकसभा में ४७महिला सांसद हैं तथा प्रथम से लेकर १५वीं लोकसभा तक निर्वाचित महिलाओं का औसत प्रतिशत ५.५ ही रहा है। जबकि राज्य सभा में यह ६.३ प्रतिशत रहा है।

अतः ग्रामीण महिलाओं में राजनीतिक सक्रियता वर्तमान समय की एक नितान्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है। चूंकि जब तक ग्रामीण व सुदूरवर्ती क्षेत्रों की महिलाएं भी राष्ट्रीय मुख्यधारा में सक्रिय रूप से नहीं जुड़ सकेंगी तब तक स्थितियों में वांछित परिवर्तन आना संभव नहीं होगा। अतः ऐसी महिलाओं की सक्रियता में वृद्धि करने के लिए और प्रावधान किए जाने की आवश्यकता है तथा जो प्रावधान किए गए हैं उन्हें प्रभावशाली रूप से लागू करना भी उतना ही आवश्यक होगा।

भारतीय संविधान में यह पहले नीति निर्देशक तत्वों के रूप में था जो भी महिलाएं आज पंचायतों में हैं वह पंचायती राज के माध्यम से हैं। गांधी जी द्वारा पंचायती राज का उददेश्य स्वयं अपने आप निर्णय लेना हैं और जो व्यक्ति समाज में सबसे पीछे है वह भी संपन्न होना चाहिए । पंचायती राज ब्यवस्था को राजनीति से दूर रखा जाना चाहिए जिससे ग्रमीण स्तर पर द्वेष पैदा न हो सके। यद्यपि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव व साकार स्वरूप महिला चेतना, जागरूकता तथा स्थानीय संस्थाओं में आरक्षण हेतु महिलाओं के लिए पंचायती राज व्यवस्था के रूप में भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही दृष्टिगोचर हुआ। लेकिन इसकी परिकल्पना को स्वतन्त्र भारत की ही उपज कहना सत्य प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि पंचायती राज की परिकल्पना एवं उसके माध्यम से ग्रामीण विकास की अवधारणा हमें वैदिककाल के पूर्व से भी दृष्टिगोचर होती है। जान.जे. क्लार्क के अनुसार किसी भी मानवीय संस्था को उस समय तक नहीं समझा जा सकता, जब तक कि उसके ऐतिहासिक संघों का अध्ययन न किया जाए। भविष्य की प्रगति की रेखाओं पर विचार करते समय अतीत के विकास के भण्डार को ध्यान में रखना होता है।[६] वस्तुतः भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास का एक लम्बा इतिहास रहा है। मजूमदार का मानना है कि प्राचीन काल में छोटे-छोटे राज्य जन या जनपद कहलाते थे। प्रत्येक जनपद में अनेक 'विश' होते थे जिनका मुखिया "विशपति" कहलाता था। ग्राम सबसे छोटी इकाई थी, और प्रत्येक विश में अनेक ग्राम होते थे तथा इनका मुखिया ग्रामीण के नाम से जाना जाता था[७] व ग्रामों का प्रशासन स्वयं ग्रामीणों के द्वारा चलाया जाता था। ईसा से ५००० वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता में भी ग्रामीण व नगरीय स्थानीय संस्थाएं विद्यमान थीं। यद्यपि मोहन जोदड़ो और हड़प्पा के अवशेषों से ज्ञात होता है कि उस समय अनेक स्वतन्त्र समुदायों की अपेक्षा एक केन्द्रीकृत राज्य था,[८] परन्तु यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है कि भारतीय समाज में अतीतकाल से ही पंचायतों का अस्तित्त्व रहा है। पूर्ववैदिक काल में राजनीतिक संगठन की सबसे छोटी इकाई 'कुटुम्ब' थी तथा अनेक कुटुम्बों से मिलकर जिस ग्राम का निर्माण होता था, उसका प्रधान मुख्य ग्रामीण होता था।[९] उत्तर वैदिक काल में न्यायपालिका का सर्वोच्च अधिकारी वैसे तो राजा होता था, परन्तु स्थानीय तौर पर ग्रामों में न्याय पंचायतें भी थी, जो कि गांव के छोटे-छोटे झगड़ों का निपटारा किया करती थीं। उत्तर वैदिक काल के पश्चात रामायण, महाभारत और मनुस्मृति इस काल के प्रमुख ग्रन्थ माने जाते थे, जिन्हें महाकाव्यकालीन युग कहा जाता है। इस युग में भी प्रत्येक गांव में पंचायते थीं तथा शासन व्यवस्था गणराज्य के सिद्धान्तों पर आधारित थी। इस काल में वर्तमान की तरह चुनाव की प्रथा नहीं थी, बल्कि गांव के प्रभावशाली व्यक्ति स्वयं आपस में मिलकर समिति का निर्माण करते थे।[१०]

वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ एवं सशक्त बनाने के लिए तीनों स्तरों की (जिला, विकासखण्ड व ग्राम पंचायत) पंचायतों को व्यापक अधिकार और विपुल शक्तियां प्रदान की गयी हैं। इस नवीन व्यवस्था में महिलाओं को प्राथमिकता दी गई है। पंचायतों तथा नगर निकायों के चुनाव में विशेषकर ग्रामीण महिलाओं को निचले स्तर पर सत्ता में भागीदारी करते हुए पंचायतों तथा नगर निकायों में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण दिया गया है। अतः पंचायती राज में एक तिहाई महिला आरक्षण के फलस्वरूप पूरे देशभर में जमीनी स्तर की राजनीतिक मुख्यधारा में महिलाओं का एक निर्णायक संख्या में प्रवेश अब न्यायसंगत हो गया है। यह कदम महिलाओं के राजनीति में सक्रिय-भागीदारी को प्रोत्साहित करने का एक सार्थक प्रयास है। पंचायतों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के क्रमिक विकास को देखते हुए हम यह पाते हैं कि उनके प्रतिनिधित्व और उपस्थिति को ठीक वही वैचारिक धारणाएं एवं प्रतीकवाद प्रभावित कर रहा है, जो संविधान द्वारा प्रदान की गई राजनीतिक समानता की गारंटी के बावजूद शेष राजनीतिक स्तरों पर भी रहता आया है, लेकिन महिलाओं के लिए एक तिहाई प्रतिनिधत्व के निर्णायक आधार की गारंटी देकर उनकी भागीदारी को एक नई दिशा प्रदान करने का

प्रयास किया गया है। भारतीय संविधान में पुरुषों और महिलाओं को समान दर्जा और अधिकार दिये जाने के उपरान्त भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि विकास और सामाजिक स्तर की दृष्टि से महिलाएं अभी भी पुरुषों से काफी पीछे हैं। इसी अंतर को कम करने के लिए हर वर्ष आठ मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस भी मनाया जाता है। इस सिलसिले को व्यापक रूप देने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष २००० को विश्व महिला वर्ष घोषित किया था।[११] यद्यपि महिला चेतना के लिए चलाये गये संघर्षों के फलस्वरूप नया पंचायती राज संशोधन अधिनियम महत्त्वपूर्ण तो साबित हुआ है, परन्तु महिलाओं को आज भी कुत्सित मानसिकता से गुजरना पड़ता है। गांवों में आज भी अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, अशिक्षा, पिछड़ापन है और पुरुष यह कभी सहन नहीं कर पाते हैं कि महिलाएं उन पर हुक्म चलायें या उनसे सवाल जवाब करें। हालांकि जब भी अवसर मिला है महिलाओं ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि वह परिवार, गांव, समाज तथा देश का नेतृत्व भी अच्छी तरह से कर सकती हैं। इसी सन्दर्भ में यदि पर्वतीय क्षेत्र की महिलाओं को देखा जाए तो हम पाते हैं, कि उनमें भी अत्यधिक जोश, शक्ति, ज्ञान व अनुभव है, जिसका उदाहरण यहां समय-समय पर हुए आन्दोलनों से मिलता है जिसमें यहां की महिलाओं का सक्रिय योगदान रहा है। चिपको आन्दोलन, मद्यनिषेध आन्दोलन, खनन के विरुद्ध आन्दोलन व उत्तराखण्ड आन्दोलन आदि में महिलाओं की अग्रणी भूमिका को कोई भी नजर अंदाज नहीं कर सकता है। वस्तुतः अपने गांव, शहर, जंगल, भूमि, संस्कृति व जलस्रोतों को संवारने व संरक्षित करने का श्रेय इन्ही पहाड़ की कर्मठ महिलाओं को जाता है।[१२] अपनी व्यस्त दिनचर्या, अत्यधिक कार्यभार व मूलभूत सुविधाओं का अभाव होने पर भी इन महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक मुद्दों में भागीदारी व संघर्ष उल्लेखनीय है। दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाली ये महिलाएं पिछड़ी नहीं है। सभी रचनात्मक मुद्दों के प्रति इनकी रुचि, समझ व भागीदारी इसकी प्रतीक है। इसी समझ के प्राकृतिक गुण के कारण उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन में यहां की महिलाओं की अभूतपूर्व भागीदारी देखी गई है। इस राजनीतिक आन्दोलन में अराजनीतिक प्रकृति की महिलाओं ने किसी राजनीतिक लाभ के लिए भाग नहीं लिया, वरन् अपने बच्चों के भविष्य के निर्माण के लिए उनके द्वारा इसमें भागीदारी की गई। वस्तुतः बहुसंख्यक महिलाएं राज्य निर्माण के उपरान्त नेपथ्य में चली गई, क्योंकि परिस्थितियों से लाभ लेने की समझ व चालाकी के गुणों का पर्वतीय महिलाओं में नितान्त अभाव है। यद्यपि राज्य निर्माण के उपरान्त कुछ महिला संगठनों ने चुनावी राजनीति में भी अपनी रुचि दिखाई व योगदान देना चाहा परन्तु उनकी संख्या के अनुपात में उनको टिकट नहीं दिये गये। उत्तराखण्ड महिला मंच जैसी संस्थायें महिलाओं की स्वतन्त्र सोच व स्वतन्त्र निर्णय के साथ राज्य की जनता के मुद्दों के प्रति महिलाओं में राजनैतिक जागरुकता पैदा करने का प्रयास कर रही हैं। चूंकि जो महिलाएं अपने राज्य की खुशहाली के मुद्दों को लेकर आन्दोलन में कूद पड़ी थीं उनको पृष्ठभूमि में धकेल दिया गया इसलिए महिलाओं के मुद्दों को उठाने तथा उत्तराखण्ड के विकास को लेकर महिला मंच एवं अन्य महिलाओं के द्वारा अपनी राजनीतिक सक्रियता व जागरुकता का परिचय दिया जाता रहा है।

उत्तराखण्ड के अतिरिक्त भारतवर्ष पर दृष्टिपात करें तो एक महिला प्रधानमंत्री व कई महिला मुख्यमंत्री हो जाने के बावजूद भी राज्यों में भी यही स्थिति बनी हुई है। यद्यपि नगरीय क्षेत्रों में शिक्षा व आर्थिक प्रगति के परिणामस्वरूप विशेषकर उच्च एवं मध्यउच्च आय वर्गीय महिलाओं की स्थिति में व्यापक सुधार आया है। परन्तु ग्रामीण महिलाएं आज भी बंधनों में जीती हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो ७३ वां संविधान संशोधन अधिनियम महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक अहम कदम है, क्योंकि अब तक जो ग्रामीण महिलाएं घर, पशुशाला और खेत खलियान तक सीमित थी। उन्हें इस संशोधन ने अभिशासन की एक कार्यकर्ता बना दिया है। लेकिन उत्तराखण्ड में भी महिलाएं राजनीतिक क्षेत्र में निचली पायदान पर खड़ी हैं व वही सीमाएं एवं बाध्यताएं उनकी राजनीतिक सक्रियता को प्रभावित करती हैं, जो कि भारत के अन्य भागों की महिलाओं की सक्रियता को सीमित करती है। निम्नलिखित तालिकाओं के माध्यम से उत्तराखण्ड में महिलाओं की सक्रियता को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

शिक्षा एवं राजनीतिक सक्रियता : चूंकि शिक्षा व्यक्ति का चहुँमुखी विकास करती है अतः किसी व्यक्ति की शिक्षा जितनी अधिक व्यापक होगी वह निर्णय निर्माण प्रक्रिया में उतना ही सक्षम होगा। शिक्षा बाल्य अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक सामाजिक नियंत्रण व सीखने का एक महत्त्वपूर्ण साधन होती है। शिक्षा राजनीतिक अभिवृत्ति व व्यवहार को भी निर्धारित करती है। शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति न केवल अपने व्यक्तित्त्व का विकास करता है वरन् अपने समाज, समुदाय, राज्य, राष्ट्र में व्याप्त विसंगतियों से संघर्ष करने के अतिरिक्त राजनीतिक जानकारियां भी प्राप्त करता है। वस्तुतः सक्रियता एवं शिक्षा एक दूसरे से घनिष्ट रूप में जुड़े हैं, क्योंकि शिक्षा का स्तर बढ़ने से व्यक्तियों की सभी क्षेत्रों में सक्रियता एवं

योगदान देने की क्षमता बढ़ जाती है। इसकी पुष्टि शोधार्थी के द्वारा सर्वेक्षण में प्राप्त जानकारी के आधार पर निम्न तालिकाओं के द्वारा की गई है।

तालिका १

गढ़वाल मण्डल में ग्रामीण महिलाओं की शैक्षिक स्थिति के आधार पर राजनीतिक सक्रियता

शैक्षिक स्थिति	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	एफ मान	पी मान
अशिक्षित	२००	२६.२४	१२.२६		
प्राथमिक/जूनियर	२१६	४४.८४	१३.०८	३६४.०२	.०००
माध्यमिक/इण्टर	१०६	६५.८१	१५.२३		
उच्च शिक्षित	७८	७६.६८	११.६५		

तालिका संख्या १ में प्रदर्शित आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि गढ़वाल मण्डल में ग्रामीण अशिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान २६.२४ प्रतिशत एवं प्राथमिक/जूनियर स्तर की शिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ४४.८४ प्रतिशत है तथा माध्यमिक/इण्टर स्तर की महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ६५.८१ प्रतिशत व उच्च शिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ७६.६८ प्रतिशत पाया गया। इन सांख्यकीय आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि गढ़वाल मण्डल की ग्रामीण महिलाओं मे जैसे-जैसे शिक्षा का स्तर बढ़ता गया, वैसे-वैसे उनकी राजनीतिक सक्रियता भी बढ़ी है। इस तथ्य को P मान भी प्रमाणित करता है (f=364.02 व P=.000)।

तालिका २

गढ़वाल मण्डल में शहरी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति के आधार पर राजनीतिक सक्रियता

शैक्षिक स्थिति	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	एफ मान	पी मान
अशिक्षित	४७	१६.७६	६.२६		
प्राथमिक/जूनियर	६३	३४.७६	१७.८६	१८३.०६	.०००
माध्यमिक/इण्टर	७७	५५.४२	२०.१६		
उच्च शिक्षित	११३	७३.४७	१३.०५		

तालिका संख्या २ में प्रदर्शित आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि गढ़वाल मण्डल के शहरी क्षेत्रों में उच्च शिक्षित महिलाओं की संख्या अधिक है, जिसके कारण उच्च शिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ७३.४७ प्रतिशत पाया गया तथा अशिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान १६.७६ प्रतिशत तथा प्राथमिक/जूनियर स्तर तक शिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ३४.७६ प्रतिशत व माध्यमिक/इण्टर स्तर की शिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ५५.४२ प्रतिशत पाया गया। यहां भी शिक्षा का स्तर बढ़ने के साथ-साथ महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता व जागरुकता का स्तर भी बढ़ा है। इस तथ्य को P मान द्वारा भी प्रमाणित किया जा सकता है। (f=183.09 व P=.000)।

तालिका ३

उत्तराखण्ड में ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति के आधार पर राजनीतिक सक्रियता

शैक्षिक स्थिति	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	एफ मान	पी मान
अशिक्षित	२४७	२७.४४	१२.३१		
प्राथमिक/जूनियर	२७६	४२.५७	१४.८७	४६८.६२	.०००
माध्यमिक/इण्टर	१८३	६१.४४	१८.१६		
उच्च शिक्षित	१६१	७८.०६	१२.५६		

तालिका संख्या ३ में प्रदर्शित आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि गढ़वाल मण्डल में अशिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान २७.४४ प्रतिशत तथा प्राथमिक/जूनियर स्तर तक शिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ४२.५७ प्रतिशत व माध्यमिक/इण्टर स्तर तक शिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ६१.

४४ प्रतिशत तथा उच्च शिक्षित महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ७८.०६ प्रतिशत है। उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि महिलाओं में शिक्षा का स्तर बढ़ने के साथ-साथ उनकी राजनीतिक सक्रियता में भी बढ़ोत्तरी हुई है। इसको P मान द्वारा भी प्रमाणित किया जा सकता है (f=498.92 व P=.000)।

उपरोक्त तालिकाओं से स्पष्ट होता है कि शैक्षिक स्थिति का प्रभाव महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता पर पड़ता है। शोधार्थी के द्वारा सर्वेक्षण के दौरान गढ़वाल मण्डल के ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षित महिलाओं की संख्या अधिक देखी गयी तथा उनमें सभी विषयों के प्रति जागरुकता का अभाव व राजनीतिक मुद्दों के प्रति सक्रियता भी कम पाई गई, जबकि शहरी क्षेत्रों में उच्च शिक्षित महिलाओं की संख्या अधिक होने के कारण उनकी राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान भी अधिक पाया गया। चूंकि शिक्षित महिलाएं शिक्षा के कारण अपने सामाजिक-राजनीतिक व आर्थिक परिवेश व परिस्थितियों के प्रति अधिक सहज, जागरूक व सचेत रहती हैं व सूचना व संचार के साधनों के प्रयोग से भी अपने ज्ञान का स्तर बढ़ाती है। अतः राजनीतिक मामलों में विचार विनिमय, चर्चा आदि में भी शिक्षित व्यक्तियों की सक्रियता व रुचि भी अधिक होती है।

व्यवसाय एवं राजनीतिक सक्रियता

व्यवसाय राजनीतिक, सामजिक, आर्थिक क्रियाकलापों के लिए एक सुनिश्चित कारक है। आमण्ड व पावेल के शब्दों में "व्यवसायों के माध्यम से व्यक्तियों में राजनीतिक विकास का उदभव होता है।" आधुनिक अध्ययनों से यह तथ्य उजागर होता है कि महिलाओं का व्यावसायिक स्तर उनके दैनिक क्रियाकलापों, सामाजिक, पारिवारिक व राजनीतिक सम्बन्धों व उनके विचारों को प्रभावित करता है। महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता भी व्यवसाय से प्रभावित होती है। चूंकि उत्तराखण्ड की आधे से अधिक महिलाएं विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों की अधिकांश समय कृषि कार्यों एवं गृह कार्यों में ही लगी रहती हैं अतः समयाभाव के कारण उनकी सक्रियता भी प्रभावित होती है, जिसको कि शोधार्थी द्वारा निम्न तालिकाओं द्वारा स्पष्ट किया गया है।

तालिका ४

गढ़वाल मण्डल में ग्रामीण महिलाओं की व्यावसायिक स्थिति के आधार पर राजनीतिक सक्रियता

व्यावसायिक स्थिति	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	एफ मान	पी मान
कृषि/गृहणी	३३१	३४.२१	१४.४४		
सरकारी सेवा	६६	६०.३२	१३.६४	२८५.२३	.०००
अन्य	२०३	६६.२३	१८.०८		

तालिका संख्या ४ में प्रदर्शित आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि गढ़वाल मण्डल में व्यावसायिक स्थिति के आधार पर कृषि कार्यों में लगी गृहणी वर्ग की महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ३४.२१ प्रतिशत, जबकि सरकारी सेवा में कार्यरत् महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ६०.३२ प्रतिशत है तथा अन्य महिलाएं जिनमें निजी व्यवसाय, अध्ययनरत व गैर सरकारी संस्थाओं में कार्यरत वर्गों की महिलाएं शामिल हैं, उनकी राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ६६.२३ प्रतिशत है। अतः गढ़वाल मण्डल में अन्य महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता सरकारी सेवारत्, कृषि/गृहणी वर्ग की महिलाओं से अधिक पाई गई। इस तथ्य को P मान भी प्रमाणित करता है। (f=285.23 व P=.000)।

तालिका ५

गढ़वाल मण्डल में शहरी महिलाओं की व्यावसायिक स्थिति के आधार पर राजनीतिक सक्रियता

व्यावसायिक स्थिति	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	एफ मान	पी मान
कृषि/गृहणी	१२४	३०.७४	१७.३८		
सरकारी सेवा	७२	५६.७५	१७.३७	२३६.६५	.०००
अन्य	१०४	७७.२१	१४.४१		

तालिका संख्या ५ में प्रदर्शित आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि गढ़वाल मण्डल में शहरी महिलाओं की व्यावसायिक स्थिति के आधार पर कृषि कार्य करने वाली व गृहणी की राजनीतिक सक्रियता ३०.७४ प्रतिशत मध्यमान है, सरकारी सेवारत महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ५६.७५ प्रतिशत है व अन्य महिलाओं (निजी व्यवसाय, अध्ययनरत व अशासकीय संस्थाओं में सेवारत) की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ७७.२१ प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि जो महिलाएं कृषि कार्य, गृहस्थी व सरकारी सेवारत् हैं उनकी राजनीतिक सक्रियता व जागरुकता का स्तर अन्य वर्ग वाली

महिलाओं से कम है। इस तथ्य की पुष्टि P मान भी करता है (f=236.65 व P=.000) चूंकि P=<.005। इस तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि बहुसंख्यक महिलाएं कृषि एवं गृहणी वर्ग की थीं जिनकी राजनीतिक सक्रियता अन्य वर्गों से कम पाई गई।

तालिका ६

उत्तराखण्ड में ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं की व्यावसायिक स्थिति के आधार पर राजनीतिक सक्रियता

व्यावसायिक स्थिति	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	एफ मान	पी मान
कृषि/गृहणी	४५५	३३.०८	१५.३६		
सरकारी सेवा	१३८	६०.०२	१५.६२	५०१.८०	.०००
अन्य	३०७	६६.६५	१७.६६		

तालिका संख्या ४.१३ में प्रदर्शित आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड में कृषि कार्य करने वाली गृहणियों की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ३३.०८ प्रतिशत है व सरकारी सेवारत् महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ६०.०२ प्रतिशत है तथा अन्य निजी व्यवसाय, अध्ययनरत् व अशासकीय सेवा में कार्यरत् महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ६६.६५ प्रतिशत है जो कि सबसे अधिक है। अन्य महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता कृषि कार्य में लगी गृहणियों तथा सरकारी सेवा करने वाली महिलाओं से अधिक पाई गई इस तथ्य को तालिका में P मान भी प्रमाणित करता है (f=501.80 व P=.000) चूंकि P<.005A

उपरोक्त तालिकाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अन्य महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता कृषि कार्य में लगी महिलाओं व गृहणियों तथा सरकारी सेवारत महिलाओं से अधिक पाई गई, क्योंकि अन्य महिलाएं जो कि या तो स्वयं सहायता समूह की सदस्य हैं, या अध्ययनरत् है, या जिनका अपना निजी व्यवसाय है, या समाज कल्याण से जुड़ी है, ऐसी महिलाएं अनेक लोगों से मिलने के कारण, शिक्षित होने के कारण तथा विभिन्न सभाओं, सम्मेलनों, गोष्ठियों आदि कार्यक्रमों में भाग लेने के कारण राजनीतिक मामलों में अधिक सक्रिय पाई गई। वहीं दूसरी ओर शोधार्थी ने सर्वेक्षण के दौरान पाया कि सरकारी सेवारत महिलाएं सेवा शर्तों के अनुरूप राजनीतिक क्रियाकलापों में खुलकर भाग नहीं ले सकती हैं तथा कार्यालय के अतिरिक्त परिवार की देखभाल एवं अन्य घरेलू कार्यों में भी उनकी व्यस्तता होने व समयाभाव के कारण ऐसी महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने में रुचि कम पाई गई।

आर्थिक संरचना एवं राजनीतिक सक्रियता

शोधार्थी द्वारा गढ़वाल मण्डल की महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता को उनके परिवार की मासिक आय के आधार पर भी ज्ञात करने का प्रयास किया गया। प्राप्त आंकड़ों का सांख्यकीय विश्लेषण निम्न तालिकाओं में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका ७

गढ़वाल मण्डल में ग्रामीण महिलाओं की पारिवारिक मासिक आय के आधार पर राजनीतिक सक्रियता

मासिक आय	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	एफ मान	पी मान
०-७००० रुपये	२७४	३१.४५	१३.४३		
७००१-१४००० रुपये	२२०	५४.१४	१३.७४	४७०.८५	.०००
१४००१ से अधिक रुपये	१०६	७७.५५	१४.१४		

तालिका संख्या ७ में प्रदर्शित आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि गढ़वाल मण्डल में ग्रामीण महिलाओं की पारिवारिक मासिक आय के आधार पर ७००० रुपये तक आय वर्ग की महिलाओं में राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ३१.४५ प्रतिशत तथा ७००१ से १४००० रुपये तक आय वर्ग की महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ५४.१४ प्रतिशत व १४००१ से अधिक आय वर्ग वाली महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता का मध्यमान ७७.५५ प्रतिशत है। इन आंकड़ों से ज्ञात होता है कि अधिक आय वर्ग वाली महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता व जागरुकता भी मध्यम व निम्न आय वर्ग वाली महिलाओं से काफी अधिक है। इस तथ्य को P मान भी प्रमाणित करता है। (f=470.86 व P=.000)।

निष्कर्ष : पिछले ६५ वर्षों में भारत में महिलाओं ने विभिन्न मुद्दों को नारीवादी नजरिये से विश्लेषित करते हुए संघर्ष किया है। समाज में व्याप्त हिंसा, पितृसत्ता, असमानता, अन्याय और दमनकारी नीतियों को बदलने के आंदोलनों को

नेतृत्व दिया है परन्तु महिला आन्दोलनों का लक्ष्य केवल उपरोक्त उद्देश्यों को ही प्राप्त करना नहीं रहा है, वरन् महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से भी सक्रिय बनाना रहा है यद्यपि उत्तराखण्ड की महिलाओं का वनों के प्रति भी एक स्वाभाविक लगाव है। चूंकि विशेषकर ग्रामीण महिलाओं की दिनचर्या की कई आवश्यकताओं की पूर्ति भी इन्ही वनों से होती है। इसलिए चिपको आन्दोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी थी। महिलाओं की पारिवारिक आवश्यकता की जरुरतों जैसे ईंधन, चारा व अन्य वन्य उत्पादों की आपूर्ति वनों से ही होती है अतः उन पर जंगल के कटान से प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ रहा था। चूंकि यहां की महिलाओं के ऊपर कृषि कार्य भी निर्भर हैं, जिससे वह घरेलू कार्यों के लिए कम समय दे पाती हैं। अतः ऐसी स्थिति में यदि वन्य उत्पादों में भी कमी हो जाती, तो उन्हें घास, चारा व लकड़ी प्राप्त करने के लिए और भी अधिक मेहनत व दूरी तय करनी पड़ती, जो कि उनके लिए कठिन थी। इस बात को महिलाओं ने स्पष्ट रूप से समझ लिया था। इसलिए वन ठेकेदारों के हाथों वनों के अमर्यादित दोहन के खिलाफ महिलाओं के द्वारा इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लेना स्वाभाविक था। वर्ष १९७० में 'गंगोत्री ग्राम स्वराज संघ' की स्थापना से उन्हें आवश्यक सांगठनिक सहयोग मिला और इस संगठन की गतिविधियों से ही उन्हें वन्य कटान के प्रति अपने विरोध और चिंताओं की दिशा निर्धारण का भी अवसर मिला। इसके अतिरिक्त स्थानीय लोगों पर विनोबा भावे की वर्ष १९५७ की उत्तरकाशी यात्रा तथा उनके द्वारा संचालित कार्यक्रमों जैसे ग्रामदान, ग्राम मुक्ति आन्दोलन और वनों के प्रति घनिष्ठ सम्बन्धों को पुर्नजीवित करने की अपील का भी प्रभाव पड़ा। इसलिए पेड़ों से चिपककर उनका कटान रोकने की यह नीति इतनी कारगर सिद्ध हुई कि वनों को काटने वाले ठेकेदार इस क्षेत्र में अपने इरादों की पूर्ति में सफल नहीं हो पाए। परिणामस्वरूप सरकार को उन्हें इसके बदले मंदाकिनी घाटी में उनके लक्ष्य की पूर्ति करने के लिए ठेका देना पड़ा। चूंकि चिपको आन्दोलन की सफलता की सूचना गढ़वाल मण्डल में जंगल की आग की तरह फैल चुकी थी। इसीलिए वनों के वह ठेकेदार मंदाकिनी घाटी में भी पेड़ काटने में सफल नहीं हो पाए। वस्तुतः सर्वोदयी कार्यकर्ता और प्रख्यात पर्यावरणाविद चंडी प्रसाद भट्ट, सुन्दर लाल बहुगुणा, स्थानीय लोगों तथा महिला मंगल दलों ने न केवल वन्य कटान के प्रति अपनी आवाज उठायी, वरन् रेलियों, पदयात्राओं, सभाओं एवं शिविरों के माध्यम से ग्रामीणों ने जागरुकता का प्रचार भी किया। इसके परिणामस्वरूप 'चिपको' गढ़वाल हिमालय के दूरस्थ क्षेत्रों/ग्रामों में भी एक जाना पहचाना नाम हो गया और लोगों ने सारे हिमालयी क्षेत्र में वाणिज्यक उद्देश्यों के लिए वनों के कटान का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। ३९ रैणी गांव की महिलाओं के द्वारा चिपको को व्यवहारिक रूप प्रदान कर दिए जाने से न केवल उनके वन सुरक्षित रहे, वरन् आगामी वर्षों में उनके इस कदम ने एक आंदोलन का स्वरूप ले लिया और गौरा देवी इस लोक आन्दोलन की नेत्री बनकर उभरी। इस बहुचर्चित चिपको आन्दोलन को इन निर्धन एवं अनपढ़ महिलाओं की सक्रिय गतिविधियों और वनों के प्रति उनके सम्पर्ण ने नवसंवेग प्रदान किया और इसे वृहद पैमाने पर 'भारत' में महिलाओं के एक आन्दोलन के तौर पर देखा गया, जिसमें सुदूरवर्ती एवं ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं ने अपनी सक्रियता का परिचय दिया।

सन्दर्भ

१. ऋग्वेद ६/१३१८, 'यत्र राजा वैवस्वतों यत्रावरोधनदिवः यत्रमूर्यहतीरापस्तत्र माममृंत कृधीन्द्रोयेन्दो परिस्त्रव'
२. नेगी आनन्द पाल सिंह, 'उत्तरांचल में उभरता महिला राजनीतिक अभिजन वर्ग', गढ़वाल के सन्दर्भ में एक अध्ययन, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, हे०न०ब०ग० विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल
३. पुरोहित के.सी, 'हमारा उत्तराखण्ड का भूगोल श्रृंखला संख्या', प्रकाशन विनसर, पब्लिशिंग कम्पनी, पौड़ी गढ़वाल, १९९७,पृ० ११
४. साल्टेन इस्टाल आर., 'ह्यूमन रिलेशन इन एडमिनिस्ट्रेशन', मेग्रेहिल न्यूयार्क १९५६, पृ० ३८८-९०
५. आमण्ड जी.ए. व वर्बा सिडनी, 'द सिविक कल्चर', प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन; १९६३ पृ० ३१५-३१८
६. क्लार्क जान०जे०, 'दि लोकल गर्वनमेन्ट ऑफ यूनाईटेड किंगडम', १९५५, पृ० ३०
७. श्रीवास्तव के०सी०, 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति', यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद,२०००,पृ० ६६
८. वाशम ए०एल०, 'वंडर दैट वज इण्डिया', लन्दन, १९५६, पृ० १५
९. श्रीवास्तव के०सी०, पूर्वोक्त, पृ० ६६
१०. वाशम ए०एल०, 'अद्भुत भारत', शिव अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, १९६४, पृ० ३५
११. वर्मा सवलिया बिहारी, सोनी एम०एल० और गुप्ता संजीव, 'महिला जागृति और सशक्तिकरण', अधिकार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, २००५, पृ० ९५
१२. पंत हरिबल्लभ व दरमोड़ा अरविन्द, 'हिमालय में महिला विकास कार्यक्रम एक विवेचनात्मक अध्ययन', हिमालयन एक्सन रिसर्च सेन्टर, देहरादून, १९९९, पृ० ५७-५८

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

गाँधी और अम्बेडकर वैचारिक मतैक्य एवं मतभेद

❑ डा. बैद्यनाथ महतो

भारत वर्ष के दो महापुरूष गाँधी और अम्बेडकर दोनो समाज में आमूल परिवर्तन लाना चाहते थे। एक ने दलितों की पीड़ा को अपनी पीड़ा माना, दूसरे ने सबकी पीड़ा का विष पिया किन्तु सहमति- असहमति की चिन्ता किये बगैर दोनो महापुरूषों ने एक मंच पर काम किया। दोनो का सामाजिक चिन्तन मानवतावादी मूल्यों को समाज में स्थापित करने की दिशा में था। अनेक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर गाँधी और अंबेडकर के बीच वैचारिक मतभेद भी रहें। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत गांधी और अम्बेडकर के बीच वैचारिक मतैक्य तथा मतभेदों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

भारत वर्ष के दो महापुरूष गाँधी और अम्बेडकर दोनो समाज में आमूल परिवर्तन लाना चाहते थे। एक ने दलितों की पीड़ा को अपनी पीड़ा माना, दूसरे ने सबकी पीड़ा का विष पिया किन्तु सहमति- असहमति की चिन्ता किये बगैर दोनो महापुरूषों ने एक मंच पर काम किया। सांप्रदायिकता, अस्पृश्यता और निर्योग्यता गाँधी और अम्बेडकर दोनो को दुखी कर रही थीं। सामाजिक न्याय की लड़ाई दोनो लड़ रहे थे। डा० अम्बेडकर दलितों की मुक्ति पहले चाहते थे गांधी जी दलितों की मुक्ति के साथ-साथ सवर्ण हिन्दू समाज की मुक्ति भी चाहते थे और देश की आजादी भी। दोनो महापुरूषों ने शोषण रहित समाज की परिकल्पना की थी। सामाजिक सुधार एवं बदलाव के लिए उन्होने काफी संघर्ष किया। राष्ट्रीय नेताओं में गाँधीजी ही पहले नेता थें जिन्होंने अस्पृश्यता के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने इसे खत्म करने को सबसे अधिक प्राथमिकता दी। १६२३ में गाँधी जी की प्रेरणा से कांग्रेस ने अस्पृश्यता निवारण के लिए ठोस कदम उठाने का फैसला किया।

गाँधी जी और अम्बेडकर दोनो का सामाजिक चिन्तन मानवतावादी मूल्यों को समाज में स्थापित करने की दिशा में था। वे सामाजिक व्यवस्था को लोकतांत्रिक आधार पर पुनर्गठित करना चाहते थे। दोनों ने भारतीय हिन्दू समाज की समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया। उन्होंने भारतीय समाज को कुरीतियों, रूढ़ परम्पराओं एवं अन्धविश्वासों से जकड़ा पाया। वे उसके निवारण के लिए चिन्तन करते रहते थे। गांधी और अम्बेडकर दोनो समाज में समानता एवं भाईचारे की भावना का प्रादुर्भाव करना चाहते थे। गाँधीजी का यह विश्वास था कि हम सब समान पैदा होते हैं और इसलिए हम सबको समान अवसर पाने का अधिकार है। इसी कारण जाति-व्यवस्था के आधार पर अस्पृश्यता को गाँधीजी ने हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था पर एक काला धब्बा कहा है। गाँधीजी को कदापि यह स्वीकार नहीं था कि जन्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति या समूह को सामाजिक संस्तरण में सबसे नीचा स्थान दिया जाय, यहां तक कि उन्हें अस्पृश्य, या दलित वर्ग आदि कहकर पुकारा जाना भी उनको सहन नहीं था। गाँधीजी और अम्बेडकर के विचारों में कई मौलिक समानताऐं थीं। हरिजन आंदोलन में हरिजनों द्वारा स्वयं अपने समाज के भीतर सामाजिक सुधार करने का भी विचार था। इसमें शिक्षा के प्रसार, सफाई, सुअर और मरे हुए ढोर का मांस न खाने तथा अपने ही समाज के भीतर छुआछूत को समाप्त करने की बातें थीं। गाँधीजी का यह भी प्रयास था कि इस सामाजिक सुधार आदोंलन के कारण हरिजनों में सामाजिक राजनीतिक चेतना का विकास हो।[1] अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय के सिद्धान्त को स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के आधार पर प्रतिपादित किया। वे व्यक्ति के सम्मान और सामाजिक सम्बन्धों में सामंजस्यता चाहते थे। यही सामाजिक न्याय का मूल स्त्रोत है।

दोनो महापुरूष में वैचारिक मतभेदः गाँधी और अंम्बेडकर के विचारों तथा व्यक्तित्वों का आकलन करते समय गोलमेज, परिषद, अस्पृश्यों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की अंम्बेडकर की मांग, येरवडा जेल में गाँधी के उपवास और समझौते, दोंनो में कुछ समय तक सहयोग और उसके बाद अलगाव आदि प्रसंग निश्चय ही महत्वपूर्ण हैं। अनेक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर गाँधी और अंबेडकर के बीच वैचारिक मतभेद रहें, गाँधीजी अपने को व्यावहारिक आदर्शवादी मानते थे। यह उनके व्यक्तित्व की मुख्य विशेषता थी। वे आजीवन वर्णव्यवस्था का समर्थन करते रहे। उन्होने अस्पृश्यों के लिए सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकारों का संघर्ष छेड़ने के बजाये सवर्णों में पापबोध जगाने और उसके प्रायश्चित पर जोर दिया।

❑ सहायक प्राध्यापक, सामाजिक विज्ञान विभाग, जी.बी. पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, (उत्तराखण्ड)

गाँधी और अंम्बेडकर दोनो अस्पृश्यता की समस्या एवं जातिवाद की विघटनकारी शक्तियों के खिलाफ थे। किन्तु विचारधारात्मक स्तर पर कुछ मूलभूत मतवैभिन्य भी था। गाँधीजी भारत के गांवों को भारतीय सभ्यता और संस्कृति की आत्मा मानते थे। अम्बेडकर गाँवों में स्थापित व्यवस्था को दलितों के हितों के विरूद्ध मानते थें। अम्बेडकर का जन्म चूंकि एक अस्पृश्य परिवार में हुआ था। अतः दलितों के साथ होने वाली अमानवीय यन्त्रणाओं का उन्हें गहरा अनुभव था। जो तिरस्कार उपेक्षायें उन्होंने स्वयं झेली थीं, वे ज्यादतियां वे कभी भुला नहीं पाये। विदेश से उच्च्य शिक्षा प्राप्त कर भारत आने पर डा० अम्बेडकर ने अपने समाज में परिवर्तन की एक परिकल्पना कर रखी थी किन्तु यहाँ आने पर फिर अपमान, उपेक्षा एवं जाति - विभेद की समस्या विद्यमान थी। अत्यधिक शिक्षित एवं व्यवस्थित होने के बावजूद डा० अम्बेडकर अपने को इस सामाजिक उपेक्षा की समस्या से सुरक्षित नहीं रख पाये। उन्हें कई एक अवसरों पर अपमानजनक स्थिति का सामना करना पड़ा। जैसे -१९१७ में अम्बेडकर को महाराजा बड़ौदा का सैनिक सचिव बनाया गया लेकिन वहां का वातावरण उनके अनुकूल नहीं था। चपरासी उनकी मेज पर दूर से ही फाइलें फेंका करते थे। दफ्तर में उन्हें पानी भी नसीब नहीं होता था। यह सब असहनीय था। डा० अम्बेडकर इस भेदभाव की पीड़ा को और अधिक सहन नहीं कर सके और उन्होंने भारतीय समाज को इस सामाजिक असमानता की परम्पराओं से मुक्त करने का दृढ़ संकल्प लिया जिसके लिए बाबा साहेब जीवनपर्यन्त सामाजिक सुधार आन्दोलन करते रहे।[२] गांधी एक सवर्ण कुल में जन्मे थे। अमानवीयता को वे खत्म करने के पक्षधर थे। किन्तु अछूत होने एवं अमानवीय ज्यादतियां सहने की पीड़ा उनके पास नहीं थी। गाँधीजी समाज में हृदय परिवर्तन चाहते थे जबकि अम्बेडकर जाति व्यवस्था को तोड़ने को सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे। वे दलितों को संगठित कर अपने हकों के लिए संघर्ष करने का आहवान कर रहे थे एवं उनके भविष्य संवारने के लिए स्वतंत्र भारत में समाजिक राजनीतिक अधिकार सुरिक्षत करना चाहते थे। डा० अम्बेडकर की वैचारिकता पर विज्ञाननिष्ठा, आधुनिक सामाजिक चिंतन और पश्चिमी राजनीतिक-आर्थिक अवधारणाओं की गहरी छाप थी। उनका मानना था कि किसी भी प्रकार की सामाजिक क्रांति के लिए सुस्पष्ट विचारधारा जरूरी है। अध्ययनशील अंम्बेडकर ने हिन्दू समाज- व्यवस्था के दोष बताने और उसमे अंतर्निहित अमानुषिकता को उजागर करने के लिए आधुनिक सामाजिकशास्त्रों का अध्ययन किया। गाँधी और अम्बेडकर के लेखन की तुलना करते हुए यह ठीक ही लिखा हैं कि गाँधी के लेखन मे जो स्थान सत्य और अहिंसा का है, अंम्बेडकर के प्रतिपादन में वही स्थान स्वतंत्रता,समता और बंधुभाव की त्रिपुटी का है। अम्बेडकर के लिए जातिप्रथा अस्पृश्यता और उसके साथ अभिन्न रूप से जुड़ी समाजिक विषमता का प्रत्यक्ष अनुभव था। वस्तुतः डा० अम्बेडकर ने सांविधानिक शासन, कानून, धर्म और नैतिकता को सामाजिक न्याय के आन्दोलन में सामाजिक समानता , समान प्रतिष्ठा एवं सामाजिक बन्धुत्व पर जोर दिया जो डा० अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा का निर्माण करते हैं।

गांधी और अम्बेडकर की पहली मुलाकात १४ अगस्त १९३१को बंम्बई के मणि भवन में हुई। प्रारंभिक औपचारिकताओं के बाद तुरंत ही दलित समस्या पर दोनो में मतभेद स्पष्ट रूप से उभर आए। इस मुलाकात में गाँधी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए अपने और कांग्रेस के प्रयासों का जिक्र किया। जवाब में अंम्बेडकर ने कहा कि कांग्रेस ने समस्या को औपचारिक मान्यता देने के अलावा कुछ नहीं किया। कांग्रेस अपनी कथनी के बारे में ईमानदार नहीं है, अन्यथा वह कांग्रेस की सदस्यता के लिए खादी पहनने की अनिवार्यता की तरह अस्पृश्यता-निवारण की भी शर्त रख सकती थी। कोई भी ऐसा आदमी जो किसी न किसी अस्पृश्य स्त्री अथवा पुरूष को अपने घर में काम पर नहीं रखेगा, किसी अस्पृश्य विद्यार्थी के साथ सप्ताह में कम से कम एक बार अपने घर में भोजन नहीं करेगा, वह कांग्रेस का सदस्य नहीं बन सकेगा। आप कहते हैं कि ब्रिटिश सरकार का हदृय-परिर्वतन होता नहीं दिख रहा हैं। जब तक वह अपनी बात पर अड़े हुए हैं तब तक हम न कांग्रेस पर विश्वास करेंगे और न हिंदुओं पर। हम अपनी मदद आप करने और आत्मसम्मान में विश्वास करते हैं। हम महान नेताओं और महात्माओं में विश्वास करने के लिए तैयार नही हैं।[३]

इस वार्तालाप से अस्पृश्यता के विरूद्ध सघर्ष छेड़नेवाले इन दो महापुरूषों के दृष्टिकोणों का अंतर स्पष्ट हो जाता हैं। मतभेदों की इस अपाट खाई के रहते दूसरी गोलमेज परिषद में गाँधी और अंबेडकर में सहमति की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। वहाँ अंबेडकर ने अस्पृश्यों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की मांग की और गाँधी ने उसका प्रबल विरोध किया। समाज विज्ञानी डॉ० एम.एस. गोरे के अनुसार तो सारे घटनाक्रम को ध्यान में रखने पर ऐसा लगता है कि दूसरी गोलमेज परिषद हिंदू-मुस्लिम अथवा कांग्रेस-ब्रिटिश नजरियों में संघर्ष के कारण नहीं बल्कि गाँधी-अंबेडकर में सेतुरहित अंतर के

फलस्वरूप विफल हुई।

सम्मेलन में गाँधी ने जोर देकर कहा था कि ''अछूतों के राजनीतिक अधिकारों के बारे में बोलने वालों को अपने भारत के बारे में ज्ञान नहीं है। उनको ज्ञान नहीं है कि आज भारतीय समाज किस तरह गठित है-और इसलिए मै पूरा जोर देकर कहता हूँ कि यदि मुझे अकेले ही इसका प्रतिरोध करना पड़ा तो भी मैं अपना जीवन देकर यह करूँगा।''ब्रिटिश शासन और अस्पृश्यता की दो बुराइयों के बारे में अंबेडकर अस्पृश्यता के स्वरूप और जाति के स्वरूप में भेद करने को तैयार ही नही थे अंबेडकर के लिए भारत में ब्रिटिश राज सबसे बड़ा शत्रु नही था उनके लिए सबसे बडी समस्या जाति व्यवस्था थी। उनकी सारी क्षमताएं जाति को नष्ट करने में लगी हुई थी। वास्तव में वह विदेशी हमलावरों के आगे भारत की बार-बार पराजय का कारण जाति प्रथा से उत्पन पंगुता और उदासीनता मानते थे।

गाँधीजी के साथ डा० अंबेडकर के वैचारिक मतभेद कॉन्फ्रेन्स में उभर कर सामने आये।यद्यपि दोनों ही देश व दलितों की आजादी के पक्षधर थे, किन्तु बाबा साहेब की इच्छा थी कि पहले दलितों की आजादी हो फिर भारत की आजादी के मुद्दे पर काम किया जाये। अम्बेडकर के अनुसार भारत को आजादी मिलने के बाद कांग्रेस के नेताओं के नेतृत्व से देश में दलितो का शोषण और ज्यादा हो जायेगा।[४] इस पर कांग्रेस के कुछ लोगों का विचार था कि अंबेडकर आजादी की लड़ाई में बाधा डाल रहे हैं। वैसे अंबेडकर का उद्देश्य यह नहीं था। अंबेडकर यह सोचते थे कि भारत में अंग्रेजो का शासन शर्मनाक है, लेकिन सवर्ण लोग दलितों का शोषण कर रहे हैं यह ज्यादा खतरनाक है। अंबेडकर ने शुरू के दिनो में मंदिर प्रवेश, तालाब के पानी आदि के लिए सत्याग्रह एवं आंदोलन किये लेकिन जल्द ही उनका विश्वास इस तरह के आंदोलनों से उठ गया। आगे चलकर यह महात्मा गाँधी के मंदिर प्रवेश जैसे आंदोलनों को काफी हास्यास्पद मानने लगे थे। तर्क युक्त बौद्धिक आन्दोलनो और राजनीतिक संगठन पर उनका विश्वास उतरोत्तर दृढ़ होता गया।

गाँधी दलितो एवं अछूतोद्धार के कार्य में आजीवन लगे रहे। यहाँ इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि अपनी सारी नेकनीयती के बावजूद गाँधी की सामाजिक सुधार से सम्बन्धित नीति की कुछ मौलिक कमजोरियाँ थीं। उदाहरणार्थ गाँधी सामाजिक भेदभाव, छुआछूत आदि के विरूद्ध तो थें पर वे वर्णव्यवस्था के समर्थक थे, यह एक बड़ा अंतर्विरोध था। गाँधीजी ने स्वंय स्पष्टीकरण देते हुए बताया कि वर्ण के नियम का अर्थ यह है कि धार्मिक कर्तव्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्वजों के वंशानुगत पेशों को अपनाएगा। यह नियम कुछ निश्चित प्रवृतियों वाले मनुष्यों के लिए निश्चित कार्यक्षेत्रों की स्थापना करता है। सीमाओं को मानते हुए भी वर्ण का नियम छोटे और बड़े के बीच में कोई भेद भाव नहीं करता। गाँधीजी के द्वारा प्रकाशित 'हरिजन' के पहले अंश को भेजे गए अपने संदेश में अंबेडकर ने कहा मै कोई संदेश नहीं दे सकता। अंत्यज वर्णव्यस्था की देन है। जब तक वर्ण व्यवस्था का अस्तित्व रहेगा तब तक अंत्यज रहेंगे और वर्ण व्यवस्था के रहते अंत्यजों की मुक्ति संम्भव नहीं है।[५]

इस पर गाँधीजी ने उत्तर दिया अस्पृश्यता वर्ण व्यवस्था की देन नही है, बल्कि ऊँच-नीच की भावना है जो हिन्दू धर्म में फैल गई है और इसे खाए जा रही है। अस्पृश्यता निवारण ऊँच-नीच की भावना पर हमला हैं। मौजूदा संयुक्त संघर्ष का उद्देश्य केवल अस्पृश्यता निवारण तक सीमित हैं। अम्बेडकर के विचारों से कांग्रेस के उदारवादियों ने सहमति व्यक्त की जिनमें नेहरू जी भी थें। गाँधीजी चाहते थे कि हिन्दू समाज से अस्पृश्यता मिट जाए और मौलिक चतुर्वर्ण व्यवस्था कायम रहे। गाँधीजी का आशय यह था कि जाति प्रथा कायम रहें प्रारम्भिक काल की तरह समाज केवल विशद चार वर्णो मे ही विभाजित रहें।[६]

समाजविज्ञान के क्षेत्र में वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था दोनो विशद चर्चा का विषय रहे है। प्रायः 'वर्ण' और 'जाति' को समानार्थी मान लिया जाता है, किन्तु वस्तुतः दोनो में अन्तर है। हट्टन तथा कुछ अन्य समाजवैज्ञानिकों का मत है कि जाति और वर्ण दो पृथक व्यवस्थाएँ हैं और सामाजिक संगठन तथा कार्य की दृष्टि से दोनों में भेद है। हट्टन कें अनुसार किसी भी स्थिति में वर्ण आज कल की जाति नहीं है। वर्ण व्यवस्था एक वृहद व्यवस्था है जिससे सम्पूर्ण भारतीय समाज को कार्यात्मक दृष्टि से चार बड़े समूहों में विभाजित किया गया था ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिसमें शूद्र की स्थिति को इन तीनों से निम्न रखा गया था। किन्तु जाति व्यवस्था जन्म पर आधारित है।व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता हैं जीवन भर उसी में रहता है। वर्ण चार ही होते है पर जातियों की संख्या हजारों में है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वर्णव्यवस्था आर्यो की विशिष्ट देन है जो कलान्तर में धीरे-धीरे कर्म न होकर जन्म पर आधारित होती गई और सामाजिक भेद-भाव दृढ़ होता गया। प्राचीन भारत की सामाजिक विचारधारा का परिचय हमें विशेशतः हिन्दुओं के धार्मिक तथा अन्य ग्रन्थो जैसे मनुस्मृति

आदि से मिलता है। इन ग्रन्थों में प्राचीन भारत के लोगो के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी विषयों पर विचार व्यक्त किए गए है। वैदिक साहित्य में वर्ण शब्द का प्रयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन चारों सामाजिक वर्गों उनके कर्तव्य-कर्मो वर्ण-धर्म एवं गुणों का वर्णन किया गया। मनु के अनुसार शूद्र का कर्तव्य उक्त तीनों वर्णों की सेवा करना है। कालान्तर में वर्ण संरचना में शूद्रों का स्थान सबसे नीचा होता गया।

गांधी जी छुआछूत निवारण के मुददे को अंतर्जातीय विवाह और अन्य ऐसे मुद्‌दों के साथ जोड़ने के पक्ष में नही थे। उनका मानना था कि ये बातें तो खुद सवर्ण हिन्दू समाज और हरिजन के बीच में भी हैं। गॉंधीजी कहतें थें कि हरिजनोत्थान के इस मौजूदा आंदोलन का उद्‌देश्य इन कुरीतियों, कठिनाइयों को दूर करना है। इसी तरह उन्होने छूआछूत निवारण और जाति निवारण में भी भेद किया। वे अंम्बेडकर के विचारों से असहमत थे।

अम्बेडकर के अनुसार अछूत जाति प्रथा की ही देन हैं।[७] जब तक जाति प्रथा कायम रहेगी अछूत बने रहेंगे। जाति प्रथा को समाप्त किए बिना अछूतोद्धार असंभव हैं। लेकिन गॉंधीजी का कहना था कि वर्णाश्रम की अपनी जो भी खामियां हो, इसमे कोई पाप नहीं है, लेकिन छूआछूत पाप हैं। उनका कहना था कि छूआछूत जाति प्रथा के कारण नहीं हैं, बल्कि यह तो 'उच्च' और 'निम्न' के बॅंटवारे का प्रतिफल हैं। जातियॉ यदि एक दूसरे की पूरक होकर काम करें, तो जाति प्रथा में कोई बुराई नही है। कोई जाति न ऊॅंची न नीची। गॉंधीजी ने कहा कि जो हो, वर्णाश्रम के विरोधी और उसके समर्थक एक साथ मिलकर काम कर सकते हैं, क्योंकि दोनो छूआछूत के विरोधी है।

महात्मा गॉंधी के मतानुसार, अस्पृश्यता का मूल उद्‌गम धर्म नहीं है। उच्चता के खोटे अहंकार ने ही अस्पृश्यता को जन्म दिया है। अपने से दुर्बल को सदैव पैरों तले दबाते रहने की मनोवृति से अस्पृश्यता उत्पन्न हुई है।अस्पृश्यता कें सम्बंध में आपकी जो यह धारणा है कि यह स्वयं ईश्वर की बनाई हुई है। मैं आपके इसी विश्वास के विरूद्ध तो यहां चेतावनी देने आया हूॅं कि अस्पृश्यता कोई दैवीय रचना नहीं है। अस्पृश्यता तो कागज के नकली फूलों की भॉंति मनुष्य की बनाई एक कृत्रिम चीज है। आज का अछूतपन- मनुष्यकृत है। अम्बेडकर ने विभिन्न ऐतिहासिक उदाहरणों से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि अस्पृश्यता के बने रहने के पीछे कोई तार्किक सामाजिक अथवा व्यवसायिक आधार नही हैं। अतः उन्होंने जोरदार शब्दों में इस वर्णव्यवस्था का खंडन किया। उनका दृष्टिकोण था कि यदि हिन्दू समाज का उत्थान करना है। तो अस्पृश्यता का जड़ से निवारण आवश्यक है।[८] २० वीं शताब्दी में वर्ण का अर्थ जाति से भिन्न नहीं हो सकता था। जाति प्रथा के प्रश्न पर उनके विचार अस्पष्ट और अनुदार थे। इसी प्रकार गॉंधी सामाजिक एकता के पक्ष में तो थें, मगर सम्पति के समान वितरण के पक्ष में नहीं थे। वे ट्रस्टीशिप (न्यासिता) के पक्षधर थे। गॉंधीजी के चिन्तन में ऐसे कितने ही मौलिक अंतर्विरोध थे और उसमें व्यावहारिकता का अभाव था। इसके मुख्य कारण थे, उनके सामाजिक चिंतन पर धर्म का अतिशय-प्रभाव उनमें प्रगतिशीलता का अभाव और सामाजिक प्रश्नों के प्रति भावनाप्रधान आदर्शवादी दृष्टिकोण। १३ नवम्बर, सन १९३१ को लंदन में होने वाले गोलमेंज सम्मेलन में अंम्बेडकर ने एक और (दलित वर्ग) शब्द का विरोध किया और दूसरी ओर सुझाव रखा कि दलित वर्ग के सदस्यों को एक तरह से हिन्दू जातीय संरचना के बाहर मान लिया गया है। इस कारण उन्हें अलग मतदान देने का अधिकार भी देना चाहिए।महात्मा गॉंधी ने इसका विरोध किया और अछूतों के हितों की रक्षा के लिए अपने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि भारत की स्वतंत्रा प्राप्त करने के लिए मैं अछूतों के वास्तविक हित को नही बेचूॅंगा। इस सम्मेलन को और समस्त संसार को यह जान लेना चाहिए कि आज हिन्दू समाज में सुधारकों का ऐसा समूह मौजूद है जो अस्पृश्यता के इस कलंक को, जो उनका नहीं बल्कि कट्‌टर एवं रूढ़िवादी हिन्दूओं का कलंक है, धोने के लिए प्रतिबद्ध है। इसलिए गॉंधीजी अछूतों को इनके अपमानजनक नाम से विमुक्त करने के लिए हरिजन कहकर सम्बोधित करने लगे और जीवन के अन्तिम दिनों तक इनकी रक्षा के लिए प्रयत्नशील बने रहे।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने सामाजिक जीवन को यथार्थवादी तथा मानवीय दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया। यद्यपि सर्वोदय का विचार सामाजिक जीवन को उदातोन्मुख करने का है तथापि उसकी गति और नीति में आपत्ति थी। सर्वोदय का कार्यक्षेत्र सवर्ण जाति के हितों की रक्षा का भी उतना ही सम्पोषण करता है जितना पूॅंजीवादी अर्धव्यवस्थामूलक समाज का। उससे दलित एवं उपेक्षित वर्ग में क्रांन्तिकारी परिर्वतन तेजी से आने की संभावना में भी बाबा साहेब को संन्देह था चूंकिं उनकी प्रगतिशील समाज की संकल्पना दृढ़निश्चयी थी। उनकी यह संकल्पना सामाजिक, नैतिक, तथा राजनीतिक आधार पर थी यद्यपि वे आत्मा तथा ईश्वर और तदनुरूप अन्य आध्यात्मिक शक्तियों के प्रति अविश्वास प्रकट कर चुके

थे। अंम्बेडकर के अनुसार पैतृक पेशा अपनाने और अंतर्जातीय विवाह के दोनों सवालों पर गॉधीजी की स्थिति तर्क संगत नहीं थी। गॉधीजी द्वारा रक्त और अनुवंशिकता के आधार पर और योग्यता के बजाय जन्म के सिद्धान्त के आधार पर चातुवर्ण्य का समर्थन सहभोज की पाबंदियों का युक्तिकरण, संचय तथा इच्छा शक्ति की साधना के आधार पर मिश्र विवाहों की पाबन्दी का समर्थन स्पष्ट तौर पर गलत था। अम्बेडकर की यह मान्यता थी कि अन्तर्जतीय विवाह असल समाधान तर्क की दृष्टि से बहुत मजबूत थी। जाति और वर्ण व्यवस्था के विरोधी अम्बेडकर और समर्थक गॉधी के बीच चले लम्बे वैचारिक मतभेद का मूल आधार यही है।

१६३२ में बिटिश सरकार ने सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के सवाल पर अपना निर्णय दिया। इसमें अस्पृश्यों के लिए भी अलग निर्वाचक मंडल की अंबेडकर की मॉग स्वीकार कर ली गई उन दिनों गॉधी येरवड़ा जेल में थे। पहले की तरह ही अब भी वे अछूतों के अलग निर्वाचक मंडल को हिन्दूओं और भारतीय राष्ट्र के हितों के विरूद्ध मानते थे।

१७ अगस्त १६३२ के रैमजे मेकडोनल्ड (कम्यूनल अवार्ड) द्वारा अस्पृश्यों के पृथक राजनैतिक अस्तित्व को मान्यता दिए जाने पर गॉधी ने विशेष रूप से असंतोष व्यक्त किया। उनका कहना था कि यह एक अलगाव की पक्की दीवार बन जायेगी। उन्होंने कहा कि “मै अस्पृश्यों के महत्वपूर्ण हितों की बलि नहीं चढ़ने दूंगा ,चाहे देश को स्वाधीनता मिले या ना मिले।[६] पृथक निर्वाचन और पृथक आरक्षण की व्यवस्था से विलगाव का दुर्भाग्य नहीं टाला जा सकता। छूआछूत हिन्दू धर्म का अंग नही हैं। मैं तो सोचता हूॅ कि अगर हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता बनी रहती हैं तो इससे अच्छा यह है कि इस धर्म का नामोनिशान मिट जाए। वे कहते थे कि अम्बेडकर ने जो रवैया अपनाया है उससे हिन्दू धर्म के टुकड़े हो जायेंगे। गॉधीजी का विचार था कि यदि पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया तो ग्रामीणों मे फूट फैल जाएगी और गॉवो में जहां कट्टर हिन्दूओं का बाहुल्य है वहां इनका जीना दूभर हो जायेगा। इस तरह वे इसे अस्पृश्यों के लिए एक निश्चित खतरा मानतें थे। उनका विचार था कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का कलंक हैं, और निकट भविष्य में यह मिट जायेगी लेकिन पृथक निर्वाचन इस घाव को सदा हरा बनाये रखेगा। उधर अंबेडकर सोचते थे कि पृथक निर्वाचन, वयस्क मताधिकार और संवैधानिक मूल अधिकारों से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होगी। इस बीच मोंटफोर्ड सुधार के लिए साउथाब्रो आयोग का गठन किया गया था जिसने विभिन्न हितों और वर्गो के प्रतिनिधियों की राय पर विचार किया। आयोग की रिपोर्ट २२ फरवरी १६१८ को दी गयी थी। मताधिकार के बारे में बयान देने के लिए अम्बेडकर ने मांग की कि दलित जातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान सुरक्षित रखे जाएं और उनकी मतदाता सूचियां हो। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि स्वराज्य की मांग से पूर्व सामाजिक समानता सुनिश्चित की जाए।

गॉधीजी ने कहा हम नहीं चाहते कि अस्पृश्यों को जनगणना एवं अन्य दस्तावेजों में अलग वर्ग के रूप में दर्ज किया जाए। उन्होने अस्पृश्यों को हिन्दुओं से अलग रखने के हर प्रयास का विरोध किया और कहा इससे दलित जातियों का कोई कल्याण नही होगा। उन्होने सरकार को लिखा कि यदि दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल का निर्णय किया जाता है, तो मैं आमरण अनशन शुरू कर दूंगा। गांधीजी अस्पृश्यो के लिए पृथक निर्वाचक मंडल बनाने के विरोध में आमरण अनशन पर बैठ गए।[१०] एक बयान में अम्बेडकर ने बताया कि अगर गॉधीजी इस अस्त्र का उपयोग सर्वोच्च्य लक्ष्य स्वाधीनता प्राप्ति के लिए करते तो इसका औचित्य भी था। गॉधीजी का जवाब था कि मेरे लिए पृथक निर्वाचन का निवारण चरम लक्ष्य की शुरूआत हैं और मै बम्बई में एकत्र सब नेताओं और अन्य लोगों को भी चेतावनी देता हूॅ कि वे जल्दबाजी में कोई फैसला ना करे। मै अपने अनशन को न्याय के तराजू में तोलने के लिए तैयार हॅू। अगर सर्वण हिन्दूओं की ऑखे खुल जाती हैं और वे अपने कर्तव्य को समझ लेते है तो इससे मेरा उद्देश्य पूर्ण हो जाएगा।

बाबा साहेब ने कहा कि “महात्मा गॉधी कोई अमर नहीं है, और न ही कॉग्रेस अमर है। बहुत से महात्मा आए और चले गए। लेकिन अछूत अछूत ही बने रहे”।[११] अम्बेडकर के लिए ये कठिन निर्णय के दिन थे। एक ओर अस्पृश्यों के लिए प्राप्त किए गए अधिकारों की रक्षा का दायित्व था तो दूसरी ओर गॉधी को जीवन रक्षा का प्रश्न था। इस बीच देश के राष्ट्रवादी समाचारपत्र भी मुस्तैदी से अंम्बेडकर का विरोध कर रहे थे। सारे देश की निगाहें अंबेडकर पर केंद्रित हो गई थी। इन सब दवाबों के वातावरण में ही अंततः येडवडा समझौता हुआ, जिससे संयुक्त निर्वाचन मंडल में ही अस्पृश्यों के लिए आरक्षण की व्यवस्था स्वीकार की गई।

मधु लिमये ने गॉधी और अंम्बेडकर के मतभेद के तीन कारणों पर जोर दिया हैं। एक जाति प्रथा और एक अस्पृश्यता की बुराई के विश्लेषण में दोनो के बीच मूल दृष्टि-भेद में गॉधीजी अनेक वर्षो तक ऊॅच-नीच के क्रम तथा अस्पृश्यता के बीच संबंध नही देख सके। दो येरवडा समझौते के वादों को लागू

नहीं किया गया। अंबेडकर ने पृथक निर्वाचक मंडल के बदले सीटों के आरक्षण और प्राथमिक चुनाव की व्यवस्था मान ली थी। लेकिन असल बात तो यह थी कि दलित वर्ग जिन कमजोरियों का शिकार था, उनको शीघ्र दूर करने का प्रयत्न किया जाए। गाँधी और अंबेडकर में अलगाव का तीसरा कारण दलित-मुक्ति के उपायों और नेतृत्व के संबध में दोंनो में मौलिक मतभेद था।[12] गाँधी दलित मुक्ति को एक सामाजिक-नैतिक सुधार के आंदोलन के रूप में लेते थे। उन्होंने बार-बार कहा कि कोई काम न तो छोटा है न ही बड़ा। वे बार- बार श्रम की प्रतिष्ठा पर जोर देते थें। उन्होंने स्वयं मल-मूत्र साफ करने का कार्य किया। उनके अनुयायियों ने भी यह गलिच्छ काम करके समाज के सामने उदाहरण पेश किया। किंतु आंबेडकर इतने से संतुष्ट नहीं हो सकते थे। प्रतीकात्मकता के बजाय अस्पृश्यता- उन्मूलन के लिए ठोस संस्थागत और स्थायी आधार तैयार करना चाहते थे। इसलिए उनका जोर शिक्षा, नौकरियों और राजनीतिक अधिकारों पर था।

गाँधीजी अपने लेखों और भाषणों में बार-बार कहते थें कि हम हिन्दू लोग सदियों से हरिजन और दलितों पर जो अत्याचार ढाते आए है, अब हमें उसका प्रायश्चित करना चाहिए। शायद यही बात थी कि गाँधीजी ने अंबेडकर व अन्य हरिजन नेताओं की आलोचना का कभी बुरा नहीं माना। गाँधीजी का कहना था "मुझ पर भरोसा न करने का उन्हें पूरा हक हैं। आखिर मैं भी तो उसी तथाकथित उच्चवर्गीय हिन्दू समाज का ही हूँ, जिसने हरिजनों पर अत्याचार किए है, उनका शोषण किया है।

दोनों में समझौता : मूलरूप से ऐसा प्रतीत होता है कि गाँधीजी और अंबेडकर एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक थे। गाँधी और अम्बेडकर द्वारा प्रतिपादित समाधानों में एक समानता थी। दोनो ने दलितों की समस्या का हल लोकशाही के भीतर खोजा था। इस बात को अस्वीकार नही किया जा सकता है कि गाँधीजी ने हिन्दुस्तान के इतिहास में सर्वप्रथम अस्पृश्यों के विरूद्ध होने वाली ज्यादतियों पर रोक लगाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर आन्दोलन चलाये।

वास्तव में अम्बेडकर गाँधी के ऊपर शक इसलिए कर रहे थे कि उनसे उनको बहुत अपेक्षा थी, एक मात्र गाँधी ही ऐसे नेता थे जिनकी बात देश मानता था, कॉग्रेस मानती थी। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो अम्बेडकर और गाँधी दोनों ने ही उदारता और दूरदर्शिता का परिचय दिया।[13] स्वयं गाँधीजी ने हिन्दू के संवाददाता को बताया कि हिन्दुओं को उनके सदियों के पाप का दंड देने के लिए अम्बेडकर अपनी बात पर अड़े रह सकते थे। अगर उन्होंने ऐसा किया होता तो उनसे मुझे कोई शिकायत नहीं होती और मेरी मृत्यु हिन्दुओं द्वारा अगणित पीढ़ियो पर किए गए अत्याचारों की मामूली कीमत होती। लेकिन उन्होंने उदारता का रूख लिया और क्षमा का अनुसरण किया, जिसका सभी धर्मो में प्रावधान है। मैं उम्मीद करता हूँ कि सवर्ण हिंदू अपने को इस क्षमा के पात्र सिद्ध करेगें।

इस बीच गाँधी के बारे में अंबेडकर के विचारों में भी परिर्वतन आया था। उनको स्पष्ट लगने लगा था कि जातिप्रथा, वर्ण- व्यवस्था और अस्पृश्यता-निवारण के संबंध में महात्मा गाँधी के विचार बदले हैं। इसका अम्बेडकर ने निस्संकोच स्वागत किया था। उन्होने कहा भी कि अब गांधीजी को अपना आदमी कहना चाहिए क्योंकि वे अब हमारी भाषा और हमारे विचार बोलने लगे हैं।

कम्यूनल अवार्ड को लेकर जब महात्मा गाँधी ने अनशन किया और वे मरणासन्न हो गए तो अम्बेडकर ने कहा कि मैं इतने बड़े आदमी को मरने नहीं दूंगा और बिटिश संसद से मिले पृथक मतदाता सूची के अधिकार को छोड़कर गाँधीजी के विचार मानने को तैयार हो गए, गाँधीजी ने भी अपने विचारो मे परिवर्तन करके अम्बेडकर के विचारो का पूरा सम्मान किया।

गोलमेज सम्मेलन में अम्बेडकर ने पृथक मतदाता सूची की मांग रखी थी। गाँधी और अम्बेडकर में आपसी बातचीत हुई। अंततः गाँधीजी ने कहा "मैं आपके सुझाए पैनल की व्यवस्था मान्य करता हूँ गाँधीजी ने बहुत ही भावुक हो कर कहा "आप जन्म से अस्पृश्य है, मै मन से अछूत हूँ। हम सब एक है, अविभाज्य है, अभंग हैं। हिन्दू समाज का विघटन टालने के लिए मै अपने प्राण तक न्योछावर करने के लिए कृतसंकल्पित हैं। डा० अंबेडकर ने गाँधीजी का सुझाव मान लिया जो बाद में पूना समझौता के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शुरू में अम्बेडकर वयस्क मताधिकार संयुक्त मतदाता सूची और आरक्षण की मांग कर रहे थे। पूना पैक्ट में गाँधीजी ने न केवल आरक्षण की मांग स्वीकार की बल्कि कम्यूनल अवार्ड में मिले आरक्षणों से कहीं ज्यादा आरक्षण स्वीकार किया देश की एकता की चिंतां के कारण गाँधीजी पृथक मतदाता सूची की जगह संयुक्त मतदाता सूची पर जोर दे रहे थे। अंबेडकर ने गाँधीजी के तर्क को माना और गाँधीजी पहले से भी अधिक आरक्षण देने को तैयार हो गए। दोनो महापुरूषों ने एक दूसरे की भावनाओं का पूरा आदर किया।

बाबा साहेब इस बात को नजरअंदाज नही कर सकते थे कि दलितों को जो भी रियायते मिली हैं और जिन्हे बाद में संविधान

में शामिल किया गया, वे गॉंधीजी के कारण ही मिल सकी, बापू को छोड़ कर उस समय का कोई भी कांग्रेसी नेता अंबेडकर की पीडा को नही समझता था, यदि गॉंधीजी दलितों को विशेष रियायते देने के लिए वचनबद्ध न होते तो संविधान में इन रियायतें का प्रावधान कराने में अम्बेडकर को कठिनाई होती। अतः अनुसूचित जातियों, जनजातियों को संविधान में जो संरक्षण मिला, उसका अधिकांश श्रेय महात्मा गॉंधी को जाता है इसलिए बाबा साहेब के मन में गॉंधीजी के प्रति आदर की भावना थी। निःसन्देह गॉंधी सबसे शक्तिशाली सुधारक थे, दलित वर्ग के उत्थान और समाज में बराबरी का स्थान दिलाने के लिए बापू ने खूब काम किया। राष्ट्र के सर्वोपरि लोकप्रिय राजनीतिक नेता होने के कारण उन्हें इसमें काफी सफलता भी मिली। गॉंधीजी का सामाजिक परिवर्तन का तरीका सवर्णों के ह्रदय परिवर्तन का था।गांधी जी अपने अंतिम दिनो में कहते थें कि मैं उसी शादी में जाउँगा जहॉं एक पक्ष हरिजन हो। गॉंधीजी ने एक बार कहा था कि अगर मेरा पुनर्जन्म हुआ तो मै एक दलित के घर में पैदा होना पसन्द करूँगा और वो भी किसी भंगी के घर में। गॉंधीजी अस्पृश्यता एवं जातीय आधार को तोड़ने के लिए तथा सवर्ण हिन्दुओं के ह्रदय परिवर्तन के लिए, उनमें चेतना जगाने में बहुत हद तक सफल रहे, आवश्कता है गॉंधीजी को समग्र दृष्टिकोण से देखने एवं समझने की।

१६३२ में गॉंधीजी ने अंम्बेडकर के सन्दर्भ में लिखा-इसमें त्याग शक्ति हैं। कुर्बानी देने की शक्ति है। यह दावानल तो सुलगेगा ही। हिन्दू सच्चे होगें तो यरवदा समझौते की स्वर्णभस्म बना सकेंगे। नहीं तो चार करोड़ अस्पृश्य सारे हिन्दुस्तान का भक्षण कर जायेगें। अम्बेडकर,दलितो तथा शोषित वर्ग के उत्थान के लिए एक ऐसा आदर्श समाज स्थापित करना चाहते थे जिससे समानता, स्वतंत्रता तथा भ्रातृत्व के तत्व समाज के आधारभूत सिद्धान्त हों।[१४] अम्बेडकर एक महान सामाजिक सुधारक थे, जिन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित अन्यायपूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन तथा सामाजिक न्याय की स्थापना के सशक्त प्रयास किए। उन्होंने दलितों, पिछड़ों अस्पृश्यों के विरूद्ध सदियों से हो रहे अन्याय का न केवल सैद्धान्तिक रूप से विरोध किया अपितु अपने कार्य-कलापों, आन्दोलनों के माध्यम से उन्होंने शोषित वर्ग में आत्मबल तथा चेतना जागृंत करने का सराहनीय प्रयास किया।[१५] अतः अम्बेडकर केवल निम्न एवं उपेक्षित वर्ग के नेता नहीं थे बल्कि प्रखर विद्वान, अधिवक्ता, विधिवेत्ता, समाजिक विचारक तथा कानून जैसे विषयों में उच्च्व शिक्षा प्राप्त एवं ब्रिटेन और अमेरिका के तीन विश्वविद्यालयों से सर्वोच्च्व उपाधियां प्राप्त किये हुए थे। कहा जा सकता है कि अंम्बेडकर ने जाति व्यवस्था समाप्त करने के लिए दलितों को संघर्ष करने का आहवान किया और महात्मा गांधी ने समाज में ह्रदय परिवर्तन द्वारा दलितोंद्धार एवं अस्पृश्यता निवारण के लिए आह्वाहन किया। साम्प्रदायिकता एवं अस्पृश्यता की विघटनकारी शक्तियों ने दोनो को दुखी किया। गॉंधी और अंम्बेडकर मात्र दो नाम नही अपितु एक ही कालखण्ड की दो समानान्तर विचारधारायें थीं।

सन्दर्भ

१. अय्यर, राघवन- 'दि मॉरल्स एंड पोलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गांधी', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली,१६७३
२. ओमवेदत्, डा० मैल, 'दलित्स एंड दि डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन', सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १६६४,
३. कीर, धंनजय-महात्मा ज्योतिराव फुले, 'फादर ऑफ सोशल रिवोलूशन', पॉपुलर प्रकाशन बम्बई, १६६५, पृ. २०८
४. अय्यर, बी. आर. कृष्ण 'डा० आंबेडकर एंड दि दलित फयुचर', बी. आर पब्लिशिंग कॉपोरेशन,दिल्ली, १६६०,
५. डी. जी. तेन्दुलकर, 'महात्मा गांधी भाग- ३', नवजीवन प्रकाशन अहमदाबाद, पृ. २१०
६. धुर्ये श्री. एस, 'कास्ट एण्ड रेस इन इडिया', पॉपुलर प्रकाशन बम्बई १६५७, पृ. १८२-१८३
७. अम्बेडकर, 'एन्नीहिलेशन ऑफ कास्ट : विद ए रिप्लाई टू महात्मा गॉंधी', (एडरैस बीफोर द एनुअल कॉफ्रेंस ऑफ जात-पात तोड़क मंडल लाहौर, १६३५)
८. अम्बेडकर, 'इमैनीसिपेशन ऑफ द अनटचेबल्स', ठाकर एण्ड कं० लि०, बम्बई, १६४३
६. आंबेडकर, 'कांग्रेस एंड गांधी', ठाकुर एण्ड कं० लि०, बम्बई, १६४३, पृ. ६१
१०. डी जी तेन्दुलकर, 'महात्मा गांधी भाग-३', नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृ. २३६
११. कीर धंनजय- डा० आंबेडकर : लाइफ एंड मिशन, पॉपुलर प्रकाशन, मुंम्बई,१६६१,
१२. लिमये मधु- डा० आंबेडकर : चिंतन, पृ ४३,
१३. कुबेर, डब्ल्यू एन- डा० आंबेडकरः ए क्रिटिकल स्टडी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, १६७३
१४. जाटव डी०आर०, 'दी पालिटिकल फिलास्पी ऑफ वी०आर० अम्बेडकर', समता साहित्य प्रकाशन, जयपुर, १६६०
१५. जाटव डी०आर०, 'दी सोशल फिलास्पी ऑफ वी०आर० अम्बेडकर', समता साहित्य प्रकाशन, जयपुर, १६६०

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी-जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

राजनीतिक सहभागिता एवं महिला सशक्तीकरण

❑ डॉ० मनोज कुमार

जैविक दृष्टि से प्रकृति ने स्त्री-पुरूष को भिन्न संरचनाएं प्रदान की हैं, एक दूसरें की परिपूरकता के लिए विरसता भेदभाव आधिपत्य या शोषण के लिए नहीं। आदिम समाजों की जीवन शैली इस बात का प्रमाण है कि प्रागैतिहासिक काल में स्त्री-पुरूष समानता थी। संगठित समाज की रचना, उत्पादन के साधनों में बदलाव, परिवार, संस्था के अभ्युदय एवं स्वामित्व तथा सम्पत्ति के उदय के साथ सामाजिक संरचनाओं में आये परिवर्तनों ने स्त्री-पुरूष असमानता, भेदभाव एवं स्त्री की अधीनता तथा अशक्तीकरण की प्रक्रिया का सूत्रपात किया।[१] अधीनीकरण की इस प्रक्रिया में सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक-नैतिक मूल्य-मानकों, अर्थ-तंत्र, राजनीतिक संस्थाओं समेत अनेक कारकों का योगदान रहा।[२] वर्तमान में महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उचित उपस्थिति दर्ज कराने या प्राप्त करने हेतु संघर्षरत हैं जिसमें राजनीतिक सहभागिता आन्दोलन की प्रमुखता है।

संगठित समाज की रचना, उत्पादन के साधनों में बदलाव, परिवार, संस्था के अभ्युदय एवं स्वामित्व तथा सम्पत्ति के उदय के साथ सामाजिक संरचनाओं में आये परिवर्तनों ने स्त्री-पुरूष असमानता, भेदभाव एवं स्त्री की अधीनता तथा अशक्तीकरण की प्रक्रिया का सूत्रपात किया। अधीनीकरण की इस प्रक्रिया में सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक- नैतिक मूल्य-मानकों, अर्थ-तंत्र, राजनीतिक संस्थाओं समेत अनेक कारकों का योगदान रहा। वर्तमान में महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उचित उपस्थिति दर्ज कराने या प्राप्त करने हेतु संघर्षरत हैं जिसमें राजनीतिक सहभागिता आन्दोलन की प्रमुखता है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण के सन्दर्भ में उनकी राजनीतिक सहभागिता का विश्लेषण किया गया है।

राजनीति में महिलाओं की भागीदारी की बात करें तो हम पातें है कि यहां सदैव जमीन से जुड़ी महिलाओं का अभाव ही दिखा।[३] जिन महिलाओं का पर्दापण इस क्षेत्र में हुआ, उनमें से अधिकांश को अपनी प्रभावशाली पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण ही राजनीति में स्थान मिल सका। इसके अलावा विडम्बना यह है कि जो महिलाएं आज राजनीति में पहुंच रही हैं वे अपने पुरूष-संरक्षकों व पार्टी-हितों के प्रति ऐसी प्रतिबद्ध है कि अपने समाज के निर्माण में निर्णायक भूमिका नहीं निभा रही हैं।

अवधारणात्मक स्पष्टीकरणः-

राजनीतिक सहभागिताः- राजनीति के साथ आवेष्टन के अन्तर्गत व्यक्ति द्वारा जो राजनीतिक व्यवहार या क्रिया की जाती है, वह राजनीतिक सहभागिता होती है। यह व्यक्ति का सचेतन निर्णय होता है और यह क्रिया उद्देश्य पूर्ण होती है। **नॉमर्न एच० नोई** तथा सिडनी बर्वा के शब्दों में राजनीतिक सहभागिता आम लोगों की वे विधि सम्मत गतिविधियां हैं जिनका उद्देश्य राजनीतिक पदाधिकारियों के चयन और उनके द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करना होता है।[४] लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण के कारण राजनीतिक सहभागिता 'सत्ता' में भागीदारी से भी जुड़ गई है।

सशक्तीकरणः- सशक्तीकरण किसी व्यक्ति या समूह को अपने कार्य करने के लिए स्वतन्त्र क्षमता प्रदान करना है। एम.एस० नाथावत के अनुसार महिला सशक्तीकरण का अर्थ महिलाओं का शक्ति-सम्पन्न व साधन-सम्पन्न होना है।[५] अंद्रेबिताई के अनुसार सशक्तीकरण सामाजिक रूपान्तरण से सम्बन्धित है।

सामाजिक संरचना में महिलाओं की स्थिति को समझने के लिये उनकी सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण किया जाना आवश्यक होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित महिलाओं के सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के विश्लेषण में आयु, जाति, शिक्षा, ग्रामीण, नगरीय पृष्ठभूमि परिवार के प्रकार, धर्म, व्यवसाय, आय, वैवाहिक स्तर, राजनीतिक, अनुभव, को सम्मिलित किया गया है।

अध्ययन क्षेत्रः- प्रस्तुत अध्ययन गाजियाबाद जनपद की ग्रामीण एवं गाजियाबाद नगर की उन महिलाओं से सम्बन्धित है जो राजनीतिक क्षेत्र में अपनी भूमिका निभा रही हैं। यह अध्ययन क्षेत्र गाजियाबाद जनपद भारत की राजधानी दिल्ली से १८ किमी० पूर्व में राष्ट्रीय मार्ग पर स्थित है एवं उ०प्र० का एक औद्योगिक नगर भी है। गाजियाबाद जनपद में कुल ५००

❑ असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, रमाबाई अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, गजरौला (उ.प्र.)

गांव है जिनमें १५२ गांवों में महिलाएं प्रधान के रूप में कार्यरत हैं महानगर परिषद के ६० पार्षदों में से २१ महिला पार्षद थीं। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दलों के महिला मोर्चो की पदाधिकारी/सदस्यों के रूप में अनेक महिलाए राजनीति में सक्रिय हैं। प्रस्तुत अध्ययन में कुल १६० महिलाओं को सम्मिलित किया गया।

अनुसंधान अभिकल्पः- प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत वर्णानात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है।

तथ्य संकलन के स्त्रोतः-

१. प्राथमिक स्त्रोतः-

१.१ साक्षात्कार अनुसूचीः- इस शोधकार्य में साक्षात्कार अनुसूची द्वारा महिलाओं से औपचारिक रूप से संबंधित प्रश्न पूछे गये, जो साक्षात्कार अनुसूची में निर्धारित थे, क्योंकि शोधार्थी को महिलाओं से प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करनी थी इसलिये शोधार्थी द्वारा प्रश्नावली के स्थान पर साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

१.२ अवलोकन पद्धतिः- प्रस्तुत अध्ययन में प्रत्यक्ष अवलोकन पद्धति को प्रयोग में लाया गया।

१.३ समूह चर्चाः- अध्ययन के दौरान राजनीति में चयनित महिलाओं की स्थिति को जानने के लिये पंचायतों की बैठकों में हिस्सा लिया तथा महिलाओं से विभिन्न राजनीतिक सामाजिक मुद्दों पर सामूहिक चर्चा की।

२. द्वितीयक स्त्रोतः- तथ्य संकलन के द्वितीयक स्त्रोत से शोधार्थी द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की अब तक की स्थिति, सांख्यिकी प्रारूप आदि जानकारी प्राप्त की गई। वे द्वितीय स्त्रोत निम्न हैः-

१. समाचार पत्र
२. सरकारी प्रकाशन
३. विभिन्न पुस्तक एवं पत्र पत्रिकाएं
४. इन्टरनेट

तथ्यों का संकलन एवं विश्लेषणः- सर्वप्रथम शोध क्षेत्र से आंकड़ों को संकलन किया गया और उनको मास्टर चार्ट पर उतारा गया तथा उनका विश्लेषण किया गया। इसके पश्चात अवलोकन एवं समूह चर्चा द्वारा जो जानकारी प्राप्त हुई उन्हें वर्णनात्मक रूप में लिखा गया।

आंकड़ों का वर्गीकरण एवं विश्लेषणः- प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है, अतः आंकड़ों के एकत्रीकरण के लिये साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया जिसका निर्माण कुछ महिलाओं से अनौपचारिक साक्षात्कार करने के बाद किया गया। द्वितीयक आंकड़े प्रासंगिक एवं प्राप्त लेख पत्रों एवं संदर्भ-ग्रन्थों से एकत्र किये गये आंकड़ों की न्यूनता को अवलोकन के माध्यम से पूरा करने का प्रयास किया गया। आवश्यकतानुसार कुछ चुने हुये उत्तरदाताओं के वैयक्तिक अध्ययन भी किये गये। आंकड़ों के वर्गीकरण में केवल प्रतिशत वर्गीकरण का प्रयोग किया गया है।

महिलाओं की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि : प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित महिलाओं के सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के विश्लेषण में आयु जाति, शिक्षा, ग्रामीण, नगरीय पृष्ठभूमि माता-पिता एवं पति की शिक्षा के स्तर को सम्मिलित किया है। महिलाओं की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के विश्लेषण में उनकी संख्या के साथ-साथ उनकी प्रतिशत गणना भी दी गयी है।

आयुः- सभी प्रकार के व्यवसायों अथवा कार्यो में आयु एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सामाजिक श्रेणियों के अध यन में इसकी बहुत सार्थकता है

सारणी सं०-१

आयु के आधार पर सूचनादाताओं का विवरण

आयु समूह	संख्या	प्रतिशत
२०-२५	८	४.४४
२६-३०	१८	१०.०
३१-३५	६६	३६.६६
३६-४०	८	४.४४
४१-४५	४६	२५.५५
४६-५०	२२	१२.२२
५० से अधिक	१२	६.६६
योग	१८०	१००

मतदाओं के आयु विश्लेषण में पाया गया है कि ४.४४ प्रतिशत महिलाएं २०-२५ आयु वर्ग में, १० प्रतिशत महिलाएं २६-३० आयु वर्ग में, ३६.६६ प्रतिशत महिलाएं ३१-३५ आयु वर्ग में, ४.४४ प्रतिशत महिलाएं ३६-४० आयु वर्ग, २५.५५ प्रतिशत महिलाएं ४१-४५ आयु वर्ग तथा १२.२२ प्रतिशत महिलाएं ४६-५० आयु वर्ग से सम्बन्धित थी एवं ६.६६ प्रतिशत महिलाएं ऐसी थी जिनकी आयु ५० वर्ष या उससे अधिक थी।

शिक्षाः- भारत में महिलाओं की साक्षरता दर बहुत कम रही है इसमें ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता दर और भी कम है। अतः कोई भी यह समझ सकता है कि ग्रामीण भारत में जमीन से जुड़ी राजनीति में जो महिलाएं भाग लेती हैं वे कमोवेश अनपढ़ होती हैं।

सारणी सं०-२

शिक्षा के आधार पर सूचनादाताओं का विवरण

शैक्षिक स्तर	संख्या	प्रतिशत
अशिक्षित	४६	२५.५५
प्राइमरी	१०	५.५५
मिडिल	४०	२२.२२
हाई स्कूल	२६	१४.४४
इण्टर	२४	१३.३३
स्नातक	२०	११.११
परास्नातक	१४	७.७७
योग	१८०	१००.००

सूचनादाताओं के शिक्षा सम्बन्धी विश्लेषण में पाया गया कि २५.५५ महिलाएं अशिक्षित थी जबकि ५.५५ प्रतिशत महिलाएं प्राइमरी तक शिक्षित थीं। २२.२२ प्रतिशत महिलाएं मिडिल तक शिक्षित थीं। हाई स्कूल, इन्टर, स्नातक एवं परास्नातक तक शिक्षित महिलाओं की प्रतिशतता क्रमशः १४.४४, १३.३३, ११.११, तथा ७.७७ थी।

धर्मः भारतीय राजनीति पर विचार करते हुए धर्म की अवहेलना नहीं की जा सकती विशेषताः वर्तमान भारत की राजनीति में धर्म एक प्रभावी भूमिका निभा रहा है।

सारिणी संख्या ३

सूचनादाताओं का धार्मिक वितरण

धर्म	संख्या	प्रतिशत
हिन्दू	१४०	७७.७७
मुस्लिम	४०	२२.२२
योग	१८०	१००

अध्ययन में शामिल महिलाओं के धर्म सम्बन्धी विश्लेषण में पाया गया कि ७७.७७ प्रतिशत महिलाएं हिन्दू धर्म से सम्बन्धित थी जबकि २२.२२ प्रतिशत महिलाएं मुस्लिम थी।

जातिः- भारतीय ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या में विभिन्न वर्ग पाये जाते है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं का अध्ययन सामान्य वर्ग, पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आधार पर भी किया गया है।

सारिणी संख्या ४

सूचनादाताओं का जातीय वितरण

वर्ग	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	४४	२४.४४
पिछड़ा वर्ग	८२	४५.५५
अनुसूचित जाति	५४	३०.००
अनुसूचित जनजाति	-	-
योग	१८०	१००

जाति विश्लेषण में पाया गया कि २४.४४ प्रतिशत महिलाएं सामान्य वर्ग से, ४५.५५ प्रतिशत महिलाएं पिछड़ा वर्ग से एवं ३० प्रतिशत महिलाए अनुसूचित जाति वर्ग से थीं। अध्ययन में शामिल कोई भी महिला अनुसूचति जनजाति वर्ग से सम्बन्धित नहीं थी।

व्यवसायः- सामाजिक गतिशीलता के अवसर व्यक्ति की आर्थिक स्थिति से भी प्रभावित होते हैं। राजनीतिक सहभागिता में महिलाओं की व्यवसायिक स्थिति किस तरह उनकी सहायता/अवरोध पैदा करती है यह जानने के लिये महिलाओं की व्यवसायिक स्थिति को अध्ययन में शामिल किया गया है।

सारिणी संख्या ५

सूचनादाताओं का व्यवसायिक वितरण

व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
गृहणी	११०	६१.११
कृषि	५६	३१.११
नौकरी	४	२.२२
निजी व्यवसाय	१०	५.५५
योग	१८०	१००

व्यवसायी सम्बन्धी विश्लेषण में पाया गया कि ६१.११ प्रतिशत महिलाएं गृहणी थी, कृषि कार्यो में संलग्न महिलाओं की संख्या ३१.११ प्रतिशत थी। केवल २.२२ प्रतिशत महिलाएं नौकरी करती थी। ५.५५ प्रतिशत महिलाओं का अपना निजी व्यवसाय था।

परिवारः- व्यक्ति के परिवार की संरचना व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित है एवं संयुक्त परिवार, जो ग्रामीण सामाजिक संरचना की मुख्य इकाई है। महिलाओं को राजनीतिक सहभागिता के द्वारा सामाजिक गतिशीलता के कितने अवसर उपलब्ध हैं यह देखने के लिये प्रस्तुत अध्ययन में परिवार के प्रकार को भी शामिल किया गया है।

सारिणी संख्या ६

सूचनादाताओं का पारिवारिक वितरण

परिवार का प्रकार	संख्या	प्रतिशत
एकाकी	१२०	६६.६६
संयुक्त	६०	३३.३३
योग	१८०	१००

परिवार की संख्या सम्बन्धी विश्लेषण में यह पाया गया कि ६६.६६ प्रतिशत महिलाएं एकाकी परिवार से थीं जबकि ३३.३३ प्रतिशत महिलाएं संयुक्त परिवार से सम्बन्धित थीं।

वैवाहिक स्तरः व्यक्ति की वैवाहिक स्थिति उसके व्यक्तित्व

एवं क्रियाकलापों को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। वैवाहिक स्थिति के संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन में देखा गया कि अध्यन के समस्त सूचनादाता विवाहित थे।

पति का राजनीतिक अनुभवः- जो व्यक्ति खुद राजनीतिक में हैं वे महिलओं को राजनीति में सहभागिता हेतु किस तरह प्रोत्साहित कर रहे हैं यह जानने के लिए अध्ययन में शामिल महिलाओं के पतियों के राजनीति अनुभव को भी अध्ययन में शामिल किया गया है।

सारणी सं०- ७

सूचनादाताओं के पति का राजनीतिक अनुभव

पति का राजनीतिक अनुभव	संख्या	प्रतिशत
राजनीति में थे	४	२.२२
राजनीति में है	३६	२०.००
नहीं है	१४०	७७.७७
योग	१८०	१००

सूचनादाताओं के पति के राजनीतिक अनुभव के विश्लेषण में पाया गया कि २.२२ प्रतिशत महिलाएं ऐसी थी जिनके पति राजनीति में थे। २० प्रतिशत महिलाएं ऐसी थी जिनके पति वर्तमान में राजनीति में सक्रिय है एवं ७७.७७ प्रतिशत महिलाओं के पतियों के पास कोई राजनीतिक अनुभव नहीं था।

स्वयं सूचनादाता का राजनीतिक अनुभवः- जो महिलाएं राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय हैं वह अपनी भूमिका का किस तरह सम्पादन कर रही हैं उनके मार्ग में क्या कही कोई कठिनाई/ अवरोध आ रहे हैं यह जानने के लिए प्रस्तुत अध्ययन में स्वयं सूचनादाताओं के राजनीतिक अनुभव को भी शामिल किया गया है।

सारिणी संख्या ८

स्वयं सूचनादाता के राजनीतिक अनुभव

राजनीतिक अनुभव	संख्या	प्रतिशत
पहली बार निर्वाचित	१७२	९५.५५
वर्षो का अनुभव (५ वर्ष)	८	४.४५
योग	१८०	१००

स्वयं सूचनादाता के राजनीतिक अनुभव के विश्लेषण में पाया गया कि ९५.५५ प्रतिशत महिलाए ऐसी थी जो पहल बार निर्वाचित हुई थी जबकि ४.४५ प्रतिशत महिलाओं के पास राजनीतिक अनुभव था वे पूर्व में ग्राम प्रधान अथवा अन्य किसी राजनीतिक पद पर आसीन रह चुकी थीं।

सुझाव

१. सभी राज्य विधान सभाओं और संसद सभी के वैधानिक निकायों में महिलाओं को अधिक प्रगतिनिधित्व दिया जाये।
२. पंचायत निकायो को प्रभावी अधिकार दिये जाने चाहिये, स्थानीय निकायों को अधिक कार्य तथा शक्तियां सौंपी जानी चाहियें।
३. अधिकारी तंत्र महिलाओं की मांगो के प्रति अधिक सुग्राही होने चाहिये और उनके कार्यो को अधिक पारदर्शी बनाया जाना चाहिये।
४. महिलाओं के लिए साक्षरता तथा प्रौढ शिक्षा हेतु प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।
५. सरकार को प्रशिक्षण शिविर लगाने चाहिये। विशेषकर महिला पंचायत अध्यक्षों तथा सदस्यों के लिये जिससे वे यह जान सकें कि उनकी शक्तियां क्या हैं और वे उन्हें किस प्रकार इस्तेमाल कर सकती हैं और विभिन्न प्रकार की रूकावटों को दूर कर सकती है।
६. प्रशिक्षण नियमित अंतरालों पर आयोजित किये जाने चाहिये, जिससे पंचायतों के बारे में समय-समय पर अतिरिक्त सूचना दी जा सके।[७]
७. प्रशिक्षण कार्यक्रम गांवों के निकट आयोजित किया जाना चाहिये, जिससे कि महिलाएं, बच्चों घरेलू, कामकाज तथा व्यवसायिक कार्यो की चिन्ता किये बिना उसमें भाग ले सकें।

सन्दर्भ

१. Pannikar k.m "Hindu Society at the cross roads" Asia Publishing House, Bombay 1961 P-167.
२. आशा कौशिक 'नारी सशक्तीकरण-विमर्श एवं यथार्थ', पोइन्टर प्रकाशन, जयपुर, २००४ पृ. २५८
३. जयप्रकाश यादव 'शिक्षा और भारत में नारी का सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य', राष्ट्रीय सेमिनार, २-३ नवम्बर २००४ पृ. ८६.
४. रेखा यादव 'महिला सशक्तीकरण में शिक्षा-आर्थिक व सामाजिक दृष्टिकोण', राष्ट्रीय सेमिनार, २-३ नवम्बर, २००४ पृ. ६७.
५. सरला गोपालन 'महिलाएं और राजनीतिक सशक्तीकरण' इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेंस, नई दिल्ली १९९७ पृ. ५१-५४.
६. प्रतापमल देवपुरा 'महिला सशक्तीकरण' कुरूक्षेत्र मार्च २००५ पृ. २२.
७. सुधा पिल्लै ''पचायती राज द्वारा अधिकार सम्पन्नता, योजना, अगस्त, २००५, पृ. ३५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 17 अंक 1, जनवरी-जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955
ISSN 0974-0074

डेयरी उद्योग ग्रामीण महिलाओं के स्वरोजगार का एक सशक्त साधन : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ. गजवीर सिंह
❖ डॉ. श्वेता सिंह

गावों का देश होने के नाते भारत के आर्थिक विकास के लिए ग्रामीण विकास आवश्यक है। इस संदर्भ में ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के आर्थिक कल्याण और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए उचित स्तर पर अनेकानेक प्रयास किये गये हैं। रोजगार उत्पन्न करने तथा व्यक्ति के जीवन निर्वाह के लिए डेयरी उद्योग (दुग्ध उत्पादन) को स्वरोजगार के एक सशक्त साधन के रूप में देखा जाता है।स्वतन्त्रता के बाद भारत में सहकारी दुग्ध उत्पादन ग्रामीण विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में शामिल है। ग्रामीण जीवन के सामाजिक आर्थिक विकास पर इन दुग्ध सहकारी संघों का गहरा प्रभाव रहा है। आज स्थिति यह है कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश बन गया है। जहाँ लगभग हर वर्ष १०.२ करोड़ मीट्रिक टन दुग्ध का उत्पादन होता है।[1] भारत में डेयरी उद्योग को बढ़ावा देने के लिए सन् १९६५ में देश में सर्वप्रथम राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड एवं सन् १९७० में भारतीय डेयरी निगम के अन्तर्गत 'श्वेत क्रान्ति' का शुभारम्भ हुआ जिसमें वर्गीश कुरियन द्वारा किये गये कार्यो को कभी भी भुलाया नही जा सकता। जहाँ १९५०-५१ में दुग्ध उत्पादन १७ मिलियन टन था वहीं २००६-०७ में दुग्ध उत्पादन १००.९ मिलियन टन हो गया। सन् २०२० तक २०० मिलियन टन दुग्ध का लक्ष्य रखा गया है। वर्तमान में भारत की कुल राष्ट्रीय आय का लगभग १४ प्रतिशत आज डेयरी उद्योग से प्राप्त हो रहा है।[2]

> ग्रामीण महिलाऐं किसी भी राष्ट्र का विशिष्ट मानव संसाधन हैं। ग्रामीण महिलाओं को उनकी विषम स्थिति से उभारते हुए उन्हे आर्थिक विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के उद्देश्य से महिला डेयरी विकास परियोजना की स्थापना की गयी। महिला डेयरी योजना के अंतर्गत देश में महिला दुग्ध सहकारी समितियों का गठन किया गया है ताकि ग्रामीण महिलाओं की स्थिति सामाजिक आर्थिक दृष्टिकोण से उन्नत व मजबूत की जा सके। प्रस्तुत अध्ययन डेयरी उद्योग के अंतर्गत उसके संचालन में महिलाओं की भूमिका का आकलन करने का एक प्रयास है।

देश की खुशहाली व समृद्धि का रास्ता गॉव की गलियों से होकर गुजरता है जिसमें ग्रामीण महिलाओं के सहयोग के बिना ग्रामीण विकास एवं डेयरी उद्योग (दुग्ध उत्पादन) जैसे कार्यक्रमों की सफलता की कल्पना करना असम्भव है। स्वामी विवेकान्द ने कहा था:- समाज रूपी गरूड़ के स्त्री और पुरूष दो पंख होते हैं। यदि एक पंख सबल और दूसरा निर्वल हो तो उसमें गगन को छूने की शक्ति कैसे निर्मित होगी।[3] विनिता वशिष्ठ के अनुसार, वैश्विक धरातल पर महिला को समाज, संस्कृति एवं सभ्यता का मेरूदंड माना गया है। विश्व की सभी संस्कृतियों में महिलाओं के प्रति विशेष उदार और उन्नत विचार रखे गये हैं। महिला को शक्ति का महान भंडार और परिवार की नींव माना गया है। चूंकि परिवार समुदाय की नींव है और समुदाय राष्ट्र की, अतएव महिला ही समाज व राष्ट्र की नौका की वास्तविक कर्णधार है।[4]

ग्रामीण महिलाऐं किसी भी राष्ट्र का विशिष्ट मानव संसाधन हैं।[5] ग्रामीण महिलाओं को उनकी विषम स्थिति से उभारते हुए उनकी आय अर्जन, संसाधनों की वृद्धि, संपति अर्जन, आत्मविश्वास, स्वावलंबन, शिक्षा जागरूकता, महिला एवं शिशु, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान करते हुए उन्हे आर्थिक विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के उद्देश्य से महिला डेयरी विकास परियोजना की स्थापना की गयी।[6] महिला डेयरी योजना के अंतर्गत देश में महिला दुग्ध सहकारी समितियों का गठन किया गया है ताकि ग्रामीण महिलाओं की स्थिति सामाजिक आर्थिक दृष्टिकोण से उन्नत व मजबूत की जा सके। यह कार्यक्रम केन्द्र सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित किया जा रहा है। सहकारिता के सिद्धांत पर आधारित यह डेयरी परियोजना ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाते हुए वरदान सिद्ध हो रही है।[7] महिला सशक्तीकरण कार्यक्रमों के अन्तर्गत भारत सरकार के महिला व वाल विकास तथा राष्टीय महिला कोष द्वारा प्रदेश

❑ प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, एल.बी.एस. मैमोरियल कालेज, गोहावर, बिजनौर (उ.प्र.)
❖ प्रवक्ता, गृहविज्ञान विभाग, एल.बी.एस. मैमोरियल कालेज, गोहावर, बिजनौर (उ.प्र.)

की विभिन्न दुग्ध सहकारी समितियो द्वारा महिला सदस्यो को स्वावलंवी बनाने हेतू अच्छी नस्ल के दुधारु पशु खरीदने के लिए ऋण एवं अनुदान उपलब्ध कराये जाते हैं। वर्ष २०००-२००१ में महिला आर्थिक विकास निगम द्वारा प्रदेश की २५ हजार ग्रामीण महिलाओं के लिए ४५ रुपये प्रति माह का अनुदान उपलब्ध कराया गया । इस अनुदान राशि से दुग्ध समिति की महिला सदस्यों को डेयरी व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न प्रशिक्षण हेतु शिविर आयोजित किये गये हैं।[८] इस सन्दर्भ में वी० कुरियन ने लिखा है कि डेयरी सहकारी संघ आन्दोलन ने देश के गांवों में रहने वाली महिलाओं की जिन्दगी ही बदल दी है क्योंकि इस आन्दोलन से उन्हे एक सीमा तक आर्थिक स्वतन्त्रता मिली है। दरअसल आज के भारत में महिलाओं के लिए ये डेयरी सहकारी संघ रोजगार का सबसे बड़ा साधन सिद्ध हुए है। देश भर के ११० लाख परिवारों के पुरूष खेतों में मेहनत करते हैं, जबकि उनकी स्त्रियाँ घर पर अपनी गाय-भैयों की देखभाल करती है। परिवार की कुल आमदनी में महिलाएँ डेयरी से होने वाली आमदनी के रूप में अपना योगदान करती हैं। हमारी आबादी के इस कमजोर वर्ग को रोजगार उपलब्ध कराने का कोई दूसरा कारगर साधन नही हो सकता। इसीलिए देश में डेयरी सहकारी संघ मानव संसाधन प्रबन्ध के असरदार साधन के रूप में उभरे हैं।[९] वर्तमान में यदि हम भारत की व्यवसायिक संरचना पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होता है कि सर्वाधिक ग्रामीण महिला लगभग ६० प्रतिशत श्रमशक्ति, कृषि एवं दुग्ध उत्पादन या पशुपालन में लगी हुई हैं जबकि सिर्फ ६ प्रतिशत महिलाऐं सेवा में लगी हुई हैं।[१०] दिवाकर सिंह राजपूत ने अपने अध्ययन में ६० प्रतिशत ग्रामीण महिलाओं को डेयरी उद्योग एवं पशुपालन में संलग्न पाया है।[११] कृषि एवं पशुपालन में महिलाओं की भूमिका को स्वीकार करते हुए स्वामीनाथन ने राज्य सभा में महिला कृषक हकदारों विधेयक, २०११ पेश करने का प्रस्ताव किया है। विधेयक में महिला कृषकों के अनुकूलन वातावरण तैयार करने के लिए पानी,कर्ज और संसाधनों की सुलभता सुनिश्चित करने के साथ-साथ उनको पट्टा(कृषि योग्य भूमि) देने की बात कही है।[१२] ग्रामीण महिलाऐं दुग्ध उत्पादन के माध्यम से सामाजिक व आर्थिक बदलाव ला रही हैं। इस तथ्य को देखते हुए कि ग्रामीण महिलाओं के लिए डेयरी उद्योग (दुग्ध उत्पादन) स्वरोजगार का एक सशक्त साधन सिद्ध हो रहा है, इस उद्योग में उनकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक आनुभाविक अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई। प्रस्तुत शोध इसी दिशा में एक प्रयास है ।

अध्ययन क्षेत्र – प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश राज्य के बिजनौर जनपद पर आधारित है सोद्देश्य निदर्शन विधि को अपनाते हुए जनपद के विकास खण्ड ऑकू नहटौर का चयन किया गया । तत्पश्चात् इस विकास खण्ड के तीन गॉवों, नन्हेड़ा, धनुपूरा, एवं वालापुर को क्रमश; बड़ा गॉव,(हिन्दु एवं मुस्लिम आबादी) मध्यम गॉव (हिन्दु एवं मुस्लिम आबादी) तथा छोटा गॉव (केवल हिन्दू आबादी) के रुप मे निदर्शन मे सम्मिलित किया गया। जिनमें गॉव धनुपुरा में दो दुग्ध डेयरी तथा ग्राम नन्हेडा और वालापुर में एक एक दुग्ध डेयरी वर्तमान में संचालित है। प्रत्येक गॉव से दैवनिदर्शन विधि के आधार पर ५० प्रतिशत इकाइयों (परिवार की महिला मुखिया जिनकी आयु २५ वर्ष से ४५ वर्ष के मध्य है)। कुल ४१० अध्ययन इकाइयों का चयन कर साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया। तत्पश्चात् तथ्यो के वर्गीकरण व सारणीयन के साथ उनका सांख्यकीय विश्लेषण कर उनसे निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

शोध प्रारूप– शोध प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्यों पर आधरित है। द्वितीयक स्त्रोतों हेतु पुस्तकालय, शासकीय प्रतिवेदन,संचालित योजनाओं, सम्बन्धित शोध इंटरनेट, समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं आदि का प्रयोग किया गया। प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची को आधार बनाया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य :-

१. ग्रामीण एवं राष्ट्रीय विकास में डेयरी उद्योग (दुग्ध उत्पादन) के योगदान का अध्ययन करना।
२. डेयरी उद्योग (दुग्ध उत्पादन) में ग्रामीण महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका का अध्ययन करना ।
३. ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक आर्थिक विकास पर दुग्ध उत्पादन के प्रभावों का अध्ययन करना।
४. ग्रामीण महिलाओं के स्वरोजगार अपनाने में आने वाली बाधाओं का अध्ययन करना।
५. महिला डेयरी विकास योजना के माध्यम से संचालित कार्यक्रमों/योजनाओं की जानकारी प्राप्त करना ।

उपकल्पनाऐं-

१. डेयरी उद्योग (दुग्ध उत्पादन) ग्रामीण विकास एवं राष्टीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।
२. डेयरी उद्योग की सफलता एवं असफलता ग्रामीण महिलाओं पर मुख्यतः निर्भर है।
३. ग्रामीण महिलाओं के लिए डेयरी उद्योग (दुग्ध उत्पादन) स्वरोजगार का एक सशक्त साधन है।
४. डेयरी उद्योग (दुग्ध उत्पादन) जैसे कार्यक्रमों से जुड़कर ग्रामीण महिलाऐं अपनी और परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार कर रही है।

५. ग्रामीण क्षेत्र के अधिकांश निम्न आय वाले परिवार अपनी मूलभूत आवश्कताओं की पूर्ति के लिए दुग्ध उत्पादन पर मुख्यतः निर्भर है।

उपलब्धियाँ : निदर्शन में चयनित सूचनादाताओं में सबसे पहले ऐसे सूचनादाताओं और परिवारों का चयन करने के उददेश्य से तथा उपकल्पना ग्रामीण एवं राष्ट्रीय विकास में दुग्ध उत्पादन के योगदान को जानने के लिए सबसे पहले सूचनादाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि क्या आपके यहाँ दुग्ध बिक्री का कार्य होता है

तालिका संख्या - ०१

क्या परिवार में दुग्ध विक्री का कार्य होता है

स्थिति	नन्हेड़ा	धनुपुरा	वालापुर	योग
हाँ	१३७	६४	३७	२६८
	६२.२७	६७.१४	७४.००	६५.३६
नही	८३	४६	१३	१४२
	३७.७२	३२.८५	२६.००	३४.६३
योग	२२०	१४०	३०	४१०
	९९.९९	९९.९९	१००.००	९९.९९

तालिका संख्या ०१ का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि ६५.३६ प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवार में दुग्ध बिक्री का कार्य किया जाता है और ३४.६३ प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवार में दुग्ध बिक्री का कार्य नही होता है। तीनो गाँवों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि ग्राम वालापुर में सबसे अधिक ७४ प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवारों में और ग्राम नन्हेड़ा में सबसे कम सूचनादाताओं ६२.२७ प्रतिशित के परिवारो में दुग्ध बिक्री का कार्य होता है। जबकि ग्राम धनुपुरा में ६७.१४ प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवारो में दुग्ध बिक्री का कार्य होता है।

इसके पश्चात् अध्ययन को और विश्वसनीय एवं सीधे सम्बन्धित विषय से जोड़ते हुए केवल उन सूचनादाताओं २६८ पर अध्ययन को केन्द्रित किया गया जिनके परिवारों में दुग्ध बिक्री का कार्य होता है। अध्ययन की दूसरी उपकल्पना की डेयरी उद्योग की सफलता एवं असफलता ग्रामीण महिलाओं पर मुख्यतः निर्भर है से सम्बन्धित प्रश्न यह पूछा गया कि परिवार में दुधारू पशुओं की देखभाल कौन करता है।

तालिका सं० - २

परिवार में दुधारू पशुओं की देखभाल कौन करता है

	नन्हेडा	धनुपुरा	वालापुर	योग
स्वयं	८४	५४	२०	१५८
	६१.३१	५७.४४	५४.०५	५८.६५
पति	१८	१२	०६	३६
	१३.१३	१२.७६	१६.२१	१३.४३
दोनो मिलकर	२६	२०	७	५३
	१८.९७	२१.२७	१८.९१	१९.७७
नौकर/अन्य	०९	०८	४	२१
	६.५६	८.५१	१०.८१	७.८३
योग	१३७	९४	३७	२६८
	९९.९७	९९.९८	९९.९८	९९.९८

तालिका सं० ०२ से स्पष्ट होता है कि ५८.६५ प्रतिशत सूचनादाता स्वयं अपने दुधारू पशुओं की देखभाल करती हैं जबकि १९.७७ प्रतिशत सूचनादाता अपने पति के साथ मिलकर दुधारू पशुओं की देखभाल करती हैं, केवल १३.४३ प्रतिशत सूचनादाताओं के पति और मात्र ७.८३ प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवारो में नौकर या अन्य व्यक्ति दुधारू पशुओं की देखभाल करते हैं। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि दुग्ध उत्पादन की सफलता और असफलता विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं पर ही निर्भर है क्योकि ७८.७२ प्रतिशत ग्रामीण महिलायें स्वयं या पति के साथ मिलकर दुधारू पशुओं की देखभाल करती हैं।

अध्ययन से सम्बन्धित उपकल्पना दुग्ध उत्पादन ग्रामीण महिलाओं के स्वरोजगार का एक सशक्त साधन है से सम्बन्धित प्रश्न सूचनादाताओं से पूछा गया कि दुग्ध बिक्री से आपको कितनी मासिक आय प्राप्त होती है।

तालिका संख्या -०३

दुग्ध बिक्री से प्राप्त मासिक आय

	नन्हेड़ा	धनुपुरा	वालापुर	योग
१०००-२०००	४३	२४	७	७४
	३१.३८	२५.५३	१८.९१	२७.६१
२०००-४०००	४६	३२	१०	८८
	३३.५७	३४.०४	२७.०२	३२.८३
४०००-८०००	३६	२२	१२	७५
	२६.२७	२८.७२	३२.४३	२७.९८
८००० से	१२	११	८	३१
अधिक	८.७५	११.७०	२१.६२	११.५६
योग	१३७	९४	३७	२६८
	९९.९७	९९.९९	९९.९८	९९.९८

दुग्ध बिक्री से प्राप्त मासिक आय से सम्बन्धित तालिका संख्या ०३ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि २७.६१ प्रतिशत सूचनादाताओं को १००० से २००० के बीच आय प्राप्त होती है सबसे अधिक ३२.८३ प्रतिशत को २००० से ४००० रू० आय

प्राप्त होती है केवल ११.५८ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जिन्हें ८००० से अधिक आय प्राप्त होती है। तालिका का गहनता से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि केवल १००० से ४००० के बीच आय प्राप्त करने वालो में सबसे अधिक सूचनादाता गॉव नन्हेड़ा के ६४.६५ प्रतिशत हैं जबकि ४००० से अधिक आय प्राप्त करने वालो में गॉव वालापुर के ५४.०५ प्रतिशत सूचनादाता हैं।

दुग्ध उत्पादन से ग्रामीण महिलाओं की स्वयं अपनी एवं उनके परिवार की सामाजिक -आर्थिक स्थिति किस रुप में प्रभावित हो रही है का अध्ययन करने के लिए सूचनादाताओं से एक प्रश्न यह पूछा गया कि दुग्ध उत्पादन से प्राप्त मासिक आय को प्राथमिकता के आधार पर किस मद पर परिवार में खर्च करती हैं।

तालिका संख्या -४

दुग्धबिक्रीसे प्राप्त मासिक आय का प्राथमिकता के आधार पर खर्च

खर्च की मद	नन्हेड़ा	धनुपुरा	बालापुर	योग
भोजन	५४	२६	६	६२
	३६.४१	३०.८५	२४.३२	३४.३२
शिक्षा/चिकित्सा	३२	२६	७	६५
	२३.३५	२७.६५	१८.६१	२४.२५
वस्त्र	३०	२१	८	५६
	२१.८६	२२.३४	२१.६२	२२.०१
मनोंरजन के साधन	१२	१०	७	२६
	८.७५	१०.६३	१८.६१	१०.८२
बचत	६	८	६	२३
	६.५६	८.५१	१६.२१	८.५८
योग	१३७	६४	३७	२६८
	६६.६६	६६.६८	६६.६७	६६.६८

तालिका संख्या ०४ का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक ३४.३२ प्रतिशत सूचनादाता दुग्ध बिक्री से प्राप्त आय को प्राथमिकता के आधार पर भोजन पर, उसके बाद २४.२५ प्रतिशत सूचनादाता शिक्षा और चिकित्सा पर, २२.०१ प्रतिशत सूचनादाता वस्त्रों पर, १०.८२ प्रतिशत सूचनादाता मनोंरजन के साधनों जैसे टेलीविजन, डिश, संगीत यन्त्र, वाशिंग मशीन, रसोई गैस, सौन्दर्य प्रसाधन आदि पर भी खर्च करती हैं जवकि केवल ८.५८ प्रतिशत सूचनादाता और उनके परिवार दुग्ध उत्पादन से प्राप्त आय को बचत करने की स्थिति में होते है। अतः सामाजिक -आर्थिक विकास से सम्बन्धित अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दुग्ध उत्पादन से प्राप्त आय को ग्रामीण महिलाऐ और उनके परिवार अपनी जरुरी आवश्कयताओ पर खर्च करने के बाद वचत करने की स्थिति में भी होते हैं।

ग्रामीण महिलाओं द्वारा दुग्ध उत्पादन एक स्वरोजगार के साधन के रुप मे अपनाने पर उनके द्वारा क्या समस्या प्राथमिक रुप से अनुभव की जाती है से सम्बन्धित प्रश्न पूछा गया ताकि समस्याओं को चिन्हित कर उनके निराकरण के उपाय सुझाए जा सके। डेयरी उद्योग को स्वरोजगार (दुग्ध उत्पादन) के रुप में अपनाने पर प्राथमिक समस्या क्या महसूस करती है

तालिका सं०-०५

दुग्ध उत्पादन अपनाने पर अनुभूत प्राथमिक समस्या

समस्याऐ	नन्हेड़ा	धनुपूरा	बालापुर	योग
वित्तीय समस्या	४५	२६	१०	८१
	३२.८४	२७.६५	२७.०२	३०.२२
पशु चिकित्सा	४२	२६	१२	८३
की समस्या	३०.६५	३०.८५	३२.४३	३०.६७
अशिक्षा एवं	२७	१८	६	५१
जानकारी का	१६.७०	१६.१४	१६.२१	१६.०२
अभाव				
पशुचारा एवं	१४	१३	५	३२
स्थान समस्या	१०.२१	१३.८२	१३.५१	११.६४
पति/ परिवार	०६	८	४	२१
	६.५६	८.५१	१०.८१	७.८३
योग	१३७	६४	३७	२६८
	६६.६६	६६.६७	६६.६८	६६.६७

तालिका सं० ५ का अध्ययन करने से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सबसे अधिक उत्तरदाता ३०.६७ प्रतिशत दुधांरू पशुओं की चिकित्सा की समस्या को प्राथमिकता देती हैं, दूसरे स्थान पर ३०.२२ प्रतिशत सूचनादाता पशुओं की खरीदारी के लिए वित्तीय समस्या को महसूस करती हैं, १६.०२ प्रतिशत सूचनादाताओं के लिए उनकी अशिक्षा एवं जानकारी का अभाव एक प्राथमिक समस्या है। ११.६४ प्रतिशत उत्तरदाताओं के लिए पशुओं के लिए चारा और उनके रहने के लिए स्थान एक महत्वपूर्ण समस्या है। जवकि केवल ७.८३ प्रतिशत सूचनादाता पति या परिवार को अपने स्वरोजगार दुग्ध बिक्री में प्राथमिक समस्या मानती हैं। सारणी का गहन अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक सूचनादाता (३२.८४ प्रतिशत) नन्हेड़ा से वित्तीय समस्या को प्राथमिक स्थान देती है सबसे अधिक सूचनादाता (३२.४३ प्रतिशत) बालापुर से पशु की चिकित्सा को प्रमुख स्थान देती है और सबसे अधिक सूचनादाता १०.८१ प्रतिशत (बालापुर से) पति एवं परिवार को प्रमुख स्थान देती हैं।

निष्कर्ष और सुझाव : पशुओं की देखभाल उनके लिए चारे की व्यवस्था करना, उनकी साफ सफाई करना, दुध निकालना, उनका गोबर उठाना, उनसे उपला (ईधन) और देशी खाद बनाना, आदि कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांशतः ग्रामीण महिलाओं द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं। डेयरी उद्योग जैसे स्वरोजगार के कार्यक्रम ग्रामीण महिलाओं द्वारा संचालित किये जा रहे हैं। जिससे ग्रामीण शिक्षित एवं अशिक्षित महिलाओं के लिए दुग्ध उत्पादन स्वरोजगार का एक सशक्त साधन सिद्ध हो रहा है जिससे उनकी आय में वृद्धि हो रही है और ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक - आर्थिक विकास में वृद्धि हो रही है। संक्षेप में अध्ययन से संम्बन्धित निष्कर्ष एवं सुझाव निम्नलिखित है।

१ एक अशिक्षित महिला भी घर की चहारदिवारी के अन्दर ही पशुपालन (दुग्ध उत्पादन) के माध्यम से एक सम्मानित आय अर्जन कर लेती हैं।

२ बड़े गॉव(नन्हेड़ा) की अपेक्षा छोटे गॉव (वालापुर) की ग्रामीण महिलाऐें दुग्ध उत्पादन (स्वरोजगार) से अधिक लाभ प्राप्त कर रही हैं।

३ मुस्लिम धर्म की ग्रामीण महिलाओं की अपेक्षा हिन्दू धर्म की ग्रामीण महिलाऐ दुग्ध उत्पादन से अधिक लाभ प्राप्त कर रही हैं।

४ अध्ययन से यह भी निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कुछ ग्रामीण महिलाओं के पति या परिवार दुग्ध बिक्री का कार्य करना परिवार की प्रतिष्ठा के विरूद्ध मानते हैं।

५ निम्न आय वर्गीय परिवारो की वार्षिक आय में दुग्ध बिक्री करने वाली अधिकांश ग्रामीण महिलाओं की वार्षिक आय, मजदूरी करने वाले पुरुष (अपने पति) की तुलना में अधिक होती हैं।

६ ग्रामीण क्षेत्रों में पशु चिकित्सा की समस्या का निदान करके डेयरी उद्योग में ग्रामीण महिलाओं की सहभागिता को और अधिक बढ़ाया जा सकता हैं।

७ ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा एवं सम्बन्धित कार्यक्रम की जानकारी एवं प्रशिक्षण देकर और अधिक डेयरी उद्योग के प्रति जागरुक किया जा सकता है।

सन्दर्भ

१. कुमार सत्येन्द्र, 'दुग्ध उत्पादन सहकारी समितियाँ और महिलाएँ' कुरूक्षेत्र, नबम्वर- २००८, पृ०- ३

२. सिंह सन्तोष कुमार, 'उत्तराखण्ड में डेयरी उद्योग' कुरूक्षेत्र, नबम्वर- २००८, पृ०- ६

३. तिवारी कणिका, 'महिला सशक्तीकरण का आत्मावलोकन' कुरूक्षेत्र, अगस्त- २०१३, पृ०- ३

४. वशिष्ठ विनिता, 'नारी तुम अबला तक' समाज कल्याण विभाग, उ०प्र०,१६६८, पृ०- २२१,

५. चौधरी कृष्ण चन्द्र, 'ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण' कुरूक्षेत्र, अगस्त-२०१३, पृ०-०८,

६. सिंह सन्तोष कुमार, 'पूर्वोक्त', पृ०-७

७. मोदी अनिता, 'ग्रामीण महिला सशक्तीकरणः सरकारी प्रयास एवं चुनौतियाँ',कुरूक्षेत्र, अगस्त- २०१३, पृ०- २६

८. नानवानी रमेश, एन०सी०डी०सी० वुलेटिन, वाल्युम- ३५, फरवरी-२००२, पृ०-३३

६. कुरियन वी०,'दुग्ध उत्पादन ग्रामीण विकास का एक साधन', योजना, अगस्त -२००४, पृ०- १३

१०. चौधरी कृष्ण चन्द्र, 'पूर्वोक्त' , पृ०-६

११. राजपूत दिवाकर सिंह एवं कुमारी कुंदन, 'महिला सशक्तीकरण में स्व सहायता समूहों की भूमिका-एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' राधाकमल मुखर्जीः चिन्तन परम्परा, जनवरी-जून २०११, पृ०-६८

१२. पटेल अमृत, 'कृषि क्षेत्र में महिलाऐें ' योजना, जून - २०१२, पृ०-१२

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

यथार्थ के धरातल पर महिला सशक्तीकरण

❑ नीरज राठौर
❖ पुष्पेन्द्र कुमार गंगवार

बीसवीं शताब्दी परिवर्तन एवं विकास की शताब्दी रही है इसी शताब्दी में पूरे विश्व में महिलाओं की स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है जिससे भारत भी अछूता नहीं रहा है। भारत में जो महिला कभी घर की चाहरदीवारी और चूल्हा चौके तक ही सीमित थी उसने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति प्रदर्शित की है परन्तु एक अहम प्रश्न अभी भी हमारे सामने है कि आज की महिला यदि चाहे तो अपनी मर्जी से अंतरिक्ष और चाँद तक जा सकती है, परन्तु क्या वह पृथ्वी पर इतनी उपलब्धियां हासिल करने के बाद भी अपनी मर्जी से जिदंगी को अपने ढंग से जी सकती है? महिला सशक्तीकरण की यर्थाथता को परखने के लिए हमें महिलाओं के जीवन से जुड़े कुछ पहलुओं पर बिन्दुवार ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है।। प्रस्तुत शोध पत्र इसी दिशा में किया गया एक प्रयास है।

बीसवीं शताब्दी परिवर्तन एवं विकास की शताब्दी रही है इसी शताब्दी में पूरे विश्व में महिलाओं की स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है जिससे भारत भी अछूता नहीं रहा है। भारत में जो महिला कभी घर की चाहरदीवारी और चूल्हा चौके तक ही सीमित थी वह आज देश की राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यों की मुख्यमंत्री, लोकसभा व विधानसभा अध्यक्ष, राज्यपाल जैसे पदों को सुशोभित कर रही हैं जो महिलाओं के राजनैतिक सशक्तीकरण का द्योतक है। यह क्रम राजनीति से इतर क्षेत्रों में और भी प्रबलता से दृष्टिगोचर होता है। आज महिलाएं न्यायाधीश, वैज्ञानिक, शिक्षक, चिकित्सक, संपादक, पत्रकार, बैंकिंग व कारपोरेट जगत में शीर्ष प्रबन्धक, कुशल उद्योगपति, संगीतकार, फिल्म निर्माता, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की खिलाड़ी के रूप में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रही हैं। आज महिलाओं नें समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति प्रदर्शित की है और प्रत्येक क्षेत्र में उसका प्रभाव परिलक्षित होने लगा है।[१]

शिक्षा के क्षेत्र में बीसवीं सदी में महिलाओं की स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है। हमारे देश में वर्ष १९०१ में जहां केवल ०.६ प्रतिशत महिलांए साक्षर थीं वहीं वर्ष २००१ की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता दर ५४.१६ प्रतिशत थी। शैक्षणिक सत्र २००१-०२ के दौरान देश में उच्च्व शिक्षा के सभी पाठ्यक्रमों में कुल नामांकन ८८.२१ लाख में से छात्राओं की संख्या ३५.१४ लाख थी जो कुल नामांकन का ३९.८४ प्रतिशत है।[२] आज संगठित क्षेत्र में कुल कर्मचारियों का १८ प्रतिशत महिलाएं है तथा विभिन्न नागरिक संस्थानों में १० लाख से अधिक महिलाएं कार्यरत हैं।[३]

इसमें कोई संदेह नही है कि इक्कीसवीं सदी का प्रारम्भ ही महिलाओं के पर्दे से बाहर निकल कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराने से हुआ है, जीवन के बहुत से क्षेत्र जो महिलाओं के लिए वर्जित थे वहां भी महिलाओं ने कदम रखा है कई महानगरों में महिलाओं ने टैक्सी ड्राईवर के रूप में नई पहल की है तो चीन जैसे कुछ देशों में महिलाओं ने निजी अंगरक्षक बन कर एक नई शुरूआत की है। परन्तु एक अहम प्रश्न अभी भी हमारे सामने है कि आज की महिला यदि चाहे तो अपनी मर्जी से अंतरिक्ष और चाँद तक जा सकती है, परन्तु क्या वह पृथ्वी पर इतनी उपलब्धियां हासिल करने के बाद भी अपनी मर्जी से जिदंगी को अपने ढंग से जी सकती है? क्या सत्ता के सर्वोच्च्व शिखरों राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री पद तक महिलाओं के पहुँचने से देश के ग्रामीण अंचलों, झुग्गी झोपड़ियों, मलिन बस्तियों में रहने वाली महिलाओं के जीवन में कोई आधारभूत परिवर्तन हुआ है? क्या टी.वी. स्क्रीन और सिल्वर स्क्रीन पर मुस्कुराते चमचमाते तारिकाओं के चेहरे ईंट भट्टों पर मजदूरी करती महिलाओं के चेहरे पर एक छोटी सी मुस्कान भी ला पाये हैं?महिला सशक्तीकरण की यर्थाथता को परखने के लिए हमें महिलाओं के जीवन से जुड़े कुछ पहलुओं पर बिन्दुवार ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है ।

१. लैंगिक असमानता व महिलाओं पर इसका

❑ एसोशिएट प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग, बरेली कालेज, बरेली (उ.प्र.)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग, बरेली कालेज, बरेली (उ.प्र.)

दुष्प्रभाव– पिछले कुछ दशकों में सरकारी व गैर सरकारी प्रयासों के बाद भी भारत की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, हमारे देश में प्रति वर्ष १६२.६ लाख बच्चे जनसंख्या का हिस्सा बन जाते हैं, प्रति वर्ष हम आस्ट्रेलिया जैसे देश की कुल जनसंख्या के बराबर बढ़ जाते हैं परन्तु इससे भी अधिक चिंता का विषय यह है कि बढ़ती जनसंख्या के साथ महिलाओं की आबादी का अनुपात पुरूषों की तुलना में निरंतर घट रहा है। वर्ष १६८६-२००६ के अंतराल में लगभग एक करोड़ कन्या भ्रूणों की कोख में ही हत्या कर दी गयी। वर्ष १६६० में १००० पुरूषों पर महिलाओं की संख्या ६७२ थी परन्तु २००१ में यह घट कर ६२७ रह गई।[४] राज्यवार स्थिति देखें तो गुजरात व हरियाणा जैसे विकसित राज्यों में भी लिंगानुपात तेजी से घटा है जिसका अर्थ है कि लिंगानुपात घटने का कारण मात्र गरीबी और अशिक्षा नही है बल्कि वंश वेल, उत्तराधिकारी, कुलदीपक के रूप में पुत्र प्राप्ति की लालसा भारतीय जनमानस में गहरे समायी है। बढ़ते लैंगिक असन्तुलन ने भी महिलाओं के लिए नये खतरे पैदा किये हैं, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश में शादी के लिए गरीब परिवारों की लड़कियां पश्चिम बंगाल, नेपाल, बांगलादेश से खरीद कर लायी जा रही हैं। इन लड़कियों का अपने परिवार से नाता टूट जाता है और नये घर में भी इनकी स्थिति एक खरीदी हुई मशीन जैसी रहती है जिसका काम केवल नौकर की तरह घरेलू कार्य करना तथा वारिस पैदा करना रह जाता है। शोषण या हिंसा का शिकार होने पर इनकी कोई सुनवाई नही होती क्योंकि इनके विवाह की कोई कानूनी मान्यता ही नही होती है।

२. घरेलू कार्य को श्रम की मान्यता न मिलना – महिलाओं को यथोचित सम्मान ना मिलने का सबसे प्रमुख कारण उनके द्वारा किये जा रहे श्रम को मान्यता ना मिलना है, पुरूष को घर का कमाऊ सदस्य होने के नाते परिवार का मुखिया माना जाता है जबकि महिलाएं पुरूषों की अपेक्षा अधिक कार्य करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं घर पर रहकर ही दिन भर में लगभग ७२ प्रकार के कार्य करतीं हैं जिनमें खाना बनाना, बर्तन धोना, कपड़े धोना, घर की सफाई करना, पशुओं का चारा लाना व काटना, दूध दुहना, पेयजल व ईंधन लेने दूर तक जाना इसके अतिरिक्त खेतों में काम करना शामिल है।[५] कृषि क्षेत्र में भी ६० से ७० प्रतिशत श्रम निवेश महिलाओं का ही है कार्य के इस बोझ के कारण एक ओर महिलाओं में शारीरिक थकावट, नींद में कमी व मानसिक तनाव उत्पन्न होते हैं वहीं ये सभी कार्य करने के बाद भी महिलाओं पर कार्य अकुशल होने की छाप लगने से उनके आत्मविश्वास में लगातार कमी आती जाती है और वे स्वयं को पुरूषों से कमतर मानना प्रारम्भ कर देतीं हैं। इसके अतिरिक्त चूल्हे चौके में अधिकतर समय गुजारने के कारण उन्हें अपने पर ध्यान देने का समय ही नही मिल पाता जिससे उनके स्वांस, जोड़ों का दर्द आदि समस्याओं से ग्रसित होने की संभावना पुरूषों की अपेक्षा अधिक रहती है। अतः महिला सशक्तीकरण हेतु सबसे पहले उनके द्वारा किये जा रहे कार्यों को उचित सम्मान मिलना आवश्यक है।

३. महिलाओं के प्रति दहेज संबंधी व घरेलू हिंसा– महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा और अपराधों में सबसे अमानवीय दहेज हत्या है। गृह मंत्रालय के अधीन अपराध पंजीकरण शाखा की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष १६८७ से वर्ष १६६१ तक दहेज हत्याओं में १७० प्रतिशत की वृद्धि हुई है। लोक सभा में एक प्रश्न के लिखित उत्तर में २१ दिसम्बर, १६६६ को तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री मुरली मनोहर जोशी ने बताया कि वर्ष १६६६ में ५५१३,वर्ष १६६७ में ६००६ तथा वर्ष १६६८ में ६६१७ मामले दहेज मृत्यु के कारण पुलिस थानों में पंजीकृत हुए यानी प्रतिदिन लगभग १७ महिलाएं दहेज के कारण मौत के घाट उतार दी गई।[६] यदि थानों में दर्ज ना हुए मामलों को भी जोड़ दिया जाये तो गैर सरकारी सूत्रों के अनुसार प्रतिवर्ष लगभग २५००० महिलाओं की दहेज के कारण हत्या कर दी जाती है।

भारत में गरीब या अमीर, ग्रामीण या शहरी, शिक्षित या अशिक्षित, उच्च्व पदासीन या श्रमिक, सभी वर्गों की तथा प्रत्येक आयु वर्ग की महिला घर के अन्दर घरेलू हिंसा तथा घर के बाहर छेड़छाड़, बलात्कार की शिकार होती है। भारतीय दंड संहिता तथा महिलाओं के लिए विशेष कानूनों के अंतर्गत महिलाओं के साथ अपराधों के वर्ष २००४ में १५४३३३,वर्ष २००५ में १५५५५३ तथा वर्ष २००६ में १६४७६५ मामले थानों में पंजीकृत हुए हैं।[७] यहाँ राष्ट्रीय आयोग की भूतपूर्व अध यक्षा श्रीमती जयंती पटनायक का यह कथन महत्वपूर्ण है कि ''औरतों के खिलाफ अपराध की घटनाओं में मुश्किल से १० प्रतिशत मामले ही सामने आते हैं'' इसका कारण एक तो घर परिवार के सम्मान व परिवार बचाने के नाम पर महिलाओं का चुप रहना है तो दूसरा कारण थानों व अदालतों में महिलाओं को सहयोग व सहानुभूति के स्थान पर अटपटे सवालों का सामना करना पड़ता है साथ ही न्याय मिलने में होने वाली देरी भी महिलाओं को अन्याय के विरूद्ध सामने आने से हतोत्साहित करती है। महिलाओं को उत्पीड़न व हिंसा से बचाने के लिए थानों का माहौल बदलना और फास्ट ट्रैक कोर्ट की व्यवस्था

करना बहुत आवश्यक है।

४. कार्यक्षेत्र में असमानता- संगठित व असंगठित क्षेत्र दोनों में महिला श्रमिकों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। २००१ की जनगणना के अनुसार देश की कुल महिला जनसंख्या का एक चौथाई भाग श्रमिकों के रूप में कार्यरत है इनमें से ८७ प्रतिशत महिलाएं कृषि श्रमिकों का कार्य करती हैं।[८] भारत में धान की रोपाई का लगभग ६५ प्रतिशत तथा पीटकर अनाज निकालने, मिर्च या अन्य दलहनी फसलों की फलियाँ तोड़ने का लगभग ३३ प्रतिशत कार्य महिलाएं करती हैं। शहरी क्षेत्रों में भी घरेलू व लघु उद्योगों तथा भवन निमार्ण में ८० प्रतिशत महिला श्रमिक कार्यरत हैं।[९] परन्तु इन सभी क्षेत्रों में महिला श्रमिकों को पुरूषों के मुकाबले ३० से ४० प्रतिशत कम वेतन मिलता है तथा भारत सरकार के श्रम मंत्रालय द्वारा निर्देशित सुविधाएं भी उन्हें कार्य स्थल पर प्राप्त नहीं होतीं जिनमें स्वच्छ पेयजल व शौचालय जैसी मामूली सुविधाएं भी शामिल हैं। श्रमिक के रूप में सर्वाधिक महिलाएं कृषि खेत्र में कार्यरत हैं परन्तु विडंबना यह है कि उनके श्रम को इस क्षेत्र में या तो श्रम की मान्यता ही नहीं मिलती है या फिर उन्हें उनके श्रम के अनुपात में बहुत कम मजदूरी दी जाती है। कृषि कार्यों में पुरूषों के समान ही सहभागिता के बाद भी उनकी गणना कृषि श्रम शक्ति के अंतर्गत नहीं की जाती, कृषि के अंतर्गत उनके द्वारा सम्पन्न किये गए अनेक कार्यों जैसे फसलों की बुवाई, रोपाई, सिंचाई, कटाई, गहाई आदि को उत्पादक कार्यों के अंतर्गत सम्मिलित नहीं किया जाता। आदिकाल से अब तक कृषि में महिलाओं द्वारा महत्वपूर्ण, कहीं-कहीं पुरूष से भी अधिक योगदान देने के बाद भी कृषि को पुरूष प्रधान व्यवसाय कहा जाता है।[१०] पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किए गए एक अनुभविक अध्ययन में पाया गया कि महिला कृषि श्रमिक प्रतिदिन औसतन ३.६ घण्टे घरेलू कार्य तथा १०.१५ घण्टे घर से बाहर कृषि संबंधी कार्य करती हैं जबकि उनके घरों में पुरूषों के प्रतिदिन कार्य के औसत घण्टे मात्र ८.६ हैं।[११] रोचक तथ्य यह भी है कि महिलाएं स्वयं के खेतों में कृषि कार्य में पुरूषों का हाथ बटाती हैं जबकि घरेलू कार्यों में उन्हें पुरूषों से मिलने वाली सहायता नगण्य ही है। अनीता स्टेफन[१२] के अनुसार ''महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार तथा सशक्तीकरण का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। उनकी शक्तिहीनता का मुख्य कारण सामाजिक, सांस्कृतिक एवं संरचनात्मक है न कि उनकी कमजोर आर्थिक स्थिति। इस असमानता का अन्त केवल महिला श्रमिकों पर ही नहीं होता बल्कि सरकारी नौकरियों, सेना, पुलिस, शिक्षा क्षेत्र, न्यायपालिका तक में महिलाओं को असमानता व भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

अंत में संक्षिप्त रूप से हमारा स्पष्ट अभिमत है कि महिला सशक्तिकरण हेतु स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक सामाजिक पुर्नजागरण होना चाहिए। कानूनी स्तर पर थानों में पर्याप्त संख्या में महिला पुलिसकर्मी व अधिकारी तथा न्यायालयों में महिला न्यायाधीशों की नियुक्ति होनी चाहिये जिससे महिलाएं निर्भीक होकर अपने साथ होने वाले किसी भी अन्याय के विरूद्ध लड़ सकें इसके साथ ही पुरूषों को भी अपनी परम्परागत सोच में परिवर्तन लाना होगा तभी भारत की आधी आबादी अपनी पूरी सामर्थ्य से राष्ट्रीय विकास में योगदान कर सकेगीं और भारत एक विकासशील देश से विकसित देश बन पाएगा।

संदर्भ

१. वाषिक रिपोर्ट २०००-०१, महिला एवं बाल विकास विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली पृ. २२

२. यू० जी० सी० वार्षिक रिपोर्ट २००१-०२, नई दिल्ली पृ. ६

३. बीना सुखीजा, ''समाज में महिलाएं-जारी है हक की लड़ाई'' दैनिक जागरण, ३ सितम्बर,२००७

४. ''वन करोड़ फीट्सेस अबार्टेड इन इंडिया इन ट्वेंटी इयर्स'' द ट्रिब्यून,११ जनवरी २००६.

५. रामजीलाल ''२१वीं शताब्दी एवं भारतीय नारी की स्थिति'' सुविज्ञा (महा०पत्रिका राजकीय महिला महा०, फतेहाबाद) २००८-०६ पृ. २६

६. ''प्रश्नोत्तरः लोकसभा ''राष्ट्रीय सहारा, २२ दिसम्बर १६६६ पृ. १०

७. ''ओवर ६००० डावरी डेथ्स रिपोर्टेड एवरी ईयर बिटवीन २००४-२००६'', सडें टाइम्स, १२ मार्च २००८

८. अंजली सिन्हा, ''महिलाओं के श्रम का भी मूल्य आंकिये'' अमर उजाला, नई दिल्ली,२६ जुलाई २००६

६. वही

१०. रानी अंजू, 'कृषि में महिला श्रमिक योगदान और स्थिति', राधा कमल मुकर्जी चिन्तन परम्परा, वर्ष १ अंक १, १६६६, पृ.५६

११. रस्तोगी कुमारी मनीष, 'कृषि में महिला श्रमिक एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, १६६४, पृ. उद्धृत अंजू रानी पूर्वोक्त, पृ. १०१

१२. अनीता स्टेफन, 'कम्यूनिकेशन, टैक्टनोलॉजी एण्ड वूमेन इम्पारवमेन्ट', रजत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २००६, उद्धृत ओम प्रकाश भारतीय, 'महिला सशक्तीकरण के दौर में महिलाओं की प्रस्थिति का समाजवैज्ञानिक अध्ययन', राधा कमल मुकर्जी चिन्तन परम्परा, वर्ष १२ अंक १, जनवरी-जून २०१०, पृ. १०१

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

प्रारंभिक भारत में व्यापारिक गतिविधि : मौर्यकाल के संदर्भ में

❑ सन्तोष कुमार

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से ही भारत का विदेशी देशों के साथ जहाजों द्वारा व्यापार चला करता था। मेगस्थनीज और कौटिल्य के विवरणों से ज्ञात होता है कि मौर्यकाल में देश में सुरक्षित व सुव्यवस्थित स्थल मार्गो का जाल बिछा था। राजाओं ने सड़क निर्माण तथा व्यवसाय के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किये थे। मौर्यकालीन भारत में आर्थिक स्थिति सशक्त व उन्नत दशा में थी। कृषि और उद्योगों के समान व्यापार भी उन्नत और विकसित अवस्था में था। प्रस्तुत आलेख मौर्यकालीन भारत में व्याापारिक गतिविधियों का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मौर्यकालीन भारत में आर्थिक स्थिति सशक्त व उन्नत दशा में थी। कृषि और उद्योगों के समान व्यापार भी उन्नत और विकसित अवस्था में था। व्यापार जल एवं थल मार्गो से होते थे। व्यापार की उन्नति में अति आवश्यक यातायात के साधनों की समुचित व्यवस्था थी। राज्य द्वारा समुद्री विभाग भी स्थापित किया गया था तथा समुद्री बेड़े भी तैयार करवाये गये थे। जल मार्ग कई प्रकार के थे। आन्तरिक व्यापार नदियों तथा विदेशी व्यापार समुद्र मार्ग से होता था। माल चढ़ाने-उतारने के लिए बन्दरगाहों की समुचित व्यवस्था थी।[१] अर्थशास्त्र में सागर, पोत तथा अनेक प्रकार की नौकाओं का नाम मिलता है। मौर्य शासकों ने नदियों तथा नहरों पर पुल बना दिये थे। कौटिल्य के अनुसार नदियों के आर-पार सामान लाने, ले जाने के लिए राजकीय नौकाओं का भी प्रबन्ध था। नावें चम्पा से वाराणसी होती हुई गंगा के मार्ग से सहजाति तक जाती थीं तथा यमुना मार्ग से कौशाम्बी तक पहुँचती थीं। दक्षिण पश्चिम मार्ग श्रावस्ती से प्रतिष्ठान तक जाता था। उत्तर से दक्षिण-पूर्व में श्रावस्ती से राजगृह तथा पश्चिमोत्तर से एक मार्ग पंजाब से पश्चिम एशिया के मार्गो से मिल जाता था। समुद्री मार्ग से जल पोत बेबीलोन तक पहुँचते थे। व्यापार जल मार्ग से फारस की खाड़ी में होकर तथा स्थल मार्ग से बैक्ट्रिया होकर होता था। मिस्र के साथ व्यापार लाल सागर से होता था। भरुकच्छ (भड़ौंच) का प्रसिद्ध बन्दरगाह पश्चिम तथा दक्षिण पूर्व के साथ व्यापार का मुख्य केन्द्र था।[२] दक्षिण में यातायात कठिन था। बड़े से बड़ी कठिनाई के साथ पैठन और तगर से भडौंच के बन्दरगाह तक पहुँचाया जाता था।[३]

महासमुद्रों में आने जाने वाले जहाजों को 'संयाती : नाव' और प्रवहण कहते थें।[४] संयाती : नाव महासमुद्रों में चलने वाले बड़े जहाज थे। संयाती नाव क्षेत्र (बन्दरगाह) पर इन जहाजों को टैक्स देना होता था। इन जहाजों से सम्बन्धित कौटिल्य की यह भी व्यवस्था थी कि व्यापार के लिए शत्रु देश में आने जाने वाले जहाज हों अथवा पत्तन चरित्र अर्थात् समुद्र तट पर स्थित बन्दरगाहों के सम्बन्ध में निर्धारित व्यवहार का उपाघात करने वाले जहाज हों तो दोनों ही दोषों के लिए उन्हें नष्ट कर दिया जाए। सम्भवतः व्यापारी जहाजों को प्रवहण कहा जाता था। कौटिल्य के विवरण से यह ज्ञात होता है कि प्रवहण द्वारा यात्रा करने की इच्छा से एक अमात्य अन्य अमात्यों को अपने साथ चलने के लिए प्रेरित करें। महानदियों में प्रयुक्त होने वाली बड़ी नौकॉए महानावः कही जाती थीं।

विभिन्न स्रोतों से प्रमाणित हो जाता है कि भारत में प्राचीन काल से ही जल मार्ग से भी व्यापार किया जाता था और मौर्य काल में भी यही व्यवस्था प्रचलित थी। स्ट्रैबो ने लिखा है कि नौ सेनापति, यात्रियों और व्यापारियों को जहाज किराये पर दिया करते थे।[५] कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से ही भारत का विदेशी देशों के साथ जहाजों द्वारा व्यापार चला करता था।[६]

मेगस्थनीज और कौटिल्य के विवरण से ज्ञात होता है कि मौर्यकाल में देश में सुरक्षित व सुव्यवस्थित स्थल मार्गो का जाल बिछा था। राजाओं ने सड़क निर्माण तथा व्यवसाय के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किये थे। मेगस्थनीज ने इन अधिकारियों को अग्रोनोमाई के नाम से सम्बोधित किया है।[७] अशोक ने सड़को के किनारे वृक्ष, विश्रामस्थल तथा कुँए आदि बनवाकर थल यात्राओं को सुगम कर दिया था। सड़कों की मरम्मत का पूरा ध्यान रखा जाता था। अर्थशास्त्र के अनुसार दक्षिणापथ में भी वह मार्ग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, जो खानों के मध्य से गुजरता है तथा सिन्ध एवं पाटलिपुत्र को जोड़ने वाला मार्ग राजमार्ग ३२ फिट चौड़ा कहा गया है।[८] सड़कों में

❑ शोध अध्येता, इतिहास विभाग, तिलका माँझी, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

एक सड़क पाटलिपुत्र से तक्षशिला तक जाती थी, जो तामलुक (गंगा के मुहाने) तक बढ़ा दी गई। दक्षिणापथ की यात्रा अधिकांश समुद्र तट तथा नदियों द्वारा होती थी। एक मार्ग सोन नदी की घाटी से होकर सहसराम तक तथा वहाँ से तोसली तक जाता था। एक अन्य मार्ग पाटलिपुत्र से रुपनाथ होता हुआ गोदावरी नदी तक जाता था। एक मार्ग प्रतिष्ठान से सोपारा होता हुआ आगे दक्षिण को जाता था।[९] ग्रीक यात्रियों ने लिखा है कि स्थल मार्ग पाटलिपुत्र से पश्चिम की ओर सिंध नदी या उससे भी परे तक जाता था। एक अद्यन्य मार्ग जो पाटलिपुत्र से पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी तक चला जाता था। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र तक इस मार्ग से यात्रा की थी। वह इससे बहुत प्रभावित हुआ था।प्लिनी ने इसी मार्ग पर मील का पत्थर लगे होने की बात की तथा बताया कि यह मार्ग सिंध नदी के तट से शुरु होकर उस स्थल से सतलज को पार करता था, जहाँ सतलज और व्यास नदी मिलती हैं। वहाँ से यह मार्ग पूर्व-उत्तर की ओर मुड़ जाता था और हस्तिनापुर के समीप से गंगा को पार करता था। उसके बाद यह कन्नौज और प्रयाग होता हुआ पाटलिपुत्र जा पहुँचता था।[१०] ग्रीक विवरणों ने इस सड़क की लम्बाई १०,००० स्टेडिया (११५६ मील के लगभग) बताई है।[११]

मौर्य युग से पूर्व रचित जातकों में भी विभिन्न स्थल मार्गो का विवरण दिया गया है। एक राजमार्ग राजगृह (मगध की पुरानी राजधानी) से गंगा के उत्तर में वैशाली होता हुआ कुशीनारा और फिर हिमालय की तराई से गुजर कर श्रावस्ती तक उल्लिखित है तथा एक अन्य स्थल मार्ग श्रावस्ती से दक्षिण-पश्चिम की ओर जाता था और कौशाम्बी तथा विदिशा होता हुआ गोदावरी के तट पर स्थित प्रतिष्ठान तक पहुँचता था। बंगाल की खाड़ी पर स्थित ताम्रलिप्ति, पश्चिम समुद्र तट पर स्थित भरुकच्छ और शूर्पारक (सोपारा) बन्दरगाहों का स्थल मार्गो द्वारा श्रावस्ती और पाटलिपुत्र के साथ सम्बन्ध विद्यमान था। एक अन्य मार्ग राजस्थान के मरुस्थल से होता हुआ सिंध जाता था।[१२]

एस०के० दास ने लिखा है, कि भारत का माल पश्चिम देशों में भेजे जाने के लिए तीन स्थल मार्ग थे। एक मार्ग काबुल नदी के साथ-साथ पश्चिम की ओर जाता था और हिन्दुकुश पर्वतमाला के परे आक्सस नदी तक जा पहुँचता था। वहाँ से कैस्पियन सागर जाकर फिर काला सागर पहुँचता था। दूसरा स्थल मार्ग कन्धार से हेरात होता हुआ फारस (ईरान) जाता था और ईरान से होता हुआ एशिया माइनर तक चला जाता था। तीसरा मार्ग मकरान के रास्ते से पश्चिम देशों को जाता था।[१३] निःसन्देह मौर्य युग में भी इन मार्गो का व्यापार के लिए प्रयोग किया जाता था। मौर्य काल में देशी तथा विदेशी व्यापारियों के यातायात व सुरक्षा की व्यवस्था राज्य की ओर से की गई थी। यातायात सम्बन्धी सुविधाओं के परिणामस्वरुप इस समय व्यापार उन्नत अवस्था में था।

व्यापार की मुख्य विषय-वस्तु के रुप में जिन पण्यों का भारत में उत्पादन होता था और उसके सम्बन्ध में कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है। सरकारी, गैर सरकारी और मिश्रित तीनों क्षेत्रों में कर्मान्तों द्वारा उत्पादन किया जाता था। वस्त्र, धातु, नमक, रत्न, मदिरा, चर्म, बर्तन, काष्ठ, हथियार आदि का उत्पादन किया जाता था। कपास, ऊन, तूल (रेशेदार पौधा), सन, रेशम (क्षौम), रेशे, वल्कल आदि का सूत कातकर कर्मान्तों के पास भेजा जाता था एवं वहाँ उससे अनेक प्रकार के कपड़ों का उत्पादन होता था।[१४] भारत का वस्त्र उद्योग बहुत ही उन्नत अवस्था में था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार बंग देश का श्वेत कपड़ा चिकना और महीन होता था। पुण्ड्र देश का काला और मणि के समान चिकना, सुवर्णकुड्य देश का कपड़ा सूर्य के रंग का और मणि के समान चिकना होता था। काशी और पुण्ड्र देशों में रेशमी कपड़े बनाये जाते थे। सूती कपड़े मधुरा (मथुरा), अपरान्त (कोंकण), कलिंग (उड़ीसा), काशी, बंग (बंगाल),वत्स (राजधानी कौशाम्बी) और माहिष्मति के श्रेष्ठ होते थे।[१५] बंगाल मलमल के लिए, नेपाल ऊनी वस्त्रों के लिए, काशी जरीदार एवं मूल्यवान वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था।

धातुओं से अस्त्र, शस्त्र, उपकरण, आभूषण तथा सिक्के आदि बनाये जाते थे। लोहे से फावड़ा,कुदाल, कुल्हाड़ी आदि उपकरण लुहारों द्वारा बनाये जाते थे। मौर्य युग में बहुमूल्य धातुओं के आभूषणों और अलंकरणों का उत्पादन भी विकसित अवस्था में था।[१६] यक्षों की मूर्तियाँ, मणियों के बनाये गये आभूषण, मालाएँ, सुगन्धित पदार्थ तथा भिषक आदि का व्यवसाय भी मौर्य काल में उन्नत अवस्था में था।[१७] लोहाध्यक्ष ताम्र, सीमा, त्रपु वैक्रन्तक आदि धातुओं के कर्मान्तों का संचालक होता था। समुद्रों से प्राप्त शंख, वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल आदि निकलवाने, साफ करवाने फिर विविध वस्तुएँ बनवाने आदि की व्यवस्था विभाग के संचालक खन्याध्यक्ष को करना होती थी। नमक के निर्माण एवं विक्रय लिए लवणाध्यक्ष नियुक्त किये गये थे।[१८] नमक बनाने के लिए राज्य से लाइसेंस लेना होता था। नमक निर्माता लवणाध्यक्ष के पास नमक का संग्रह करते तथा राज्य की ओर से नमक का क्रय-विक्रय ही वैध माना जाता था।[१९]

शराब बनवाने व बिक्री करवाने का काम 'सुराध्यक्ष' के अधीन होता था। सुरा निर्माण में दक्ष व्यक्तियों को राजकीय सेवा में रखा जाता था। शराब की बिक्री का प्रबन्ध नगरों, ग्रामों और छावनियों में सर्वत्र किया जाता था।[२०] सुरा सेवन पर अनेक नियंत्रण तथा क्रय-विक्रय के नियत स्थान थे। सरकारी नियमों का उल्लंघन करने पर ६०० पण आर्थिक दण्ड था। शराब नियत स्थान के बाहर ले जाना निषिद्ध था।[२१] शराब व्यवसाय पर राज्य नियन्त्रण होने पर भी कुछ अवसरों पर अन्य लोग भी स्वतंत्रता के साथ शराब बना सकते थे।विशेष कृत्यों के मौकों पर गृहस्थ (कुटुम्बी) लोग श्वेत सुरा स्वयं बना सकते थे और औषधि के प्रयोजन से अरिष्टों को भी बना सकते थे। इसी प्रकार त्यौहार, समाजिक समारोह तथा यात्राओं के अवसर पर चार दिन के लिए सभी को शराब बनाने की स्वतन्त्रता थी।[२२]

भारत में चर्म उद्याोग भी उन्नत अवस्था में था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कई प्रकार के चमड़ों का उल्लेख किया है। मेगस्थनीज ने यहाँ के श्वेत जूतों का वर्णन किया है।[२३] धातु के बर्तनों के साथ-साथ, बेंत, छाल और मिट्टी के बर्तन भी बनाये जाते थे।[२४] ये उद्योग भी उन्नत अवस्था में थे। जंगलों की रक्षा और वृद्धि विभाग का आमात्य 'कुप्याध्यक्ष' था और लकड़ी के भाण्ड बनाने वाले कर्मान्तों का संचालन करता था।[२५] कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में पका हुआ मांस बेचने वाले, चावल व कच्ची रसोई बनाने वाले पुए व पूरी बनाने वाले, पकवान बेचने वाले लोगों का उल्लेख किया है।[२६] निःसन्देह ये सब व्यवसायी भोजन पका कर उसका कारोबार करते थे।

मौर्यकाल में आन्तरिक तथा बाह्य व्यापार जल तथा थल दोनों ही मार्गो से होता था। व्यापार पर राज्य का पूर्णरुप से नियन्त्रण था, जिसके लिए एक विभाग की स्थापना की गयी थी। यह विभाग व्यापारियों और दुकानदारों की देखभाल करता था। विभाग का अध्यक्ष- संस्थाध्यक्ष, पण्याध्यक्ष की अधीनता में कार्य करता था। संस्थाध्यक्ष व्यापारियों के बाट-तराजू व नाप-तौल का निरीक्षण करता था, पुराने माल को नया बताकर तो नहीं बेचा जा रहा है या मिलावट तो नहीं है, जहाँ का बना सामान है वहीं का बताकर बेचा जा रहा है या नहीं और व्यापारी बिके माल का बदल तो नहीं कर रहा है, अर्थात् धांधलेबाजी तो नहीं कर रहा है इन सब का ध्यान रखना और अपनाधियों को दण्ड देना संस्थाध्यक्ष के ही कार्य थे।[२७] यदि कोई व्यापारी माल खरीदते समय ऐसे तराजू का प्रयोग करता था जिससे ज्यादा माल तुले और बेचते समय जिससे कम माल तुले तो उसे दण्ड दिया जाता था।[२८] किन्तु आंशिक अन्तर होने पर उसकी उपेक्षा कर दी जाती थी।

कौटिल्य के अनुसार यदि व्यापारी एक साथ मिलकर पण्य (व्यापारिक वस्तु) को रोक ले और इस ढंग से उसकी कीमत बढ़ाने का यत्न करें,या आपस में मिलकर किसी पण्य की कीमत को गिराने का प्रयत्न करे, तो भी उन्हें एक हजार पण जुर्माने का दण्ड दिया जाए। इसी प्रकार कौटिल्य ने लिखा कि व्यापारी काष्ठ, लौह,मणि,रज्जु, चर्म, मिट्टी के बर्तन या सूती, ऊनी या रेशों के बने वस्त्र आदि घटिया होने पर बढ़िया बता कर बेचे तो बेची गई वस्तु का आठ गुना दण्ड के रुप में देना होता था।[२९] धन्य (अन्न), स्नेह (घी, तेल आदि), क्षार (चीनी,गुड़ आदि), गन्ध (सुगन्धित पदार्थ) और भैषज्य (औषधि) में मिलावट करने पर १२ पण जुर्माना किया जाता था।[३०]

धान्य-पण्य की बिक्री जनता के हितों को ध्यान में रखकर की जाती थी। राज्य से अधिकृत व्यापारी ही अन्न का संग्रह कर सकते थे। अधिकृत व्यापारी न होने पर पण्याध्यक्ष अन्न को जब्त कर लेता था।[३१] आचार्य कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार से प्राप्त अन्न आदि के भण्डार की व्यवस्था के विषय में लिखा है कि कोष्ठागाराध्यक्ष, कृषि उपजों के भण्डारण की व्यवस्था करता था। कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार के विक्रय योग्य पण्य संग्रह करने का निर्देश दिया है। उन्होनें अन्न में धान,गेंहूँ, जौ, ज्वार, कोदो आदि स्नेह वर्ग के घी,तेल,वसा,मज्जा आदि,लवण वर्ग के सेंधा,समुद्री,जवा,सज्जी तथा लोना, क्षार वर्ग के गुड़, शक्कर, खांड, राभ आदि के संग्रह सम्बन्धी निर्देश दिये है।[३२] 'राभ' गीले गुड़ का एक प्रकार है।

अर्थशास्त्र में वर्णित है कि राज्य की और से देशी सामान की खरीद की जो कीमत निर्धारित हो, उस पर दुकानदार ५ प्रतिशत अधिक लाभ कमा सकता था।[३३] विदेशी वस्तुओं पर यह लाभ की दर दस प्रतिशत थी। अधिक लाभ लेने की स्थिति में व्यापारी पर पॉच प्रतिशत से अधिक मुनाफे पर २०० पण के हिसाब से जुर्माना बढ़ता जाता था।[३४] यदि पण्य की मात्रा अत्यधिक होने के कारण निर्धारित मूल्य पर न बेचा जा सके तो पण्याध्यक्ष एक स्थान पर बिक्री करवाये[३५] ताकि उसे निर्धारित मूल्य पर बेचा जा सके। व्यापार सम्बन्धी नियम जो कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में वर्णित किये हैं, अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

बाट-तराजू माप के साधनों पर भी राज्य का नियंत्रण था।, इनका निर्माण राज्य ही करवाता था, जिसके लिए पौतवाध्यक्ष-संज्ञक आमात्य की अधीनता में कर्मान्त स्थापित किये जाते थे।[३६] विभिन्न प्रकार के भार को तौलने के लिए अनेक प्रकार की तुलाएँ- जैसे, आयमानी, व्यावाहारिकी, संवृत्ता,भजनीया, अन्तःपुर भजनीया और काष्ठतुला आदि थीं।[३७] मेगस्थनीज के

यात्रा विवरण में व्यवसाय के निरीक्षण, नाप-तौल की पुष्टि होती है। उसने यात्रा विवरण में व्यवसाय के निरीक्षण, नाप-तौल की निगरानी, तैयार माल की देखभाल, नई-पुरानी वस्तुएँ अलग-अलग बेचने की व्यवस्था और एक साथ बेचने पर जुर्माना इन सभी बिन्दुओं पर लिखा है।[३८]

मेगस्थनीज ने भारतीय समाज को सात वर्गो में विभाजित माना है। दार्शनिक, कृषक, चरवाहे, शिल्पी, सैनिक,न्यायाधिकारी या निरीक्षक और पार्षद आदि के वर्ग मेगस्थनीज ने बताये और लिखा है- ''चौथा वर्ग व्यापारऔर व्यवसाय का निरीक्षण करता है। इसके कर्मचारी नाप और तौल की निगरानी रखते हैं। पॉचवॉं वर्ग तैयार माल की देखभाल करता है........नई वस्तुएँ पुरानी वस्तुओं से अलग बेची जाती हैं।दोंनो को एक साथ मिला देने पर जुर्माना किया जाता है।''[३९]

समस्त निर्मित वस्तुओं पर राज्य की और से कर लगाया जाता था तथा उन पर उत्पादन की तिथि मुद्रांकित होती थी। पण्यों पर कड़ी नजर रखी जाती थी। वाणिज्य अधीक्षक प्रचलित मूल्य, पूर्ति,मांग तथा उत्पादन व्यय आदि अनेक प्रकार की बातों पर विचार करने के बाद कर का निर्धारण करता था।[४०]

मौर्य काल में आन्तरिक व्यापार, जल तथा थल मार्गों से होता था। मजूमदार ने व्यापारियों की राज्य में क्या स्थिति थी, पर लिखा है कि उस समय के व्यवसायी एवं शिल्पी अलग-अलग श्रेणियों अथवा संघों में विभक्त थे। इन श्रेणियों के प्रधानों को राजदरबार में सम्माननीय स्थान प्राप्त था। मौर्य काल में ग्रामीण क्षेत्र भी उत्पादन की महत्वपूर्ण इकाई थे। गाँव के छोटे दुकानदार पण्य बिक्री के साथ-साथ कृषि कार्य भी करते थे।[४१] छोटे व्यापारी या फुटकर व्यापारी दुकानें रखकर तथा घूम-घूम कर फेरी देकर पण्य (वस्तुएँ) बेचते थे। वे थोक व्यापारियों या राजकीय व्यापारियों से वस्तुएँ लाकर बेचा करते थे। फुटकर व्यापारियों की लाभ की दर निश्चित थी तथा फुटकर व्यापारियों को आवश्यकता पड़ने पर थोक व्यापारियों से उधार माल मिल जाता था, जिसका ब्याज सहित भुगतान वे माल की बिक्री के उपरान्त बाजार परिस्थितियों के अनुसार कर सकते थे।[४२] कुल मिलाकर राज्य में फुटकर या छोटे व्यापारियों के लिए अनेक सहानुभूतिपूर्ण नियम प्रचलित थे। किन्तु इन सहानुभूतियों का अनुचित लाभ नहीं उठाने दिया जाता था।[४३] बैंकिंग प्रणाली उस समय नहीं थी परन्तु उधार दिये गये रूपये पर १५ प्रतिशत ब्याज की दर सर्वमान्य थी, किन्तु कम सुरक्षति लेन-देन में जहाँ लम्बी समुद्र यात्राओं के लिए ऋण लिया जाता था वहाँ ब्याज की दर ६० प्रतिशत तक ऊँची हो सकती थी।[४४] सम्भवतः छोटे व्यापारियों से कर नहीं लिया जाता था।[४५] छोटे-छोटे ग्रामीण व्यापार के साथ बड़े व्यापार की मण्डियाँ जल व थल मार्गों पर लगती थी।[४६] राज्य का सहयोग उद्योग व व्यापार में था और मण्डियों का प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जाता था।

बड़े व्यापारी, जिन्हें थोक व्यापारी भी माना जा सकता था, राजकीय क्षेत्र से या देश-विदेशों से पण्य संग्रह करके थोक में बेचा करते थे। सामान्यतः ये व्यापारी मिलकर एक काफिला या संघ बना लेते थे, जो सार्थ नाम से जाना जाता था। ये जल तथा थल मार्ग से व्यापार करते थे। सार्थ का नेतृत्वकर्ता (मुखिया) सार्थवाह कहलाता था। इन व्यापारियों की सुरक्षा का दायित्व निर्वहन राज्य द्वारा किया जाता था तथा व्यापारियों में प्रत्येक व्यापारी से वर्तनी कर (मार्ग कर) वसूला जाता था।[४७] मार्ग-कर या वर्तनी के रुप में प्रत्येक व्यापारी से सवा पण लिया जाता था। इसी तरह माल ढोने के लिए साथ लाये गये जानवरों पर भी कर निर्धारित था, जैसे एक खुर (घोड़ा, खच्चर आदि) पशुओं पर एक पण, बैल आदि पशुओं पर आधा पण, छोटे पशुओं भेंड़ आदि पर चौथाई पण, सिर पर उठाये बोझ पर कर की मात्रा एक माषक निर्धारित थी। कर वसूली के कारण यदि किसी व्यापारी का नुकसान मार्ग में होता था तो क्षतिपूर्ति राज्य द्वारा की जाती थी। वर्तनी-कर वसूल करने वाला राज्य अधिकारी 'अन्तपाल' होता था।[४८]

व्यापारियों तथा उनके माल की सुरक्षा के लिए साम्राज्य-व्यापी व्यवस्था थी। किसी व्यापारी को यदि मार्ग में किसी प्रकार की कोई क्षति होती थी तो उस क्षेत्र से सम्बन्धित अधिकारियों या आसपास के गाँवों के लोगों को इसकी क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। इस सुरक्षा और निःशुल्क व्यावसायिक बीमे के कारण व्यापार सुचारू रूप से चलता था। एक स्थान पर कौटिल्य ने निर्यात में भयभूतीकार व्यय का उल्लेख किया है, जिससे उस काल में पण्यों के बीमा करवाने की प्रथा का संकेत मिलता है।[४९]

भारत की पश्चिमोत्तर, उत्तर एवं उत्तरपूर्वी सीमाओं पर अनेक देशों को जाने वाले बड़े-बड़े काफिले (सार्थ) व्यापार के लिए आया-जाया करते थे। ईरान के मस्कत बन्दरगाह से भारतीय पण्य असीरिया आदि पश्चिम देशों में भेजे जाते थे।[५०] लालसागर से होते हुए मिस्र से व्यापार होता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि दूसरे देशों के सार्थ भारत में व्यापार करने आते और भारतीय व्यापारी दूसरे देशों में व्यापार के लिए जाते थे। बाहर से लाये जाने वाले पण्यों की साम्राज्य में प्रवेश के समय राजकीय विभाग (गुप्तचर) द्वारा

बड़ी सावधानी से वेश बदल कर पण्यों की गुणवत्ता की जाँच की जाती थी। जाँच के उपरान्त ही वस्तु का मूल्य लगाया जाता और शुल्क के लिए शुल्काध्यक्ष के पास भेज दिया जाता।[५१] ये शुल्काध्यक्ष उन विदेशी व्यापारियों को राष्ट्र के लिए हानिकारक सामान का विक्रय अपने राज्य में नहीं करने देते थे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चीनपट्ट को श्रेष्ठ रेशम, परसीक (ईरान) की कर्दम नदी से प्राप्त मुक्ता, समुद्रपार की मणि, ताम्रपर्णी (श्रीलंका) से मोती व नेपाल से चर्म (फर) के आयात का उल्लेख है।[५२] नेपाल से ऊनी वस्त्रों का आयात होता था।[५३]

यूनानी लेखकों ने भी सामुद्रिक व्यापार पर प्रकाश डाला है। एरियन ने लिखा है कि - "वे भारतीय व्यापारी जो अपना सामान हमारे यहाँ (यूनान में) बेचने लाते हैं, समुद्री आभरण अर्थात मुक्ता को विदेशी बाजारों में बेचने के लिए ले जाते हैं।"[५४] यूनान से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध पहले से थे लेकिन सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात दोनों देशों का व्यापार और भी बढ़ गया था। यूनान और भारत के मैत्री सम्बन्धों को उत्तर-पश्चिमी सीमा पर बसे यूनानियों ने और भी दृढ़ कर दिया। यूनानी शासक सेल्यूकल ने मेगस्थनीज को राजदूत बनाकर भारत भेजा था। ऐसे ही बिन्दुसार के दरबार में यूनानी शासक एण्टीओकल द्वारा डाईमेकस को भेजा गया था। बिन्दुसार ने यूनानी शासक से शराब, अंजीर और दार्शनिक की माँग की थी। यूनानी शासक ने प्रथम दो माँगें पूरी कर दीं पर दार्शनिकों के सम्बन्ध में कहा कि देश में दार्शनिकों को नहीं बेचा जाता। यह घटना दोनों देषों के व्यापारिक सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से उजागर करती है।[५५]

इसी प्रकार मिस्र से भी भारत के व्यापारिक सम्बन्ध थे। टाल्मी अशोक का समकालीन शासक था। प्रसिद्ध विद्वान एथीनेअस ने लिखा है कि मिश्र शासक टाल्मी फिलाडैल्फस के शासनकाल (२८५-२४६ ई०पू०) में मिस्र में भारतीय स्त्रियाँ, शिकारी कुत्ते, भारतीय गायें तथा ऊँटों पर लदे भारतीय मिर्च-मसाले प्रायः देखने को मिलते थे। मौर्य काल में मिस्र के प्रसिद्ध बन्दरगाह सिकन्दरिया भारत से आयात-निर्यात के लिए विख्यात था। टाल्मी ने लाल सागर के तट पर नये बन्दरगाह की स्थापना व्यापार के उद्देष्य से की थी, जिसका नाम बेरेनिस था। बन्दरगाह से तीन मील की दूरी स्थल मार्ग से तय करता हुआ मिस्र की राजधानी अलेक्जेण्ड्रिया, जो विदेशी व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र था, को सामान ढोने वाले काफिले ले जाया करते थे।[५६]

प्राचीन काल से ही बंग देश की मलमल (श्वेत, महीन और चिकनी) विश्व विख्यात थी। काशी का रेशम अब तक श्रेष्ठ माना जाता है और सुदूर दक्षिण के सूती कपड़े आज भी भारत में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। चीन के रेशमी कपड़े मौर्य युग में भी श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध थे और वे विक्रय के लिए अवश्य ही भारत में आया करते होंगे।[५७] विदेशों में जो नमक बिकने के लिए जाता था, उस पर कर लिया जाता था।[५८] ऐसा माना जाता है कि भारत का निर्यात, आयात से कई गुना ज्यादा था। मिर्च-मसाले, कीमती पत्थर, सूती कपड़ा, रेशम, देशी दवाइयां, हांथी दांत, चीनी, नील, लाख आदि के निर्यात के साथ-साथ भारतीय पशु-पक्षियों जैसे बन्दर, तोता, मोर आदि का भी विदेशों में माँग थी। विदेशों से शीशे के सामान, शराब, सोना, चांदी, तांबा, दवाइयां, इत्र तथा अनेक प्रकार के कपड़ों का आयात होता था।

कौटिल्य ने विलासिता की वस्तुआं के आयात की स्वीकृति नहीं दी तथा लाभ की दृष्टि से निर्यात पर काफी बल दिया गया। व्यापारी राष्ट्रपीड़ाकर (देश को नुकसान पहुँचाने वाला) सामान नहीं बेच सकते थे। कौटिल्य ने देश के लिए हितकारी वस्तुओं के व्यापार के लिए व्यापारियों को प्रोत्साहित किया तथा प्रोत्साहन हेतु हितकारी वस्तुओं पर शुल्क भी माफ कर दिया जाता था।[५९] कौटिल्य की नीति विदेशी व्यापार के अनुकूल थी, उनका सिद्धान्त था कि परभूमिज (विदेशों में उत्पन्न माल) को अनुग्रह द्वारा स्वदेश आने दिया जाए।[६०] विदेशी व्यापार करते हुए आपत्ति आने पर कौटिल्य ने अपनी व रत्नों की सुरक्षा के निर्देश दिये और यदि दोनों की रक्षा सम्भव न हो तो रत्नों का लाभ छोड़कर अपने को बचाने का निर्देश दिये हैं।

यूनान, रोम, फारस (ईरान) असीरिया, सीरिया, मिस्र, एलेक्जेण्ड्रिया, बेरेनिस, जावा, लंका, सुमात्रा, बर्मा तथा बोर्निया आदि देशों एवं महाद्वीपों से भारत का व्यापार होता था। व्यापार के माध्यम हेतु मुद्रा के चलन का संकेत भी अर्थशास्त्र में मिलता है। मौर्यकाल में राजकीय टकसाल में अनेक प्रकार की मुद्रायें बनाई जाती थीं। जैसे सुवर्ण, कर्शापण, पण, धरण, माषक तथा काकणी प्रमुख हैं। टकसाल के अधिकारी सौवार्णिक तथा लक्षणाध्यक्ष थे।[६१] राज्य के अतिरिक्त अन्य कोई सिक्के नहीं बना सकता था। स्वयं सिक्के बनाने पर कड़ा दण्ड दिया जाता था। नकली सिक्के बनाने वाले के लिए २०० पण जुर्माने का विधान था।[६२] अतः व्यापार के लिए मुद्रा का प्रयोग होता था। विदेशी व्यापार से बहुत परिमाण में मुद्रा आती थी। व्यापार हेतु अन्य माध्यमों का भी उपयोग था, जैसे वस्तु विनिमय का चलन भी इस समय भारत में था।

मौर्यकाल में व्यापारिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप विभन्न

देशों के लोगों के निकट सम्पर्क में आये, एक दूसरे को समझा, परखा और बहुत कुछ सीखा। पश्चिम देशों के सम्पर्क में आकर भारत ने उन देशों के राजदरबार के नियम, सुन्दर सिक्के बनाना, ज्योतिष विद्या तथा चिकित्सा व औषधि-विज्ञान आदि के बारे में बहुत कुछ सीखा। भारत ने भी पश्चिमी साहित्य, विज्ञान, दर्शन, धर्म, आध्यात्मिक विद्या तथा संस्कृति पर गहरा प्रभाव छोड़ा। उपनिषदों में वर्णित दर्शन का यूनानी दर्शन पर स्थाई प्रभाव पड़ा। भारतीय धर्म पश्चिमी एशिया में फैला तथा बौद्ध धर्म ईराक, ईरान, खुरासान आदि देशों में फैला और अन्तर्राष्ट्रीय धर्म बन गया। भारतीय व्यापार के साथ भारतीय धर्म तथा संस्कृति की अमिट छाप विदेशों पर पड़ी। **अतः मौर्य** काल के आन्तरिक और बाह्य व्यापार के अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान वैश्वीकरण की व्यापार प्रणाली शताब्दियों पूर्व मौर्य काल में व्यवस्थित रूप में प्रचलित थी और उस समय व्यापार का मूल उद्देश्य लोकहित में निहित था।

सन्दर्भ

१. भार्गव सुनील, 'हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ एन्शियेण्ट इण्डिया', दिल्ली, १९८० पृ० ५१५.
२ सिंहल जी० पी०, 'प्राचीन भारत', नई दिल्ली, २००२-०३ पृ० २४५
३ मजूमदार, रायचौधरी, दत्त, 'भारत का वृहत् इतिहास', भाग-१, नई दिल्ली, १९९६, पृ० ११६
४ अर्थशास्त्र, २.२८
५ स्ट्रैबो, ज्याग्राफिका, ग्ट, ४६, पृ० ८५
६ पांथरी भगवती प्रसाद, 'मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास', लखनऊ, १९७२,पृ० १७०
७ अर्थशास्त्र, ११.२१-२२
८ श्रीवास्तव एम०पी०, एवं वीरेन्द्र कुमार वर्मा, 'प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला और दर्शन', इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण पृ०, १५४
९ सिंहल जी० पी०, 'प्राचीन भारत', नई दिल्ली, २००२-०३ पृ० २४५
१० शास्त्री के० ए०, नीलकण्ठ, 'ए कम्परीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', द्वितीय संस्करण, पृ० ७०-७१
११ मजूमदार आर० सी० (सम्पादक) 'द एज ऑफ इम्पीरिएल यूनिटी', जिल्द ।।, मुम्बई, २००१, पृ० ६०६
१२ सत्यकेतु विद्यालंकार, 'प्राचीन भारत', नई दिल्ली, २०००, पृ० ३२६-२७
१३ एस० के० दास, 'इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ एन्शियेण्ट इण्डिया', कलकत्ता, १९२५, पृ० १६२
१४ अर्थशास्त्र, ११/२३.
१५ वही, २.११.
१६ वही, २.१३.
१७ वही, २.४.
१८ वही, २.१२.
१९ सत्यकेतु विद्यालंकार, पूर्वोक्त पृ० ३४६.
२० अर्थशास्त्र २.२५.
२१ वही
२२ वही
२३ एस० के० दास, पूर्वोक्त, पृ० १५५.
२४ अर्थशास्त्र, २.१७.
२५ वही, २.१६.
२६ वही, २.४, २.३६.
२७ वही, २.४
२८ वही, २.४
२९ वही, २.४
३० वही, २.४
३१ वही, २.४.
३२ वही, २.१६
३३ वही, ३.११, ३.१२.
३४ वही, ४.२.
३५ वही, ४.२.
३६ वही, २.१६.
३७ वही, २.१ ड़.
३८ मिक्रिन्डल, जे.डब्लयू (अनु), 'ऐंश्येंट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाय टाल्मी', लन्दन, १८८५, पृ० ८७-८८.
३९ एस.आर. गोयल, 'दि इण्डिया ऑफ मेगस्थनीज', जोधपुर २०००, पृ० ९२, ९३.
४० थापर रोमिला, 'भारत का इतिहास', नई दिल्ली, २००२, पृ० ६६.
४१ अर्थशास्त्र २.१.
४२ वही ३.१२.
४३ वही ३.१२.
४४ थापर रोमिला, पूर्वोक्त पृ० ६६.
४५ वही.
४६ अर्थशास्त्र २.१.
४७ वही २.२१.
४८ विद्यालंकार सत्यकेतु, पूर्वोक्त पृ० ३६२.
४९ अग्रवाल कमलेश, 'कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीति की राज्य व्यवस्थाएँ', नई दिल्ली, २००१, पृ० २२.
५० एस० के० दास, पूर्वोक्त पृ० १६०-१६१.
५१ अर्थशास्त्र २.२१.
५२ वही २.१५.
५३ जी० पी० सिंहल, पूर्वोक्त, पृ० २४६.
५४ एरियन, एन्शियेण्ट इण्डिया, पृ० २००.
५५ सुनील भार्गव, पूर्वोक्त पृ० ५१६.
५६ विद्यालंकार सत्यकेतु, पूर्वोक्त, पृ० २८६.
५७ वही, पृ० ३४०.
५८ वही, पृ० ३४६.
५९ अर्थशास्त्र ,२.२१.
६० वही, २.१६.
६१ श्रीवास्तव एम० पी० एवं वीरेन्द्र कुमार वर्मा, पूर्वोक्त ,पृ० १२६.
६२ विद्यालंकार सत्यकेतु, पूर्वोक्त, पृ० ३७०-७१.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

आदिवासी न्याय व्यवस्था का स्वरूप

❑ डॉ० योगेश कुमार

जनजातियों में न्याय व्यवस्था का स्वरूप व्यापक है और यह ऐसी सांस्कृतिक धरोहर है, जिसके माध्यम से आदिवासी समाज प्राचीन समय से अपनी व्यवस्था स्वयं करता आ रहा है। उसकी अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में कभी किसी बाहरी व्यक्ति का हस्तक्षेप नहीं रहा। इनकी कला, संस्कृति, भाषा, न्याय व्यवस्था, जिसे परम्परागत व्यवस्था कहते हैं, अपने में इसकी विशिष्टता है। इनकी न्याय व्यवस्था संगठनात्मक रूप से मजबूत रही है। प्रस्तुत लेख आदिवासी न्याय व्यवस्था के स्वरूप को उजागर करने का एक प्रयास रहा है।

जनजाति शब्द की उत्पत्ति तथा इसके अर्थ के बारे में विभिन्न प्रकार के विचार प्रकट किये गये हैं। जनजाति शब्द की उत्पत्ति त्रिभुज शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ तीन अंगों से है। राजा, रक्षा तथा हस्त कलाकार। जनजातियों के निवास स्थान कबीलों के रूप में थे। उनका अपना एक सशक्त अधिकार क्षेत्र होता था, जहाँ उस जनजाति का अपने लोगों पर सामुदायिक नियंत्रण होता था।[१]

किसी भी सभ्यता का उदय समय और स्थान के आधार पर होता है। सभ्यता के निर्धारण में समय का महत्व अधिक होता है। समय के साथ-साथ जनजातियों की पारम्परिक प्रथाओं में परिवर्तन आता गया और सामुदायिक स्तर पर उन्होंने अपने को विकसित किया।[२]

झारखण्ड जनजातियों का एक प्रमुख निवास स्थल रहा है। यहाँ की जनजातियों का इतिहास २००० वर्षों से भी अधिक समय का माना जाता है। यह अलग-अलग स्थानों से झारखण्ड प्रदेश में आये और इसे अपना निवास स्थान बनाया। आधुनिक सभ्यता के विकास की गाथा लिखना एक तरह से साभ्यतिक इतिहास की बर्बर कथाओं को दोहराना है। आर्यों और अनार्यों की बहसें हमारे प्राचीन इतिहास के केन्द्र में हमेशा से रही हैं कि किस प्रकार आर्यों ने मूल निवासियों को बर्बर तरीके से कुचल कर एक नयी सभ्यता की नीवं रखी और आदिवासियों को हाशिए पर ढकेल दिया।[३] मूल निवासियों को भाषा, संस्कृति, जीवन शैली गीत-संगीत, धार्मिक और आस्थामूलक मान्यताओं, पुरातन तौर तरीकों, प्रकृति के साथ सहकारी जीवन आदि को कुचल कर नयी व्यवस्था विकसित की। लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशियाई समाजों में भी जंगलों और प्रकृति के गोद में बसने वाले आदिवासियों को शताब्दियों से उजाड़ा जा रहा है।[४] आदिवासी जन-समाज का इतिहास और जीवन बोध औपनिवेशिकता की संशलिष्ट बौद्धिकता से बाहर आने के लिए संघर्ष कर रहा है।[५] आदिवासी दर्शन और इतिहास को व्यवस्थित करने के लिए जिन तथ्यों को अपनाया जाता है, उससे आदिवासियों की वस्तुगत स्थितियाँ प्रभावित होती है। बात यह भी है कि अब तक के आदिवासी इतिहास के हाशिये से देखने के प्रयासों को भी समझा जाएं और आदिवासी इतिहास के विश्व दृष्टिकोण के मापदंड भी निर्मित किये जाएं जिससे कि आदिवासियों के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को उजागर किया जाये।[६]

आदिवासी इतिहास न केवल अब तक की अनेक स्थापनाओं से परे कई नयी स्थापनाओं की संभावना से परिपूर्ण है, बल्कि उनके ऐतिहासिक स्त्रोत भारतीय इतिहास के कई संदर्भों को भी प्रभावित कर सकते हैं। आदिवासी इलाकों में प्रतिरोध की संस्कृति का निर्माण किन प्रक्रियाओं में हुआ है और अब तक आदिवासी समाज को कल्चर ऑफ साइलेंस के दृष्टिकोण से भी क्यों देखा गया है जो आदिवासी इतिहास के संदर्भ में एक प्रश्न चिन्ह है।[७]

भारतीय समाज में जनजातियों का एक महत्वपूर्ण योगदान है। विश्व के अन्य राष्ट्रों की तुलना में जनजातियों का प्रतिशत भारत में अधिक है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि द्रविड़ लोग ही इस क्षेत्र के वास्तविक निवासी थे और आर्यों के आगमन के बाद उन्हें अनेक क्षेत्रों से भगा दिया गया और फिर वे कहीं अन्यत्र जाकर बस गये।[८] भारत में निवास करने वाले जनजातियों का प्रवेश एशिया महाद्वीप के विभिन्न स्थानों और दिशाओं से हुआ और उन्होंने भारत के अनेक स्थानों को अपना आश्रय स्थल बनाया और देश के भू-भागों में फैल गये।[९]

जनजातियों में न्याय व्यवस्था का स्वरूप व्यापक है और ऐसी सांस्कृतिक धरोहर है, जिसके माध्यम से आदिवासी समाज प्राचीन समय से अपनी व्यवस्था स्वयं करता आ रहा है।

❑ इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

उसकी अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में कभी किसी बाहरी लोगों का हस्तक्षेप नहीं रहा। इनकी कला, संस्कृति, भाषा, न्याय व्यवस्था, जिसे परम्परागत व्यवस्था कहते हैं। अपने में इसकी विशिष्टता है। इनकी न्याय व्यवस्था संगठनात्मक रूप से मजबूत रही है।[१०]

आदिवासियों की परम्परायें उसके मूल में निहित होती हैं। आदिवासियों में कानून की परम्पराएँ मौखिक होती हैं, उसका कोई लिखित कानून नहीं होता है। सारे फैसले सामुदायिक स्तर पर होते हैं। जनजातियों का सामुदायिक संगठन इतना मजबूत होता है कि, जिसके अंतर्गत लोकतांत्रिक व्यवस्था होती है, सभी को बराबर का अधिकार प्राप्त होता है। जनजातियों में न्याय व्यवस्था का बहुत विकसित रूप में देखने को मिलता है। आधुनिक कानून से भी अधिक कड़े प्रावधान जनजातियों की न्याय व्यवस्था में देखने को मिलते हैं।[११]

जनजातियों में यह बात देखने को मिलती है कि अगर किसी कार्य के लिए दण्ड दिया जाता है तो सामुदायिक स्तर पर डर की भावना होती है अगर दण्ड का निर्धारण गलत अर्थों में किया गया तो, इसका प्रकोप सारे समुदाय को भुगतान होगा, ये जो ईश्वरीय डर है वहीं उन्हें गलत कार्यों को करने से रोकता है और सारे समुदाय पर इसका भावनात्मक प्रतिफल दिखाई पड़ता है।[१२] जनजातियों में ऐसी मान्यता होती है कि अगर न्याय के संबंध में किसी भी बात की अवहेलना की गयी तो उसका परिणाम पूरे समुदाय पर ईश्वरीय कोप के रूप में पड़ेगा। यह मान्यता संसार के सारे आदिवासियों के समुदाय में देखने को मिलती है। कानून को सामाजिक सरोकार के अंतर्गत अलग-अलग नियमों और प्रावधानों के अंतर्गत अतरूप परिवर्तित भी किया जाता है।[१३]

छोटानागपुर क्षेत्र में निवास करने वाली जनजातियों की परम्परागत व्यवस्था का इतिहास दो हजार वर्षों से अधिक समय से कायम है। विश्व का कोई ऐसा आदिवासी समुदाय नहीं है जिसमें परम्परागत व्यवस्था देखने को नहीं मिलती हो।[१४] जनजातियों और उनकी परम्परागत व्यवस्था समुदायिक स्तर पर बहुत सुदृढ़ और मजबूत होती है। संसार के सभी आदिवासी समुदायों में पंचायती व्यवस्था देखने को मिलती है। आदिवासी समुदाय की पारम्पारिक व्यवस्था का स्वरूप आज आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में हमें देखने को मिलता है।[१५] आदिवासी समुदाय में कोई लिखित कानून नहीं होता है। वह मौखिक होता है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता है। इस प्रकार आदिवासियों का मौखिक कानून ही उनका सामुदायिक स्तरीय कानून होता है जिसको अवहेलना किसी भी स्तर पर नहीं की जाती है।[१६]

जनजातीय न्याय व्यवस्था का स्वरूप : कानून एक सामाजिक नियम होता है, जिसका उल्लंघन होने की स्थिति में कठोर दण्ड का प्रावधान जनजातियों की परम्परागत व्यवस्था के अंतर्गत किया जाता है। जनजातियों के समुदाय में नियमों का पालन करना प्रत्येक सदस्यों के लिए अनिवार्य होता है क्योंकि अगर वह व्यक्ति स्वयं कानून का पालन नहीं करेगा तो अन्य भी न्याय के प्रति अपना दायित्व नहीं निभा पायेंगे।[१७] जनजातियों के समाज में कानून अपने सदस्यों के व्यवहारों को समाज के प्रति अनुकूल बनाए रखने के लिए कुछ निश्चित नियमों को प्रतिपादित करता है। न्याय कानून का उल्लंघन करनेवाले को दंडित कर उसके नियमों का पालन करने वाले के हितों के रक्षा करता है। जनजातियों की प्रथायें ही उनके समुदाय के कानून का आधार होती है।[१८] जनजातियों की परम्परागत न्याय-व्यवस्था प्रभावशाली एवं कठोर होती है जिससे कि उनका समुदाय उन कार्यों की अवहेलनना करता है जो सामुदायिक स्तर पर निषेध होती है। जनजातियों में परम्परागत व्यवस्था के अंतर्गत समुदाय को प्राथमिकता दी जाती है। किसी भी नियम का पालन सामुदायिक स्तर पर ही होता है।[१९] जनजातियों के समुदाय के संदर्भ में आम धारणा रही कि इनके समाज में उग्र हिंसा की प्रवृत्ति रही है। अतः केवल क्रिमिनल केस ही देखते को मिलता है। परन्तु यह अवधारणा गलत पायी गयी क्योंकि जनजातियों के समुदाय की व्यवस्था इतनी निष्पक्ष होती है कि उसके अंतर्गत ही किसी को दण्ड दिया जाता है। इस प्रकार जनजाति कानून में सारे समुदाय का वैयक्तिक हित का भी ध्यान रखा जाता है।[२०]

जनजातियों की परम्परागत व्यवस्था को जानने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पहले उनकी सामाजिक संरचना को समझा जाये। जनजातियों की सामाजिक संरचना ही उनके परम्परागत व्यवस्था का आधार होती है। परम्परागत व्यवस्था पर अधिकतर वंश परम्परा का प्रभाव देखने को मिलता है।[२१] जनजातीय क्षेत्रों में उनके गाँव ही परम्परागत व्यवस्था के ईकाई के रूप में कार्य करते हैं। ग्राम पदाधिकारी एवं ग्राम प्रशासन जनजातीय जीवन को प्रभावित करता है।[२२]

जनजातीय ग्राम के पदाधिकारियों को विभिन्न नामों से जाना जाता है। जनजातीय समुदाय में उनके झगड़ों को निपटारा, सामाजिक अपराध, अन्य मामलों का निपटारा उनके परम्परागत न्याय व्यवस्था के अंतर्गत होता है। इन्हें अलग-अलग नामों के द्वारा जाना जाता है।[२३]

भारत में आज भी कई ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ जनजातियों के नामों

से उस क्षेत्र की पहचान होती है। जब हम जनजातियों के इतिहास की बात करते है तो हमें उनके इतिहास की बहुत आंशिक जानकारी प्राप्त होती है, प्राचीन काल में उनका कोई ऐतिहासिक स्त्रोत नहीं रहा, क्योंकि जनजाति समाज मौखिक तौर पर अपने इतिहास को अपने समाज में प्रचारित करता है, जिसे एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को विरासत स्वयं बढ़ाती रहती हैं।[२४]

भारत में आदिवासी समुदाय के इतिहास के बारे में अगर हम गौर करें तो पायेगें कि आदिवासी जीवन के संबंध का अध्ययन मुख्यतः ब्रिटिश काल से ही शुरू हुआ। इसका मुख्य कारण ये रहा कि ब्रिटिश काल में जो भी उनके शासित प्रदेश होते थे, उनके बारे में एक विस्तृत जानकारी प्रशासनिक स्तर पर रखी जाती थी। आदिवासी विषयक ब्रिटिश कालीन रचनाएँ क्षेत्रीय शोध पर आधारित थी।[२५]

आदिवासी इतिहास लेखन की अपनी कोई स्वतंत्र स्थिति नहीं थी, इसके बाद के भी आदिवासी इतिहास लेखन सिर्फ कुछ खास विद्रोह को लेकर जारी रहा। स्थायी इतिहास को वह समग्र समर्थन प्राप्त नहीं हुआ जो उसे होना चाहिए था। आज भी क्षेत्रीय मान सृजन अधिकांश मुख्य धारा के निर्माण का साधन ही है।[२६]

हम आज भी उन्हीं अंग्रेजी आलेख और साक्ष्यों का प्रयोग करते है जो औपनिवेशिक काल में अपने प्रशासनिक स्वार्थ को पूरा करने के लिए रचा गया था। आज स्थानीय इतिहास के लेखन पर अब भी उतना अध्ययन नहीं किया जा रहा है, परंतु कुछ कार्य अवश्य किये जा रहे हैं जिससे कि आदिवासी इतिहास को भी स्थापित किया जा सके।[२७]

आदिवासी सभ्यता के विकास का अगर हम गहन अवलोकन करेंगे तो पायेगे कि आदिवासी विकास गाथा कितनी रोचक है, परंतु उसका दूसरा पहलू दर्दनाक भी है, जहाँ आदिवासियों को वस्तु मात्र समझकर, उसके संसाधनों, आवास, परम्परा को रौंद कर उसके महान इतिहास को मिटाने की चेष्टा की गयी और वे सफल भी हुऐ, जिससे कि उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाय।[२८]

आदिवासी इतिहास की चर्चा में आज महत्वपूर्ण बदलाव आ रहा है, विश्व के प्रसिद्ध विद्वानों का ध्यान इस ओर गया है और वे उन ऐतिहासिक तथ्यों को खंगालने की कोशिश में लगे हैं जो आदिवासी इतिहास को सशक्त बनाते हैं। उनके राजनीतिक, प्रशासनिक पक्ष के साथ-साथ भौतिक, नैतिक, सांस्कृतिक पक्ष पर भी ध्यान दिया जा रहा है, आज आदिवासी इतिहास में विशिष्ट जनों के साथ-साथ उन आम आदिवासियों के इतिहास को प्रकट करने की चेष्टा की जा रही है, जिसके वह हकदार रहे हैं। आज हम आदिवासी समुदाय के बाहरी आवरण को हटाकर उनके भीतर की वस्तुस्थिति को जानने और समझने की चेष्टा कर रहे हैं।[२९]

आज भी यदि हम आदिवासी इतिहास के लेखन में सिर्फ औपनिवेशिक दस्तावेज के अध्ययन पर ही निर्भर रहेंगे तो शायद हम उन चीजों को गौण पायेंगे, जो औपनिवेशिक काल में घटीं और उन्हें दबाकर एक नये विचार को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। आदिवासी समाज आज भी अपने स्वर्णिम इतिहास को कलमबद्ध होने की राह देख रहा है।[३०]

आज आदिवासियों के मौखिक साक्ष्यों के द्वारा भी यह जानने का प्रयास किया जा रहा है कि किस प्रकार आदिवासियों ने अपने समुदाय का विकास किया, किन नयी परम्पराओं को अपने में संपोषित किया और फिर उसका क्रम विकास किस प्रकार होता गया। आज यह महसूस किया जा रहा है कि अगर समाज के सामंती लोगों की कथा को उजागर करना है तो आदिवासियों के मौखिक साक्ष्यों को उनकी जुबानी व्यक्त उनके अतीत को देखने की आवश्कयता है।[३१]

आदिवासियों ने अपने गीतों, लोककथाओं एवं प्रजन्मीसय संप्रेषण की पद्धति के सहारे अपने अतीत को आज भी जीवित रखा है। आज भी उनके लोकगीत उनके स्वर्णिम इतिहास की महान गाथाओं को समेटे हैं, जिसे कि उन्होंने जन्म लिया है।[३२]

आदिवासी इतिहास को जानने और समझाने में सबसे बड़ी समस्या रही, उनका लिखित नहीं होना और मौखिक रूप में उनका आधार भी कुछ लोगों तक सीमित रहा, और अगर उनके बीच कुछ घटना घटित हो गयी तो वह भी समाप्त होते चली गयी, अतः बहुत सी बातों का पता उनकी पीढ़ी को भी नहीं चला। परंतु जो भी चीजें बच पायी वो बेजोड़ रही।[३३]

उनके शहीदों के लोकगीत मानव के शरीर का रक्त प्रवाह तेज कर देते हैं, उनकी परम्परागत लड़ाईयों के गीत, जो उनकी इस महानता को दर्शाता है कि जान देकर भी हम अपने जंगल, जमीन और जल की रक्षा करेंगे, इसे हमसे कोई नहीं छीन सकता है।[३४]

आदिवासियों का इतिहास अभी भी प्रत्यक्ष रूप से सामने आना बाकी है। झारखण्ड के आदिवासी और उनकी परम्परागत व्यवस्था का इतिहास बहुत गौरवशाली रहा है। झारखण्ड में निवास करने वाले ३२ जनजातीय समुदाय अलग-अलग रीति रिवाजों के साथ, अपने ऐतिहासिक धरोहरों को समेटे हुए है। आज उसमें कुछ प्रमुख हो गये और कुछ आदिम जनजाति की श्रेणी में है। प्रमुख जनजातियों में मुंडा हो, संथाल, उरांव,

खड़िया प्रमुख हैं, आदिम जनजातियों में असुर, पहाड़िया, विरहोर सबर इत्यादि हैं।[३५] असुर जनजाति की बहुत बड़ी आबादी छोटानागपुर में निवास करती थी, परंतु अलग-अलग काल के अंतर्गत उनकी जनसंख्या में ह्रास आना शुरू हुआ और वह काल के गर्त में समाते चले गये। असुरों के बाद मुण्डा लोगों का प्रवेश झारखण्ड के क्षेत्र में हुआ, फिर उरांव, संथाल, खड़िया, हो आदि का प्रवेश अलग-अलग क्षेत्रों में हुआ और उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में विकास किया।[३६]

राजनैतिक रूप में झारखण्ड का जिक्र १३वीं शताब्दी में किया गया है, जब उत्तरी उड़ीसा का राजा नरसिंह देव ने स्वयं को झारखण्ड का राजा घोषित किया था। उस अवधि के नरसिंह देव - २ के ताम्र पत्र लेख में झारखण्ड का उल्लेख है।[३७]

किसी भी क्षेत्र विशेष में जब जनजाति समुदायों का विकास होता है तो उस क्षेत्र के भौगोलिक परिवेश के साथ उनका समन्वय हो जाता है और फिर धीरे-धीरे उनका सामुदायिक संगठन भी उस क्षेत्र में विकसित हो जाता है। छोटानागपुर के क्षेत्र में निवास करने वाले जनजातियों की अपनी सुदृढ़ परम्परागत व्यवस्था रही जो उनके क्रम विकास के साथ विकसित होता गया और कुछ का उन्होंने अन्य जनजातियों से ऐडोपटेशन भी किया जो आंशिक रूप से दिखाई देता है।[३८]

जनजातियों ने इस व्यवस्था का पालन न केवल अपनी सामुदायिक स्थिति को मजबूत करने के लिए किया, बल्कि उसके साथ-साथ अपनी सामुदायिक भागीदारी को भी मजबूत किया। परम्परागत कानून बाध्यताकारी शक्ति के रूप में समाज के मानवीय व्यवहार और आचरण को नियंत्रित करता है तथा उन्हें समाज के सभी लोगों को उसके अनुसार आचरण करने के लिए प्रभावित भी करता है।[३९] आदिवासी समाज में परम्परागत व्यवस्था को बड़े ही कठोरता पूर्वक लागू किया जाता है, जिससे कि समाज में एकरूपता बनी रहे और सामुदायिक स्तर पर अपराध और अन्य कार्यों को रोका जा सकें।[४०]

आदिवासी समाज की परम्परावादी व्यवस्था में यह देखना आवश्यक हो जाता है कि, किस प्रकार उनकी सोच रही थी, जब सामाजिक व्यवस्था की बात की जाती है। गांव के स्तर पर उनकी क्या सोच रही थी, गांव के स्तर पर जो उनकी ऊंची संस्था होती उसकी क्या सोच रही थी लोग उसमे किस प्रकार शामिल होते थे।[४१]

आदिवासी समाज का कानून प्रथागत रूप में होता है जो अलग-अलग समय में सामाजिक उद्देश्यों के प्रति बदलता है। प्रथागत कानून में बदलाव तीन पीढ़ी के बाद देखने को मिलता है क्योंकि मौखिक कानून का प्रभाव तीन पीढ़ियों के बाद परिवर्तित होने लगता है। जनजातियों के समुदाय में आज उनकी प्रथाओं का मूल स्वरूप उसी प्रकार से व्याप्त है, जो प्राचीन समय से चली आ रही है। जनजाति समुदाय में न्याय की प्रक्रिया का अलग-अलग स्वरूप देखने को मिलता है।[४२]

जनजातियों के कानून को प्रथागत कानून की मान्यता उनके समाज में इस कारण भी दी जाती है क्योंकि इसकी स्वीकृति के लिए कोई संवैधानिक या न्यायालय का प्रावधान नहीं होता है। इसके लिए उनके कीली का परिवार और उनके हातू जिसे पंचायत भी कहा जाता है, सिर्फ उससे मान होना आवश्यक होता है क्योंकि जनजातियों के लिए हमेशा से उनकी यही संस्थाएँ महत्वपूर्ण रही है। गाँव की पंचायत आदिवासी जन समुदाय के लिए हमेशा से पवित्र रही है, क्योंकि उसमें उनके समाज के श्रेष्ठ लोगों के द्वारा उनकी परम्परा का निर्वाह किया जाता है।[४३]

जनजाति समाज हमेशा से अपने संस्कारों और रीति रिवाजों के प्रति सजग रहा है। क्यों इतने निषेध जनजाति समाज में दिखाई पड़ता है, उसका कारण यह है कि जनजाति समाज एक सामुदायिक रूप से कार्य करता है और सभी को समान अधिकार प्रदान करता है, वहाँ जानवरों के लिए भी समानता का अधिकार है, वह इन निषेधों को कठोरता पूर्वक इस कारण लागू करता है कि सामाजिक ढाँचा मजबूत रहे, अगर डर की भावना नहीं होगी तो समाज में कुरीतियों का चलन शुरू हो जाये, इस कारण जरूरी होता है कि सामाजिक आधारों को मजबूत स्थिति प्रदान की जाये जो कि आवश्यक भी होता है।[४४]

जनजातीय समुदाय में न्याय की प्रक्रिया की विशेषता यह होती है कि वह सारे पहलुओं पर विचार कर दण्ड का निर्धारण करते हैं। गवाह, प्रमाण, दण्ड का निर्धारण करते हैं। सामूहिक दायित्व को सर्वोपरि रखा जाता है। जब किसी का भी अपराध घोषित होता है तो उसे अलग-अलग प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है, सारे अभियोजन को ध्यान में रखकर उसे देख जाता है। अपराध का निर्धारण, प्रमाण, दण्ड, क्षतिपूर्ति और समझौता सबसे महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि कोई भी समुदाय यही चाहता है कि अगर कोई अपराध हुआ है और सिद्ध होता है अथवा नहीं होता है तो समझौता पक्षों के अंतर्गत हो, कारण इसमें सामुदायिक शांति जुड़ी होती है, गांव की शांति जुड़ी होती है।[४५]

जनजातियों की न्याय परम्परा में एक अन्य विशेषता यह है कि यह एक खुला न्यायालय होता है, जिसमें सभी को बोलने का समान अधिकार है। आधुनिक न्यायालय में इस प्रक्रिया का न होना एक व्यवस्था का ह्रास है। वहाँ सभी को प्रमुखता दी

जाती है, किस आधार पर सही न्याय सिद्ध हो। यहाँ इस बात को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, इससे सामाजिक स्तर पर एक लगाव एक दूसरे से जुड़ा होता है, जो सामुदायिक अनुशासन के लिए आवश्यक होता है, जिसका फायदा यह है कि जनजातियों में हर व्यक्ति की महत्वपूर्णता का एक विचार का विकास होता है और उन्हें प्रगाढ़ बनाये रखता है।[४६] आदिवासी समाज के क्रम विकास के साथ-साथ उसके परम्परागत कानूनों का भी विकास होता गया, कब ये कानून प्रचलन में आये, इसका कोई समय निर्धारित नहीं है। ये किस प्रक्रिया के अंतर्गत शुरू हुए, इसका भी कोई निश्चित कालक्रम निर्धारित नहीं है। इसको लेकर आदिवासी समाज में क्या कोई असामंजस्य की स्थिति उत्पन्न हुई, इसकी गणना भी संभव नहीं है।[४७]

अतः आज के आदिवासियों की परम्परागत व्यवस्था का अध्ययन कर ही हम उनके पहले के परम्परागत व्यवस्था के बारे में एक संभावना प्रकट कर सकते हैं कि किस तरह से उनका विकास हुआ होगा।

आज जो आदिवासी क्षेत्रों में बदलाव हो रहे हैं वो भी इनके व्यवस्था को सीधे तौर पर हानि पहुंचा रहे हैं, इससे पहले भी बदलाव हुए हैं परन्तु वह उनकी अपनी विकसित होती प्रणाली का नतीजा थी, आज जो बदलाव हो रहा है वह मानव व्यवस्था की देन है।[४८]

आज आदिवासी क्षेत्रों में विनाश की नयी कहानी लिखी जा रही है। परम्पराओं को तोड़ा जा रहा है। आज परम्पराओं में बदलाव आदिवासी समाज के उन प्राचीन रीति रिवाजों की बलि दे देना होगा, जिसे आदिवासी समाज वर्षों से सहेजता आ रहा है।[४९]

सन्दर्भ

१. वर्मा रूपचंद्र, 'भारतीय जनजातियाँ', प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, २००३, पृ. २-३

२. सिंह मंगल नाथ, 'भारत में जाति प्रथा स्वरूप, कर्म और उत्पत्ति', दास मोतीलाल बनारसी, नई दिल्ली, २००७, पृ. १६-२०

३. सेन अशोक कुमार, 'विस्तृत आदिवासी इतिहास की खोज', जनमाध्यम, राँची २००६, पृ. ३-४

४. शाह शंपा, 'किस्सागो', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली २०११, पृ. ६-१०

५. हुसैन नदीम, 'जनजातीय भारत', जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, २००७, पृ. ४-५

६. महाराथा अरूप, 'डेमोग्राफिक पर्सपेक्टिव ऑफ इंडियन ट्राइब', ऑक्सफोर्ड इनवरसीटी प्रेस, नई दिल्ली, २००५, पृ. १३-१४

७. राठौर अमर सिंह, 'कानून का समाजशास्त्र', रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर २००५, पृ. १६-२०

८. धुरीय जी.एस., 'द सिडुल ट्राइब', पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, १६६३, पृ. १५-१७

६. एल्वीन वैरियर, 'ट्राइबल वॉर्ल्ड ऑफ वैरियर एल्वीन एंड ऑटो वायोग्राफी' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे १६६४, पृ. १३-१५

१०. सिन्हा सुरजित, 'ट्राइबस एंड इंडियन सिविलाइजेशन प्रेसपेक्टिव', वॉलम ६० नंबर १, २ मैन इन इंडिया प्रेस, राँची, १६८० पृ. ६-१०

११. दुबे श्याम चरण, 'समय व संस्कृति', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००५, पृ. ११-१५

१२. अटल योगेश, 'आदिवासी भारत', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली २०११, पृ. २-३

१३. भी वहल, 'ट्राइबल एंड पिजेंट लाइव ऑफ इंडिया', मनोहर पब्लिकेशन नई दिल्ली १६८५, पृ. १०-१४

१४. पांडेय गया, विजय शंकर उपाध्याय, 'सामाजिक सांस्कृतिक मानवशास्त्र', क्राउन पब्लिकेशन, राँची २००५, पृ. ३०-३५

१५. लावनिया एम.एम., 'भारत में जनजातीय समाजशास्त्र', रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर २००६, पृ. २४-२७

१६. हॉवेल एडवर्ड एडक्सन, 'द लॉ ऑफ प्रिमिटिव मैन स्टडी इन कमप्रेटिव लिगल डायनेमिक', हावर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस २००६, पृ. ३-४

१७. मिश्रा पी. के., एच के भट्ट, 'ट्राइब स्टेट एंड इनपावरमेंट द इंडियन एक्पेरियंस', एकेडामी ऑफ एंथ्रोपॉलिजिस्ट, मेदिनीपुर २००११ पृ. १-२

१८. मेलिनोवेस्की ब्रॉनी स्लो, 'क्राइम इन कस्टम इन सेव ऐज सोसाइटी', हरकोर्ट ब्रैन एंड कंपनी यूएस, २०१३ पृ. १०-१२

१६. मजूमदार डी. एन., 'भारतीय जन संस्कृति', अपाला प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ १६८५ पृ. १०-१३

२०. वही पृ. १३-१५

२१. वर्मा उमेश कुमार, 'झारखण्ड का जनजातिय समाज', सुबोध ग्रंथ माला राँची २०११, पृ. ८८-८६

२२. वही पृ. ८८-८६

२३. एक्का विलियम, 'कस्टमरी लॉ अमोंग द उराँव ऑफ बिहार, ट्राइबल इथनोग्राफिक कस्टमरी लॉ एंड चेंज', एडिड बाई कुमार सुरेश सिंह कनसेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली १६६३, पृ. १३६-१३७

२४. कुमार एन., बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर राँची पब्लिसिड पटना, १६७०, पृ. १३७-१३८

२५. कोचर विजय कुमार, 'विलेज ऑग्नाइजेशन आमंग द संथाल', वुलेटिन ऑफ द कल्चर रिसर्च इस्टीट्यूट कलकत्ता वल्यूम-५, नंबर १-२, १६६६ पृ. १०-११

२६. तलवार वीर भारत, 'झारखण्ड के आदिवासियों के बीच', भारतीय

ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, २००८ पृ. ३३-३५
२७. दामोदरन विनिता, 'भारत की जनजातियों के विषय में औपनिवेशिक सोंच', छोटानागपुर के जनजातियों के संबंध में इतिहास लेखन के विभिन्न दृष्टियाँ, संपादक प्रभात कुमार शुक्ल, ग्रंथ शिल्प दिल्ली, २०१२, पृ. ३५२-३५३
२८. सेन अशोक कुमार, 'फ्रॉम भिलेज इलडर टू ब्रिटिश जज कस्टम', कस्टमरी लॉ एंड ट्राइबल सोसायटी, ओरियंट ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली २०१२, पृ. १०-१३
२९. वही पृ. १३-१५
३०. वही १३-१५
३१. दागमवार वसूधा, 'लॉ पावर एंड जस्टिस', सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली १९९२, पृ. ५-८
३२. ग्लुकमैन एम., 'पॉलिटिक्स लॉ एंड रिचुअल इन ट्राइबल सोसायटी', एलडीनी पब्लिकेशन शिकांगो, १९६५, पृष्ट १६-२०
३३. फूज स्टेफन, 'द अबओरिजिनल ट्राइब ऑफ इंडिया', मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, नई दिल्ली १९७३, पृ. १५६-१५७
३४. मुंशी इंदिरा, 'द आदिवासी कोसचन', ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली २०१३, पृ. २-३
३५. वर्मा उमेश कुमार, पूर्वाक्त, पृ. ८८-८९
३६. राय एस.सी., 'द मुण्डाज एण्ड देयर कंट्री', क्राउन पब्लिकेशंस २००४, पृ. ८-६
३७. दिवाकर आर. आर., 'बिहार थ्रू द एजेज काशी प्रसाद जायसवाल इस्टीच्यूट', पटना १९५९, पृ. ३५२-३३४
३८. रॉय ए.सी., 'द मुण्डा एंड देयर कंट्री', पूर्व उच्दृत, पृ. १०-१२
३९. सुन्दर नंदनी अनुवादित, 'गुंडा धुर को तलाश में', पैंगविन बुक्स इंडिया, २००६, पृ. ११-१७
४०. वही पृ. २५-२८
४१. सेन अशोक कुमार, 'संथाल हुल आदिवासी प्रतिरोध संस्कृति', प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, २००६, पृ. २३४-२३५
४२. दुबे एस.सी., 'ट्राइबल हेरिटेज ऑफ इंडिया', विकास पब्लिशिंग, नई दिल्ली, १९७७, पृ. १५-१७
४३. पाल सुधीर एवं रणेन्द्र, 'पंचायती राज : हाशिये से हुकुमत तक', पंचकूला हरियाणा-२००३, पृ. १७-१८
४४. सुन्दर नंदिनी (सॅपाव) 'लीगल ग्राउन्ड', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली २००६, पृ. २२-२५
४५. वही, पृ. २२-२५
४६. वही, पृ. २२-२५
४७. अ अशोक कुमार, 'रिप्रेजेटिंग ट्राइब, द हो ऑफ सिंहभूम अंडर कॅलोनियल रूल', कानसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली २०११, पृ. २५-२६
४८. वही, पृ. २५-२६
४९. वही, पृ. २५-२६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी-जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

वृद्ध ग्रामीण महिलाओं की समाजार्थिक स्थिति

❑ प्रियंवदा पाण्डेय

विगत कुछ वर्षों में भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में ही वृद्ध नागरिकों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। हालांकि, पारम्परिक भारत में वृद्धों को परिवार एवं समाज में ऊँचा स्थान व सम्मान प्राप्त था। किन्तु, वर्तमान में तेजी से बदलती सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों एवं भौतिकता की बढ़ती दुष्प्रवृत्ति ने वृद्धों के प्रति उपेक्षा का वातावरण पैदा कर दिया है और उन्हें सामान्य जीवन जीने हेतु जरूरी आवश्यकताओं तक को पूरा करने के लिए बेबस बना दिया है। वृद्ध पुरूषों की तुलना में वृद्ध महिलाओं की समस्यायें ज्यादा जटिल हैं क्योंकि इन्हें वृद्ध होने के साथ-साथ महिला होने का दंश भी झेलना पड़ता है। यद्यपि हमारे यहाँ वृद्धों के कल्याण हेतु विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संगठन कार्य कर रहें हैं, और वृद्धों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रकार के कानून भी बने हैं, फिर भी वृद्धों की स्थिति काफी दयनीय है और वे संघर्षपूर्ण तथा उपेक्षित जीवन बिता रहें हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत उ०प्र० के कुशीनगर जनपद के ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाली वृद्ध महिलाओं की समाजार्थिक आर्थिक स्थिति को जानने का प्रयत्न किया गया है।

जीवन-प्रत्याशा में वृद्धि विगत शताब्दी की प्रमुख जनांकिकीय उपलब्धि है। विश्व के अधिकांश भागों में एक ओर पोषण की सुधरती स्थिति, स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार तथा सभी क्षेत्रों में शिक्षा और संचार-माध्यमों की पहुँच और दूसरी ओर स्वास्थ्य के प्रति लोगों की बढ़ती जानकारी और चेतना के चलते मृत्युदर में कमी आयी है और जीवन-प्रत्याशा में वृद्धि हुई है।[१] जीवन-प्रत्याशा में वृद्धि के फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में वृद्ध नागरिकों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में विश्व में वृद्ध नागरिकों की संख्या ६० करोड़ के करीब है और यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष २०२१ तक यह संख्या लगभग १०० करोड़ हो जायेगी।[२]

भारत में भी चिकित्सकीय सुविधाओं के विस्तार, खाद्यान्न और पोषण की समुचित उपलब्धता और आर्थिक सुदृढ़ीकरण ने जीवन-प्रत्याशा को बढ़ा दिया है। फलतः विगत चार-पाँच दशकों में भारत में वृद्ध व्यक्तियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। वर्ष १९६१ में भारत में वृद्धों की संख्या २.४ करोड़ थी, जो बढ़कर वर्ष २००१ में ७.७ करोड़ हो गयी।[३] वृद्धों की निरपेक्ष संख्या के संदर्भ में भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश बन चुका है। यहाँ ८० लाख लोग ८० वर्ष की आयु पूरी कर चुके हैं, जबकि लगभग २.९ करोड़ लोग ७० वर्ष से अधिक आयु के हैं।[४]

पारम्परिक भारत में वृद्धों को परिवार और समाज में ऊँचा स्थान और सम्मान प्राप्त था। परिवार की पहचान परिवार के सबसे वृद्ध व्यक्ति के नाम से होती थी। सभी प्रकार के निर्णय वृद्ध लोग ही लिया करते थे। धर्म-ग्रंथों द्वारा व्यक्ति को निर्देश प्राप्त था कि वह अपनी माता, अपने पिता और अपने गुरू को देवताओं के समतुल्य समझे। वृद्ध माता-पिता की देख-रेख करना पुत्रों का धार्मिक और सामाजिक दायित्व था। पुत्र को माता-पिता की भौतिक जरुरतें ही नहीं, बल्कि उनकी मानसिक और भावनात्मक जरूरतों का भी पूरा करना होता था।[५] स्वतंत्र्योत्तर भारत में, ब्रिटिश कालीन भारत से ही प्रारम्भ होकर, औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण और प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के आधीन लोगों की जीवन-शैली और मूल्यों में मूलभूत परिवर्तन होने लगा है। इन परिवर्तनों ने वृद्धों के पारम्परिक स्थान को बुरी तरह प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त, आजीविका की तलाश और शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से युवा सदस्यों द्वारा घर छोड़कर गाँव से नगर और नगर से महानगर की ओर प्रस्थान करने से घर में वृद्ध सदस्यों के साथ रहकर उनकी देख-रेख करने वाले सदस्य कम हो गये।[६] इतना ही नही, महिलाओं में भी शिक्षा के प्रसार के कारण युवा महिलाओं ने भी फैक्टरियों, कार्यालयों व अन्यत्र नौकरियाँ करने के लिए घर से बाहर निकलना और घर से दूर जाना प्रारम्भ कर दिया। इन नयी परिस्थितियों ने बड़ी संख्या में वृद्धों को घर में कुछ समय के लिए अकेले रहने अथवा नितान्त अकेले रहने के लिए बाध्य कर दिया। वृद्धों के बीमार होने की दशा में भी उनकी देखभाल के लिए परिवार में युवा सदस्यों की अनुपलब्धता एक बड़ी समस्या के रूप में सामने आयी है।[७] काल्डवेल के अनुसार, आधुनिकता और नगरीकरण ने घर में

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)

खर्च होने वाली आय को बच्चों के पक्ष में कर दिया है। बच्चों के पालन-पोषण और उनकी शिक्षा पर होने वाले व्यय में अत्यधिक वृद्धि ने वृद्धों पर होने वाले व्यय को काफी कम कर दिया है।[८] अतः सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों ने भारत में वृद्धों की दशा को बुरी तरह प्रभावित किया है।

वृद्ध जनसंख्या का लगभग ४८.२ प्रतिशत महिलायें हैं।[९] सामाजिक-सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से भारत में महिलाओं की स्थिति कमजोर वर्ग की बनी हुई है। समाजशास्त्रीय शोधों से भी यह प्रमाणित होता है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनके साथ भेद-भाव होता है। उनके स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही बरती जाती है। वे पौष्टिक भोजन, आर्थिक सुरक्षा और आराम से भी वंचित रहती हैं।[१०] इन कारणों से महिलाओं का वृद्धावस्था का जीवन और भी कठिन हो जाता है। महिलाओं की जीवन प्रत्याशा पुरूषों से अधिक होती है और महिलायें सामान्यतः अपनी आयु से अधिक आयु वाले पुरुष से विवाह करती हैं। अतः अधिकतर वृद्ध महिलायें विधवा भी होती हैं।[११] इस प्रकार महिलाओं को वृद्धावस्था में तीन निर्योग्यताओं का सामना करना पड़ता है- वृद्धावस्था का, स्त्री होने का और विधवावस्था का।

वृद्धों की बिगड़ती सामाजिक और आर्थिक स्थिति को दृष्टिगत रखकर भारत सरकार ने उन्हें सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करने हेतु अनेक योजनाओं, यथा-अन्नपूर्णा योजना (२००१), वरिष्ठ नागरिक बचत योजना (२००४), रिवर्स मारगेज योजना (२००७), वरिष्ठ मेडिक्लेम योजना (२००८), इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (२००८) को प्रारम्भ किया है।[१२] इसके अतिरिक्त वृद्धों को यात्रा के दौरान किराये में छूट, वरीयता के आधार पर आरक्षण, प्रमुख अस्पतालों में पृथक चिकित्सकीय विभाग और निःशुल्क अथवा रियायती दर पर चिकित्सा की सुविधा भी उपलब्ध करायी गयी है। विपन्न वृद्ध नागरिकों के लिए निःशुल्क आवास की सुविधा और उनके बचत खातों में १ प्रतिशत अधिक ब्याज देने जैसे प्रावधान भी किये गये हैं।[१३] वृद्ध और उपेक्षित माता-पिता के हितों को संरक्षित करने हेतु भारत सरकार द्वारा ३१ दिसम्बर, २००७ को 'माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिक (देखभाल एवं कल्याण) विधेयक' को पारित किया गया। इस विधेयक के द्वारा बच्चों को माता-पिता की देखभाल एवं संरक्षण के लिए कानूनी रूप से उत्तरदायी बनाया गया है।[१४] उपर्युक्त सरकारी प्रयत्नों के अतिरिक्त अनेक गैर सरकारी संगठन भी वृद्धों के हितों के संरक्षण हेतु कार्य कर रहें हैं। परन्तु, इन योजनाओं और प्रयत्नों के बावजूद वृद्धों की स्थिति काफी दयनीय है।

उद्‌देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्‌देश्य हैं-

१. वृद्ध ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक - आर्थिक स्थिति का पता लगाना।
२. परिवार में वृद्ध महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करना।
३. सरकार द्वारा वृद्धों के कल्याण हेतु चलायी जा रही योजनाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

शोध प्रारूप :- प्रस्तुत अध्ययन में 'गवेषणात्मक एवं वर्णनात्मक' शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जनपद में स्थित कसया विकास खण्ड का चयन दैव निदर्शन की विधि द्वारा किया गया। पुनः कसया विकास खण्ड में सम्मिलित ग्राम सभाओं में से सबया ग्राम सभा का चयन भी दैव निदर्शन की विधि द्वारा ही किया गया। अन्ततः चयनित ग्राम सभा के अन्तर्गत आने वाले हिन्दू परिवारों की २०० वृद्ध महिलाओं का चयन उद्‌देश्यपूर्ण निदर्शन की विधि द्वारा किया गया। यहाँ वृद्ध महिलाओं से आशय उन महिलाओं से है जिनकी आयु ६० वर्ष अथवा उससे अधिक है। इसके पश्चात् साक्षात्कार अनुसूची द्वारा उत्तरदात्रियों से जानकारी प्राप्त की गई।

उपलब्धियाँ :- अध्ययन की प्रमुख उपलब्धियाँ निम्नवत् हैं-

१. सामाजिक-आर्थिक स्थिति :- तालिका संख्या-१ से स्पष्ट है कि ६०-६९ आयु समूह की ५३.५ प्रतिशत महिलायें, ७०-७९ आयु समूह की ३४.५ प्रतिशत महिलायें तथा ८० वर्ष या इससे अधिक आयु की १२ प्रतिशत महिलायें हैं। उच्चतर जाति की महिलाओं की संख्या ५२ प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग में सम्मिलित जातियों की महिलाओं की संख्या ३५.५ प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति की महिलाओं की संख्या १२.५ प्रतिशत है। अध्ययन में शामिल वृद्ध महिलाओं में मात्र ९.५ प्रतिशत महिलायें ही शिक्षित हैं, जबकि अशिक्षित महिलाओं की संख्या ९०.५ प्रतिशत है। विधवा महिलाओं की संख्या ४६.५ प्रतिशत है। अध्ययन में शामिल वृद्ध महिलाओं में मात्र ३१ प्रतिशत महिलाओं के पास ही अपनी निजी आय थी, शेष ६९ प्रतिशत महिलायें अपनी दिन-प्रतिदिन की आर्थिक आवश्यकताओं के लिए परिवार के अन्य सदस्यों पर निर्भर थीं।

तालिका संख्या-१

उत्तरदात्रियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति

सूचक	संख्या	प्रतिशत
आयु		
६०-६६	१०७	५३.५
७०-७६	६६	३४.५
८०+	२४	१२
योग-	२००	१००
जाति-		
उच्चतर जाति	१०४	५२
अ०पि०व० में सम्मिलित जाति	७१	३५.५
अनुसूचित जाति	२५	१२.५
योग-	२००	१००
शैक्षिक स्थिति-		
शिक्षित	१६	६.५
अशिक्षित	१८१	६०.५
योग-	२००	१००
वैवाहिक स्थिति		
विवाहित	१०७	५३.५
विधवा	६३	४६.५
योग-	२००	१००
निजी आय		
है	६२	३१
नही है	१३८	६६
योग-	२००	१००

२. उत्तरदात्रियों के प्रति परिवार के सदस्यों का व्यवहार :- उत्तरदात्रियों से यह जानकारी प्राप्त की गई कि उनके परिवार के सदस्य उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं, प्राप्त जानकारी को निम्नांकित तालिका में प्रदर्शित किया गया है-

तालिका संख्या-२

उत्तरदात्रियों के प्रति परिवार के सदस्यों का व्यवहार

परिवार के सदस्यों का व्यवहार	संख्या	प्रतिशत
अच्छा	८७	४३.५
खराब	११३	५६.५
योग-	२००	१००

तालिका से स्पष्ट है कि ५६.५ प्रतिशत वृद्ध महिलाओं के प्रति उनके परिवारे के सदस्यों का व्यवहार अच्छा नही है। मात्र ४५.५ प्रतिशत महिलाओं ने यह माना कि उनके परिवार के सदस्य उनके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं।

३. महत्वपूर्ण पारिवारिक निर्णयों में उत्तरदात्रियों की भूमिकाः- तालिका संख्या ३ से यह स्पष्ट है कि ७७ प्रतिशत वृद्ध महिलायें ऐसी हैं जिनके परिवार में महत्वपूर्ण निर्णयों को लेते समय उनकी राय नही ली जाती। मात्र २३ प्रतिशत वृद्ध महिलायें ऐसी हैं जिनसे उनके परिवार के सदस्य महत्वपूर्ण निर्णयों को लेते समय उनकी राय लेते हैं।

तालिका संख्या-३

पारिवारिक निर्णयों में उत्तरदात्रियों की भूमिका

पारिवारिक निर्णयों में भूमिका	संख्या	प्रतिशत
राय ली जाती है	४६	२३
राय नही ली जाती है	१५४	७७
योग-	२००	१००

ओम प्रकाश भारतीय[१५] ने भी अपने अध्ययन में यह पाया कि अधिकांश वृद्ध महिलाओं को उनके परिवार में महत्वपूर्ण निर्णयों में शामिल नही किया जाता।

४. वृद्धावस्था पेंशन योजना के सम्बंध में जानकारी :- तालिका संख्या ४ से स्पष्ट है कि मात्र ३६.५ प्रतिशत वृद्ध महिलाओं को ही वृद्धावस्था पेंशन योजना के विषय में जानकारी थी, शेष ६०.५ प्रतिशत वृद्धावस्था पेंशन योजना के विषय में जानकारी नही थी। एस.शिवा. राजू१६ ने नगरीय क्षेत्र पर आधारित अपने अध्ययन में यह पाया कि मात्र ४७.७ प्रशिशत वृद्धों को ही वृद्धावस्था पेंशन योजना के विषय में जानकारी थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि नगरीय क्षेत्रों में भी अधिकांश वृद्ध व्यक्तियों को विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के विषय में जानकारी नही है।

तालिका संख्या-४

वृद्धावस्था पेंशन योजना के सम्बंध में जानकारी

वृद्धावस्था पेंशन योजना के विषय में जानकारी	संख्या	प्रतिशत
जानकारी है	७६	३६.५
जानकारी नही है	१२१	६०.५
योग-	२००	१००

निष्कर्ष :- प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में वृद्ध महिलाओं की स्थिति अत्यन्त सोचनीय है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश वृद्ध महिलायें अशिक्षित हैं। इनके पास अपनी कोई निजी आय नही है जिसके कारण इन्हें अपनी दिन-प्रतिदिन की आर्थिक आवश्यकताओं के लिए परिवार के अन्य सदस्यों पर निर्भर रहना पड़ता है। वृद्ध महिला के प्रति परिवार के सदस्यों का व्यवहार सामान्यतः अच्छा नही होता।

परिवार में महत्वपूर्ण निर्णयों को लेते समय इनकी राय नही ली जाती। यद्यपि सरकार ने वृद्धों के कल्याण एवं उनकी स्थिति में सुधार के लिए विभिन्न योजनाएँ चला रही है, अधिकांश वृद्ध महिलाएं इन योजनाओं से अनभिज्ञ हैं। अतः इनसे लाभ उठा पाने में असमर्थ हैं।

संदर्भ

१. अग्रवाल, उमेश चन्द्र, 'बढ़ते बुजुर्ग, घटती सुरक्षा' कुरुक्षेत्र, वर्ष ५५, अंक-१२, अक्टूबर २००६, पृ०-५४
२. वही, पृ०-५४
3. Irudaya Rajan, S., "Population Ageing and Health in India", Satam Udyog Parel, Mumbai, July, 2006, P.1(www.cehat.org/humanrights/rajan.pdf accessed on 14/04/2010)
4. ibid, P.2
5. Reddy, P.H., "The Health of the Aged in India", Health Transition Review, Supplement to Volume 6, 1996, P.234
6. ibid, p. 234
7. ibid, P.235
8. Caldwell, referred Reddy, P.H., op.cit. P.235
9. De, J.R., "Management of Old Age- A Critical Problem in Indian Perspective Across Culture and Time". (www.esocialsciences.com/data/eSSresearch papers/eSS WPArtical 200972717815.doc accessed on 21/10/2009)
10. Manda, Pankaj Kumar, et al, "Disability Among Geriatric Females: An Uncared Agenda in Rural India", Sudanese Journal of Public Health, October 2009, Vol. 4, No. 4, P.379
11. Irudaya Rajan, S., op. cit., P.7
12. Prakash, S., "Policies and Programmes on Population Ageing: Indian Perspective (www.unescays.org/ESID/Psis/meetings/Ageing-change-family/India.pdf. accessed on 19/04/2010); vxzoky] mes'k pUnz] iwoksZDr] i`0 56
१३. वही, पृ० ५६
१४. वही, पृ० ५६
१५. भारतीय, ओम प्रकाश, 'वृद्ध महिलाओं की सामाजिक समस्याएँ', कला प्रकाशन, वाराणसी, २०१०, पृ० ६२
16. Raju, S. Siva, "Health Status of the Urban Elderly: A Medico-Social Study", B.R. Publishing Corporation, Delhi, 2002, P.271

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी-जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

अलबेरूनी कालीन भारतीय समाज में अस्पृश्यता : एक अध्ययन

❑ राजेश कुमार

पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में चारों वर्णों के बाद अस्पृश्य को स्थान दिया गया था। ये तत्कालीन समाज के वे लोग हैं जो सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से अन्य वर्णों से पिछड़े हुए थे। इस काल में उनकी संख्या में वृद्धि हुई थी। इनकी दयनीय स्थिति का विवरण अलबेरूनी के अलावा अन्य समकालिक मुस्लिमों एवं हिन्दुओं के स्त्रोतों में मिलता है। प्रस्तुत शोध लेख में अलबेरूनी कालीन भारतीय समाज में अस्पृश्यता की स्थिति को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

प्राचीन भारत की सामाजिक संरचना में चारों वर्णों के बाद परम्परागत रूप से 'अन्त्यज', 'अस्पृश्य' या 'अछूत' को स्थान दिया गया था। ये चारों वर्णों से अलग माने जाते थे। चूंकि वे अस्पृश्य थे, इसलिए उन्हें छूना, उनके साथ उठना-बैठना, खाना-पीना तथा अन्य सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखे जाते थे। वे मन्दिरों में प्रवेश नहीं कर सकते थे। जिस तालाब, कुएँ और नदी को उच्च वर्ण के लोग प्रयोग में लाते थे, उन्हें वे प्रयोग में नहीं ला सकते थे। इस प्रकार उन्हें अनेक प्रकार के प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था। अस्पृश्यता समाज की वह व्यवस्था है जिसके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को या एक समाज दूसरे समाज को परम्परा के आधार पर छू नहीं सकता, अगर छूता है तो स्वयं अपवित्र हो जाता है और इस अपवित्रता से छूटने के लिए उसे कई प्रकार के प्रायश्चित करने पड़ते हैं।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में विवरण दिया गया है कि अस्पृश्यता की उत्पत्ति में दूषित या मलिन कार्य एवं आदतें उत्तरदायी कारक रहे हैं[1] और इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजियन एंड इथिक में माना गया है कि अस्पृश्यता की उत्पत्ति के लिए कुछ घटनाएं उत्तरदायी रही हैं जैसे दीक्षा, यौवनारंभ, विवाह, सहवासक्रिया और मृत्यु या वे व्यक्ति जो मलिन कार्यों में व्यस्त हों।[2]

मजूमदार के अनुसार यहां के निवासियों की संस्कृति एवं प्रजातीय विशेषताएं आर्य लोगों से बिल्कुल अलग थीं, इसलिए उनका आपस में घुल-मिल पाना संभव नहीं हुआ। अतः पवित्रता की धारणा और धार्मिक कर्मकाण्ड आदि ने इन दोनों प्रजातीय समूहों की पृथकता को और भी अधिक स्थिर बनाने में मदद की जिससे इनमें सामाजिक दूरियां बढ़ती गयीं।[3] समाजशास्त्री फिक के अनुसार अस्पृश्यता की उत्पत्ति का एक कारण आदिम जातियों का संस्कारहीन जीवन था, क्योंकि वे मुख्यतया शिकारी और बहेलिये के रूप में जीवन बिताते थे और उनकी तुलना में ब्राह्मण समाज के लोग धातुकर्म और कृषि का ज्ञान रखते थे तथा नगर जीवन का विकास कर रहे थे।[4]

परन्तु समाजशास्त्री निरूपण विद्यालंकार के अनुसार अस्पृश्यता सम्बन्धी जो विधान बने थे, वे किसी जाति सम्बन्धी विद्वेष के परिणाम नहीं थे, अपितु उनके पीछे मनोवैज्ञानिक या धार्मिक धारणाएं एवं स्वच्छता सम्बन्धी विचार थे क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति के लिए शरीर एवं मन से पवित्र एवं स्वच्छ होना अनिवार्य माना जाता था। अतः शारीरिक शुद्धि रखने के लिए मलिन कार्य करने वाले तथा उन्हीं के सदृश उन सभी प्रकार के व्यक्तियों और पदार्थों के स्पर्श से बचने के लिए कहा गया और उनका स्पर्श कर लेने पर स्नान का विधान किया गया है। यही कारण है कि हिन्दू के घर में प्रत्येक व्यक्ति के लिए मासिक धर्म के समय उसकी माता, पुत्री, बहिन तथा पत्नी आदि सभी स्त्रियां अस्पृश्य मानी जाती हैं। एक व्यक्ति अपने पुत्र को भी, जिसका यज्ञोपवीत न किया गया हो, भोजन के समय स्पर्श नहीं करता। इस प्रकार अस्पृश्यता के मूल में जो कारण निहित थे वे मात्र धार्मिक तथा क्रिया सम्बन्धी थे। लेकिन कालान्तर में अस्पृश्यता ने अपने मूल भाव को छोड़कर सामान्य अस्पृश्यता का रूप धारण कर लिया और वह हिन्दू समाज के लिए अभिशाप बन गयी। वर्तमान समय में तो स्थिति यहाँ तक आ गयी कि कोई जन्मना उस जाति से सम्बन्धित है, जो व्यवहार रूप में अस्पृश्य समझी जाती है तो वह अस्पृश्य समझा जाता है, चाहे वह उस व्यवसाय को करता हो या न करता हो।[5] इस प्रकार कह सकते हैं कि प्राचीन भारत में अस्पृश्यता की उत्पत्ति में अनेक तत्वों ने अपना योगदान दिया।

❑ एसिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

लेकिन इनमें प्रजातीय, धार्मिक और सामाजिक कारण अधिक महत्वपूर्ण थे।

वैदिक ग्रंथों से अस्पृश्यता सम्बन्धी कोई जानकारी नहीं मिलती लेकिन सूत्र साहित्य से इस व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। कौटिल्य ने अनेक वर्णसंकर जातियों का उल्लेख करते हुए उन्हें 'शूद्रसधर्मा' कहा है परन्तु उन्होंने साथ ही चाण्डालों की अत्यन्त हीन दशा का वर्णन किया है।[६] मौर्योत्तर काल में आकर अस्पृश्यता का और अधिक विस्तार हुआ और अनेक जातियां इस श्रेणी में जुड़ती गयीं। गुप्तकालीन साहित्य से भी इस विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। यद्यपि इस काल में शूद्रों की दशा में कुछ सुधार हुआ किन्तु अस्पृश्यों की दशा में कोई परिवर्तन नहीं आया और उनकी दशा में निरन्तर गिरावट आती गयी।

पूर्व मध्यकाल में आकर न केवल अस्पृश्य जातियों की संख्या में वृद्धि हुई अपितु इस वर्ण में शूद्र वर्ण को भी सम्मिलित कर लिया गया और यह मत प्रतिपादित किया गया कि शूद्रों का स्पर्श करने पर भी द्विज़जाति को स्नान करना चाहिए। इस काल में अनेक संकर जातियों की गणना भी अस्पृश्यों की कोटि में कर ली गई।

अत्रिसंहिता के अनुसार, चाण्डाल, पतित, म्लेच्छ, मद्यभाण्ड, रजस्वल तथा श्वपाक के छू जाने पर बिना स्नान किये भोजन नहीं करना चाहिए, यदि भोजन करते समय स्पर्श हो जाये तो उसे भोजन करना बंद कर देना चाहिए और भोजन को फेंककर तुरन्त स्नान करना चाहिए।[७] अपरार्क द्वारा उद्‌धृत याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार चाण्डाल, पुक्कस, म्लेच्छ, भिल्ल, पारसी तथा महापातकियों के छू जाने पर सर्वस्व स्नान करना चाहिए।[८] चीनी यात्री हुएन्सांग के अनुसार कसाई, मछुआरे, मेहतर, जल्लाद तथा नट आदि के निवास स्थानों पर पहचान के लिए चिह्न लगा दिये जाते थे। वे शहर से बाहर रहने के लिए बाध्य किये जाते थे और गांव में आते-जाते बाई ओर दबकर चलते थे।[९] वैजयन्तीकोश (ग्यारहवीं सदी) में धोबी, चमार, नट, वरूड़, कैवर्त्त, धीवर, भेद और भील आदि की गणना अन्त्यज जातियों में की गई है।[१०] इनमें वेद, वरूड़ और भील तो आदिवासी थे ही, शेष अन्य इसलिए अस्पृश्य समझे गये कि वे निम्न व्यवसाय करके जीविकोपार्जन करते थे। बृहद्‌धर्मपुराण में निम्न संकर जातियों की संख्या ४१ दी गई है।[११] कल्हण तथा कुल्लूकभट्ट ने भी ऐसी अनेक जातियों का उल्लेख किया है।[१२] इस प्रकार स्मृतिकारों ने हिन्दू समाज के एक बड़े भाग को अस्पृश्य घोषित कर दिया। इस काल में भी चाण्डाल बहुत निम्न स्तर का कार्य करते थे। हर्षवर्धन के समय में आने वाले विदेशी यात्री हुएन्सांग ने लिखा है कि चाण्डाल का प्रमुख कार्य ऐसे व्यक्तियों के शवों को ले जाना था जिनके कोई सम्बन्धी न हो, अपराधियों को फांसी देना, पशुओं को मारकर उनका मांस बेचना तथा विष्ठा उठाना आदि थे। वे नगर से बाहर निवास करते थे, जहाँ उनके आवासों पर विशेष प्रकार के चिह्न बने होते थे।[१३] हेमचन्द्र ने भी लिखा है कि चाण्डाल लकड़ी की आवाज करते हुए चलते थे ताकि उच्च वर्ण के लोग उनसे छूने से बच जाये।[१४] ग्यारहवीं सदी के लेखक अलूबेरूनी के अनुसार गांव की सफाई तथा अन्य प्रकार की गंदगियों को साफ करना इनका प्रमुख कार्य था। अनेक अरबी लेखकों ने भी चाण्डालों की निम्न अवस्था का उल्लेख किया है।[१५]

अलूबेरूनी ने निम्न जातियों के बारे में जो जानकारी दी है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अन्य किसी भी पूर्वमध्यकालीन समाजशास्त्री और विदेशी यात्री ने तत्कालीन समस्त निम्न जातियों का इतने विस्तार से उल्लेख नहीं किया है। अलूबेरूनी के अनुसार शूद्रों के पश्चात् वे अन्त्यज थे जो अनेक प्रकार की सेवाएं करते थे। ये किसी जाति के अन्तर्गत नहीं आते बल्कि किसी विशेष दस्तकारी अथवा व्यवसाय के सदस्य माने जाते थे। ये दो वर्गों में विभाजित थे, एक उच्च वर्ग और दूसरा निम्न वर्ग। उच्च वर्ग में आठ व्यवसायिक समूह के लोग थे जो परस्पर विवाह नहीं करते थे। इनमें धोबी, मोची, मदारी, टोकरी और ढाल बनाने वाले, नाविक, मछुआरे, जंगली पशुओं तथा पक्षियों का शिकार करने वाले (शिकारी) तथ जुलाहे सम्मिलित थे। चारों वर्णों के लोग जहाँ रहते थे, वहां ये नहीं रहते, अपितु उनके निवास स्थान गाँवों और नगरों से बाहर होते थे। दूसरे वर्ग में हादीज, स्वपाक, डोम, चाण्डाल और वधतौ आते थे। इनके जिम्मे मलिन कार्य होते थे, जैसे गांव की सफाई, बुहराई तथा अन्य सेवाएं। ये मिलकर एक पूर्ण वर्ण माने जाते थे और केवल अपने व्यवसाय से ही जाने जाते थे।[१६]

इनमें चाण्डाल तथा डोम वाद्य यंत्र बजाते थे। चाण्डालों तथा डोमों के व्यवसायों की प्रकृति समान थी। अलूबेरूनी भी कहता है कि डोम वीणा बजाते तथा गाते थे।[१७] राजतरंगिणी स्पष्ट करती है कि इनका उस समय व्यवसाय गाना बजाना था। हादीज डोम से बहुत अलग थे, उनका कार्य संभवतः कृषि मजदूरी करना था।[१८] चाण्डाल तथा डोम के व्यवसाय से स्वपाक की स्थिति अलग थी उनका (स्वपाक) व्यवसाय में देह सम्बन्धी दण्ड (अपराधी को) देना शामिल था। विष्णुधर्मसूत्र के अनुसार चाण्डालों का व्यवसाय दोषियों को राजा की आज्ञा से

फांसी देना का था।[१९]

इस तरह से लोगों का उनके जाति से सम्बन्ध को उनके व्यवसाय की प्रकृति से जोड़ा गया था। अन्त्यज का पहला समूह, जो अलबेरूनी द्वारा दूसरे समूह की तुलना में अपनी अच्छी स्थिति में बताया गया था। किसान किसी भी जाति में शामिल नहीं थे, ये गांव के बाहर रहते थे, लेकिन इनका आवास ऊपर के मुख्य चारों वर्णों के पास होते थे। अल्तेकर ने बताया है कि उस समय सभी अन्त्यज एक समान स्थिति में नहीं थे तथा ऐसा प्रतीत होता है कि बाजीगर, टोकरी बनाने वाले, नाविक, मछुवारे तथा शिकारियों आदि ने एक उप-अस्पृश्यवर्ग का निर्माण किया था।[२०] उनके उप-विभाजन तथा वैवाहिक सम्बन्धों पर प्रतिबंध से उनकी अस्पृश्यता का नाममात्र से रूपांतरित हुई थी।[२१]

अतः प्रारम्भ में अस्पृश्यता का जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं था और जो व्यक्ति घृणित एवं मलिन कार्यों में लगे थे वे ही अस्पृश्य माने जाते थे क्योंकि धर्म सम्बन्धी कार्यों के लिए पवित्रता को आवश्यक माना जाता था, लेकिन कालान्तर में इसका आधार जन्म हो गया और कुछ जातियों के लोग चाहे वे मलिन कार्य करें या न करें, जन्म से ही अस्पृश्य माने जाने लगे। पूर्व मध्यकाल तक इनके नियमों के संदर्भ में कोई बदलाव नहीं था। उन्हें छूत के कठोर बंधन में रखा गया था तथा समाज में उन्हें गांव से बाहर रहने के लिए मजबूर किया जाता था। इन्हें समाज के उच्च्व वर्गों के सम्पर्क में आने की आशा नहीं थी। अलबेरूनी एवं अन्य मुस्लिम लेखकों ने इनकी दयनीय स्थिति को सही दर्शाया था।

सन्दर्भ

१. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, (चिकागो, १९७२) वाल्यूम XXII, पृ. ७६८
२. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजियन एंड इथिक, एडिट बॉय हेस्टिंगस, जे न्यूयार्क, १९१८, वाल्यूम X, पृ. ४०५-५०४
३. मजूमदार, धीरेन्द्रनाथ, 'रेसेज एंड कल्चर्स ऑफ इण्डिया', युनिवर्सल पब्लिकेशन, इंदौर, १९४४, पृ. ३२७
४. फिक, आर, 'दि सोशल आर्गेनाइजेशन ऑफ नार्थ ईस्टर्न इण्डिया', पृ. ३२४
५. विद्यालंकार, निरूपण, भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति, पृ. २८५-८७
६. अर्थशास्त्र, ३१७
७. अत्रिसंहिसा, २६७-६८
८. अपरार्क, पृ. १२९३
९. वाटर्स, टी, 'आन युवान च्वांग ट्रेवल्स इन इण्डिया, (६२९-६४५ई)', रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लंदन, खण्ड एक, १९०४, प्रथम संस्करण (भारत), मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, १९६१, पृ. १४७
१०. वैजयन्तीकोश, पृ. ८२, १२१
११. बृहदधर्मपुराण, २/१३-१४
१२. राजतरंगिणी, ८, २४०७, कूल्लूकभट्ट, मनुस्मृति पर टीका, १०/३१
१३. वाटर्स, टी, पूर्वोक्त, खण्ड एक, पृ. १४७
१४. अपरार्क, याज्ञवल्क्यस्मृति पर टीका, ३/२१२
१५. सचाऊ, एडवर्ड सी, 'अलुबेरूनीज इण्डिया', भाग एक, (पुनर्मुद्रित) लो प्राइज पब्लिकेशन, दिल्ली, २००३, पृ. १०१
१६. वही, पृ. १०१
१७. शर्मा, दशरथ, 'अर्ली चौहान डायनेस्टीज', मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, १९७५, पृ. २५१-५२
१८. सचाऊ, एडवर्ड सी, पूर्वोक्त, भाग एक, पृ. १०१
१९. विष्णुधर्मशास्त्र, १६.११
२०. अल्तेकर, ए.एस., 'दी पोजिशन ऑफ वूमैन इन हिन्दू सिविलाइजेशन', मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६२, पृ. ३२३
२१. वैद्य, सीवी, 'हिस्ट्री ऑफ मिडिवल हिन्दू इण्डिया', कास्मो पब्लिकेशन, पूना, १९२६, पृ. ३९३

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

आचार्य नरेन्द्र देव के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार : एक अध्ययन

❑ डॉ० आनन्द प्रकाश

आचार्य नरेन्द्र देव एक समाजवादी विचारक एवं प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानी थे, जो १९२१, १९३०, १९४० और १९४२ के संघर्षों में अग्रणी रहे और जेल भी गये। वे भारतीय समाजवादी आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में थे। उन्होंने १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के स्थापना सम्मेलन की अध्यक्षता की। शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका अप्रतिम योगदान रहा है। काशी विद्यापीठ के साथ वे बराबर जुड़े रहे और लखनऊ व बनारस विश्वविद्यालयों के उपकुलपति भी रहे। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, अखिल भारतीय राष्ट्रीय भाषा परिषद, संस्कृत परिषद जैसी संस्थाओं को भी अपना अमूल्य योगदान दिया। वे विख्यात मार्क्सवादी विचारक तो थे ही, भारतीय संस्कृति के भी विख्यात विद्वान थे। उनका "बौद्ध धर्म और दर्शन" नामक ग्रन्थ विश्व प्रसिद्ध है। उनके बहुत से निबन्ध उनकी प्रसिद्ध पुस्तक ''राष्ट्रीयता और समाजवाद'' में संकलित हैं। उनके इन्हीं विचारों, लेखों और भाषणों ने ही हजारों युवजनों को समाजवाद की प्रेरणा दी। प्रस्तुत लेख आचार्य नरेन्द्र देव के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों को उजागर करता है।

सामाजिक व राजनीतिक जीवन में किसी एक व्यक्ति की भूमिका को निरूपित करना तथा उसे चित्रित करके सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख रखना स्वयं ओजपूर्ण एवं सशक्त कार्य है। इस उपक्रम में उसे अनेक कठिनाइयों और शारीरिक कष्टों को भी सहन करना पड़ता है तब कही जाकर उसे सामाजिक व राजनीतिक सुधार की प्रथम सीढ़ी मिलती है, कभी-कभी तो इस कार्य की पूर्ति में उसका सम्पूर्ण जीवन तिरोहित हो जाता है। आचार्य नरेन्द्र देव ऐसे ही एक समाजवादी विचारक एवं प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानी थे, जो १९२१, १९३०, १९४० और १९४२ के संघर्षों में अग्रणी रहे और जेल भी गये। वे उत्तर प्रदेश कांग्रेस के मंत्री, अध्यक्ष और अखिल भारतीय वर्किंग कमेटी के सदस्य भी रहे। वे भारतीय समाजवादी आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में थे। उन्होंने १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के स्थापना सम्मेलन की अध्यक्षता की। साथ ही वे कुशल सांसद थे और १९३७-१९४६, १९४६-१९४८ में विधान सभा के सदस्य तथा १९५२-१९५६ में राज्य सभा के सदस्य रहे। वे १९४६ में सोशलिस्ट पार्टी के प्रथम राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचन हुए। शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका अप्रतिम योगदान रहा है। काशी विद्यापीठ के साथ वे बराबर जुड़े रहे और लखनऊ व बनारस विश्वविद्यालयों के उपकुलपति भी रहे। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, अखिल भारतीय राष्ट्रीय भाषा परिषद, संस्कृत परिषद जैसी संस्थाओं को भी अपना अमूल्य योगदान दिया। वे विख्यात मार्क्सवादी विचारक तो थे ही, भारतीय संस्कृति के भी विख्यात विद्वान थे। उनका "बौद्ध धर्म और दर्शन" नामक ग्रन्थ विश्व प्रसिद्ध है। उन्होंने फ्रांस और रूस की क्रान्तियों, मार्क्सवाद, समाज व संस्कृति, शिक्षा प्रणाली, भूमि सुधारों और तात्कालिक राजनीति पर बहुत सार गर्भित लेख लिखे हैं। उनके बहुत से निबन्ध उनकी प्रसिद्ध पुस्तक ''राष्ट्रीयता और समाजवाद'' में संकलित है। उनके इन्हीं विचारों, लेखों और भाषणों ने ही हजारों युवजनों को समाजवाद की प्रेरणा दी।[1]

नरेन्द्र देव बौद्ध दर्शन के प्रकांड पण्डित थे। उन्हें संस्कृत तथा पाली भाषा का अच्छा ज्ञान था।[2] वे समाजवादी विचारक, बहुभाषाविद् और शिक्षाविद् होने के साथ-साथ रचनाकार भी थे। नवम्बर, १९२६ में "काशी विद्यापीठ पत्रिका" के अंकों में उनके दो महत्वपूर्ण लेख छपे इनमें एक था, "रूस की एशिया सम्बन्धी नीति" तथा दूसरा था, "ब्रिटिश मजदूर सरकार और भारत"। उनके अध्ययन का दायरा बहुत बड़ा था। हिन्दी, संस्कृत, पाली, उर्दू, अंग्रेजी व फ्रेंच के अनेक ग्रन्थों का उन्होंने अनुशीलन और मनन किया था। उनके मतानुसार उपनिषद् संसार के अलभ्य रत्नों में एक है। भारत में जिन विशिष्ट विचारधाराओं ने जन्म लिया है उन सबका मूल उद्गम स्थान उपनिषदों में है। उपनिषदों के आदर्श वाक्यों में गांभीर्य, मौलिकता और उत्कर्ष पाया जाता है तथा वे प्रशस्त, पुनीत व उदात्त भावों से पूर्ण हैं। उपनिषद् वे स्तम्भ हैं जिन पर प्रतिष्ठित संस्कृत विद्या और भारतीय संस्कृति का दीपक सदा प्रकाश देता रहा है।[3]

नरेन्द्र देव की मान्यता है कि साहित्यकार को अपने सामाजिक सरोकारों को सामने रखकर रचना करनी चाहिए। उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि मानव मात्र की एकता और शोषण से मुक्ति

❑ इतिहास विभाग, डी०एस०बी० परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

प्रगतिशील साहित्य का ध्येय है। इसलिए साहित्यकार को अतीतजीवी न होकर समसामयिकता से जुड़ कर, नयी विचारधाराओं तथा नये मूल्यों को अपनाना चाहिए। लेकिन इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि अपनी सांस्कृतिक विरासत को पुरानी चीज कह कर छोड़ दिया जाय। प्रगतिशील साहित्यकार इस ऐतिहासिक सत्य को हृदयगंम करते हुए अतीत का सर्वथा परित्याग नहीं करता है। मनुष्य स्वभावतः परम्परापूजक होता है। जो जाति जितनी प्राचीन होती है, उसके भीतर अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता की भावना उतनी ही अधिक बद्धमूल होती है। अतः भारत जैसे प्राचीन देश में हमें नवीन संस्कृति के निर्माण की दृष्टि से अतीत के साधक एवं समर्थक तत्वों का उपयोग करना ही चाहिए।[४]

नरेन्द्र देव के दर्शन का लेखकीय अवदान अत्यन्त मूल्यवान है। इन्हें देखने से आश्चर्य होता है कि उनके जैसा व्यस्त व्यक्ति इतने गम्भीर और विस्तृत रचनाकर्म के लिए इतना समय कैसे निकाल सका। लेकिन वास्तविकता यह है कि वह और भी बहुत कुछ लिखना चाहते थे जो अपनी राजनीतिक व्यस्तता व स्वाथ्यगत कारणों से नहीं लिख पाये।[५] उनके चिन्तनधारा के सम्बन्ध में चन्द्रशेखर ने ठीक ही कहा है- "नरेन्द्र की मनीषा विश्लेषणात्मक थी। उन शक्तियों का उन्होंने विश्लेषण किया जो समाज को आच्छन्न किए हुए थीं। परिस्थितियों की समीचीनता ने उन्हें संघर्ष के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य किया, जिससे सामाजिक न्याय, समानता तथा स्वतन्त्रता पर आधारित नयी सामाजिक व्यवस्था की संरचना हो सके। वह न केवल पुराने अनुभवों के नये वैज्ञानिक निरूपण में विश्वास करते थे, वरन् सदा विश्व के समसामयिक अनुभवों से भी सीखने के लिए तैयार रहते थे। इसने उन्हें वह क्षमता भी दी जिसके बल पर वे मार्क्सवाद तथा बौद्ध दर्शन के बीच समन्वय स्थापित करने में सफल हुए।"[६]

भारतीय समाजवादी चिन्तन का स्वरूप भारत की राजनीतिक, सामाजिक, परिस्थितियों में निर्मित हुआ है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से पश्चिम के समाजवादी विचार भारत में प्रवेश करने लगे और रूसी क्रान्ति ने भारतीय नेताओं को एक नयी प्रेरणा दी। आरम्भ में भारतीय समाजवादी चिन्तन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के साथ-साथ विकसित होता रहा। भारतीय समाजवादी चिन्तन में नरेन्द्र देव की चर्चा मुख्य रूप से की जाती है क्योंकि उन्होंने इस दिशा में बहुत लिखा है।[७] नरेन्द्र देव विचार धारा की दृष्टि से मार्क्सवादी थे, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सामान्य सिद्धान्तों को उन्होंने विवेचन किया था, द्वन्द्ववाद के सिद्धान्त को सम्भवतः उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने समाजवाद को एक राजनीतिक के साथ ही एक सांस्कृतिक आन्दोलन भी माना। उनके सामाजिक व राजनीतिक विचार मानवीय निष्ठाओं पर ही आधारित है। जिसमें दलितों व निःसहाय गरीबों का कल्याण निहित था।[८]

नरेन्द्र देव प्रजातांत्रिक समाज के आधार स्तम्भ हैं। उनके समाजवादी चिन्तन का मुख्य आधार जनतन्त्र है। वे बार-बार जन-जाग्रति का उल्लेख करते हैं। प्रसिद्ध समाजवादी विचारक मुकुट विहारी लाल नरेन्द्र देव को 'जनतांत्रिक समाजवाद का जनक' मानते हैं। उनका कथन है, "नरेन्द्र देव जनतांत्रिक समाजवाद में विश्वास रखते हैं उनके विचार में समाजवाद के बिना राजनीतिक जनतन्त्र अपूर्ण है और आज के युग में तो जनतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था ही वास्तविक जनतांत्रिक व्यवस्था है..... उनका निश्चित मत था कि देश की सभी प्रगतिशील शक्तियों का यह कर्त्तव्य है कि वे जनतांत्रिक प्रेरणाओं और परम्पराओं को पुष्ट करें और भारतीय जनतन्त्र को सबल बनाते हुए राजनीतिक जनतन्त्र का सामाजिक जनतन्त्र की ओर विकास करें। नरेन्द्र देव सामान्य जनता अथवा सर्वहारा को जनतन्त्र की आधारशिला मानते हैं वे प्रजातांत्रिक समाजवाद के भारतीय व्याख्याता थे तथा हर प्रकार के अधिनायकतन्त्र का विरोध करते थे और प्रजातांत्रिक समाजवाद को एक आदर्श समाज व्यवस्था मानते थे।[९]

नरेन्द्र देव के समाजवादी चिन्तन में जनतन्त्र की केवल चर्चा ही नहीं है उसका विवेचन भी किया गया है। उन्होंने समाजवादी क्रान्ति की रूपरेखा पर विचार करते हुए मार्क्सवाद को लोकतन्त्र से जोड़ा। उनका कथन है 'मार्क्स ने लोकतन्त्र का तथा प्रत्येक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का कई जगह उल्लेख किया है और यह भी बताया है कि समाजवाद की स्थापना से ही यह उद्‌देश्य पूरा हो सकता है।' वास्तव में नरेन्द्र देव हर प्रकार के अधिनायकतन्त्र का विरोध करते हुए प्रजातांत्रिक समाजवाद को एक आदर्श समाज व्यवस्था मानते हैं। जब उत्तर प्रदेश में गाँव पचायतों का संगठन हुआ तो उन्होंने कहा कि बालिग मताधिकार एक क्रान्तिकारी अधिकार है, यह प्रजातन्त्र की आधारशिला, जमहूरियत का बुनियादी पत्थर है, बिना जाति, सम्प्रदाय या सामाजिक हैसियत का भेद किये, सभी बालिग स्त्री-पुरूषों को एक दर्जा दिये बिना जमहूरियत तथा प्रजातन्त्र कामय नहीं हो सकता। वे भारत के गाँवों को प्रजातन्त्र का आधार मानते हैं और लोकतन्त्र को सम्पूर्ण जीवन-प्रणाली। उनका यह मानना था कि "लोकतन्त्र केवल एक शासन पद्धति ही नहीं है, बल्कि वह एक जीवन-प्रणाली है अतएव लोकतांत्रिक आदर्शो को केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनको प्रतिष्ठित करना आवश्यक है।[१०]

नरेन्द्र देव समाज को शोषण, उत्पीड़न और विषमताओं से

बचाना चाहते थे। उन्हें न अन्याय करना पसन्द था न अन्याय सहना। अन्याय के विरुद्ध क्रान्तिकारी भावना उनके हृदय में व्याप्त थी।[११] इसी तरह के विचार उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी के मद्रास सम्मेलन १९५० में दिये गये अपने भाषण में व्यक्त किये जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं- धार्मिक संस्थानों, सामन्तशाही और पूँजीवादी पद्धति के कारण मानव अपने स्वरूप को खोता जा रहा है। इनका स्वरूप समय के साथ-साथ और भी विकृत होता जा रहा है, इसी कारण से समाज में किसी न किसी वर्ग की प्रधानता रहती है और वह समाज के आर्थिक व राजनीतिक जीवन पर अधिकार प्राप्त करता है तथा आर्थिक संस्थाओं का संचालन अपने वर्ग के लाभ के लिए करता है इसीलिए बहुजन समाज का हर प्रकार से शोषण होता है। राज्य वर्ग विशेष के हितों की रक्षा के लिए होता है। यह रक्षा फौज और पुलिस द्वारा होती है। जब समाज वर्गों में बटा होता है तो विभिन्न वर्गों में शान्ति बनाए रखने के लिए भी राज्य में ऐसी किसी संस्था की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से राज्य सब वर्गों के ऊपर भी होता है। राज्य सब वर्गों को समान दृष्टि से देखता है और वह किसी वर्ग विशेष का नहीं होता है। जितनी मात्रा में यह विश्वास सर्वसाधारण में घर कर जाता है, उतनी ही मात्रा में राज्य का काम सुलभ हो जाता है। जो कुछ मैंने ऊपर लिखा है उससे स्पष्ट हो जाना चाहिए कि समाजवाद के उद्देश्य की स्पष्ट रूप से घोषणा करने की क्यों आवश्यकता पड़ी। जनतन्त्र का विशेषण देने से ही उद्देश्य का स्पष्टीकरण होता है। यह जनतन्त्र पूर्ण जनतन्त्र है। पूँजीवाद ने जिन मूल्यों की स्थापना की है, उनकी रक्षा करते हुए उनमें नये मूल्यों को जोड़ना पड़ता है जिसका जन्म समाजवाद के कारण होता है। मेरी समझ में अभी तक यही नहीं आया कि क्यों कुछ लोग डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट पर आपत्ति करते हैं। किसी मार्क्सवादी को तो इस शब्द पर आपत्ति नहीं करना चाहिए। जनतन्त्र कोई चिढ़ने की वस्तु नहीं है। इसके बिना तो समाजवाद हो ही नहीं सकता। मार्क्स और लेनिन दोनों इसे मानते हैं। स्टालिन को भी प्रश्न पूछने पर यही उत्तर देना पड़ेगा। जिसे देखो वही जनतन्त्र का दम भरता है। भारतीय कम्युनिस्ट जो रूस की नकल करते-करते थक गये हैं और अब चीन की नकल करेंगे 'जनता का जनतन्त्र' का नारा यहाँ भी देने लगे हैं। 'नेशनल लिबरेशन' शब्द भी चीन से लिया गया है पर यह क्यों लिया गया है यह मेरी अल्प बुद्धि में नहीं आया। इन नारों का रहस्य यह है कि पिछला युद्ध फैसिज्म के विरुद्ध जनतन्त्र के नाम पर लड़ा गया था और वह जनतन्त्र भी पूँजीवादी राष्ट्रों का था तथा इसी नारे के कारण युद्ध में विजय भी प्राप्त हुई थी। जनतन्त्र के नाम पर यदि हिटलर के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा सफल हो सकता है तो जनतन्त्र में कोई नैसर्गिक गुण अवश्य होगा, जिसके लिए बहुसंख्यक लोग पुराना बैर भुलाकर कम्युनिस्टों के साथ कुछ समय के लिए काम कर सकते हैं।[१२]

यह भी सच है कि समाजवाद जनता का जनतन्त्र है किन्तु कुछ लोग ऐसे हैं जो डेमोक्रेसी शब्द को सुनते ही भड़क उठते हैं। उनके सामने एकदम पार्लियामेन्टरी डेमोक्रेसी का चित्र आ जाता है और वह समझने लगते हैं कि इस सोशलिज्म का चुनाव से अवश्य कुछ सम्बन्ध होगा। चूंकि वह क्रान्तिकारी हैं इसलिए चुनाव से उनको घृणा है। किन्तु पार्टी-चुनाव लड़ना तय करे, तो वह यह कह कर आगे आ जायेंगे कि उससे जो हानि होने की सम्भावना है उससे क्रान्तिकारी ही पार्टी को बचा सकता है। कुछ लोग यह भी समझ बैठे हैं कि चुनाव द्वारा ही इस प्रकार का समाजवाद स्थापित किया जायेगा। यह बड़े आश्चर्य की बात है। किन उपायों से जनतांत्रिक समाजवाद की स्थापना होती है यह जुदा प्रश्न है। मैं निश्चित रूप से कहना चाहता हूँ कि जो इन उद्देश्यों को नहीं मानता, वह मार्क्सवादी नहीं है और वह कम्युनिस्ट या सोशलिस्ट भी नहीं है। अब प्रश्न यह है कि जनतांत्रिक समाज की स्थापना कैसे होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में पालिसी स्टेटमेन्ट में दो प्रकार का व्याख्यान किया गया है। एक को जनतांत्रिक प्रकार का कहा गया है और दूसरे को सशक्त जन-क्रान्ति का प्रकार। समाजवादी सदा समर्थ उपायों का अनुसरण करता है। जो उपाय जिस समय प्रभावशाली होता है उसी से वह काम लेता है। किस उपाय का अनुसरण कब करना चाहिए, यह देश और काल पर निर्भर करता है। यह समझना कि सशस्त्र जन-क्रान्ति का उपाय सबसे अधिक प्रभावशाली होता है, बड़ी भारी भूल है। इस उपाय से सदा काम नहीं लिया जा सकता। कोई भी भला आदमी व्यर्थ के लिए हिंसा करना पसन्द नहीं करता। रोजा लुक्सेमबर्ग ने कहा है कि रक्त की एक बूँद निरर्थक बहाना क्रान्तिकारी के लिए एक अशोभनीय कार्य है। किन्तु सशस्त्र जन-क्रान्ति और विप्लववाद दो भिन्न वस्तुएँ हैं। लेनिन ने विप्लववाद को त्याज्य बताया है। यह सदा विफल होता है और उद्देश्य को क्षति पहुँचाता है। मार्क्स ने कहा है कि स्थिति के परिपक्व हुए बिना असावधानी से क्रान्ति कर देना मूर्खता है।[१३]

नरेन्द्र देव पर समाजवादी विद्वान बुखारिन की प्रसिद्ध पुस्तक "हिस्टोरिकल मैटीरियलिज्म" (ऐतिहासिक भौतिकवाद) का प्रभाव भी पड़ा था। उन्होंने बुखारिन की वर्गो की कसौटी व विभाजन के सिद्धान्त को माना[१४] और उसी के आधार पर मध्यम वर्ग, परिवर्तनशील वर्ग, मिश्रित वर्ग तथा संक्रमण वर्ग आदि का उल्लेख किया है। वे वर्ग-संघर्ष को अनिवार्य मानते हैं और यहाँ वे गांधीवाद से हटे हुए दिखाई देते हैं। अहिंसक गांधीवाद सत्य,

अंहिसा, हृदय-परिवर्तन के द्वारा अहिंसा क्रान्ति से सुधार लाना चाहता है परन्तु नरेन्द्र देव दास, कृषक, श्रम जीवी आदि के विद्रोहों का विवरण देते हुए वर्ग संघर्ष को अनिवार्य मानते हैं। उनका कहना है कि "समाज में विकास उसकी आन्तरिक असंगतियों के जरिए होता है। यह असंगतियाँ जब अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाती है तो सामाजिक क्रान्ति घटित होती है तथा यह क्रान्ति वर्ग-संघर्ष की चरमसीमा पर ही घटित होती है।" इतिहास से वर्ग-संघर्ष के अनेक उदाहरण देते हुए नरेन्द्र देव भारतीय परिस्थितियों का मार्क्सवादी विश्लेषण करते हैं। वे कहते हैं कि सामन्तशाही वर्ग के शोषण को खत्म किए बिना किसानों की आमदनी नहीं बढ़ायी जा सकती।[१५]

लोकतांत्रिक समाजवाद के समर्थक होने के नाते नरेन्द्र देव राज्य के नौकरशाही के हस्तक्षेप के विरुद्ध थे। उनका प्रस्ताव था कि उद्योग प्रबन्ध में मजदूरों की एक ही वर्ग के रूप में भागीदारी होनी चाहिए। गांधी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी उन्होंने वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को नहीं छोड़ा वे कहते थे कि "देश ने विभिन्न वर्गों के बीच विभेदीकरण की प्रक्रिया अधिकाधिक तेज गति से कार्य कर रही है जिसके परिणामस्वरूप उच्च तथा मध्य वर्गों के अधिकाधिक अंग राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक होते जा रहे हैं। नए वर्गों का निर्माण हो रहा है और वे बहुसंख्यक जनसमुदाय से अलग हो रहे हैं....... हमारा कर्त्तव्य है कि उस एकता के लिए जिसका कोई आधार नहीं है विलाप करना छोड़ दें और उन तरीकों को ढूंढ निकालें, जिनसे राष्ट्रीय संघर्ष, जो अब तक प्रधानतः मध्य वर्ग का आन्दोलन रहा है, अधिक तीव्र बनाया जा सके। मेरी भावना में इसका एक मात्र उपाय यह है कि जनसमुदायों को अधिक व्यापक रूप प्रदान किया जाए, जिसमें प्रचार व संगठन ही ऐसे दो साधन हैं, जिसके द्वारा किसी वर्ग को आत्म सचेत बनाया जा सकता है।"[१६]

नरेन्द्र देव के समाजवादी चिन्तन में किसान-मजदूरों की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में वे यह मानते हैं कि बिना किसान-मजदूरों के सहयोग के उद्देश्य में सफलता नहीं मिल सकती। इसके लिए उन्होंने कांग्रेस से किसानों की दशा में सुधार करने की अपील की। साथ ही समाजवादियों से विशेष अपील की कि किसान-मजदूरों की ओर विशेष ध्यान दे क्योंकि समाज का यह वर्ग सबसे अधिक शोषित है। इनका उद्धार करना समाजवाद का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। नरेन्द्र देव लेनिन की इस बात से भी सहमत हैं कि सामाजिक स्वतन्त्रता के लिए राजनीतिक लड़ाई बहुत जरूरी है इसलिए वे समाजवादियों से यह आशा रखते हैं कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार किया जाये। इसके लिए उन्होंने किसानों-मजदूरों को संगठन बनाने की प्रेरणा दी। उनका कहना है : जब तक हम अपना संगठन मजबूत नहीं करते, हम न तो प्रगतिशील शक्तियों का ही नेतृत्व कर सकते हैं और न राष्ट्रीय आन्दोलन का ही। यदि संगठन दृढ़ और विस्तृत होगा तो समाजवाद की स्थापना में भी सुविधा होगी। इसके लिए किसान-मजदूरों में वर्ग-चेतना का विकास होना आवश्यक है जो आर्थिक आधार पर ही सम्भव होगी। कांग्रेस के भीतर रहकर उन्होंने बराबर इस बात का प्रयत्न किया कि कांग्रेस अपनी आर्थिक नीतियों को इस प्रकार बनाये जिससे मजदूरों-किसानों को उसका लाभ मिले। नरेन्द्र देव ने १० अप्रैल, १९४७ को द्वितीय बनारस जिला किसान सम्मेलन में अध्यक्ष पद से भाषण दिया जिसमें बताया कि किसानों का उद्धार कैसे हो सकता है। उन्होंने कहा कि 'बिना जमींदारी प्रथा का अन्त हुए उद्योग-धन्धों की तरक्की नहीं हो सकती। किसान जमीन को अपनी समझ कर उसकी पैदावार बढ़ाने के लिए हर तरह का त्याग करने के लिए तैयार नहीं हो सकता, भूमि पर नये साधनों का प्रयोग करने की प्रेरणा उसे नहीं मिल सकती। खेती की उन्नति के लिए जमींदारी प्रथा का अन्त होना और खेती पर से दूसरे उन सभी बीच के लोगों को हटाना, जो खेती न करते हुए भी उनकी पैदावार के अंश को हड़प जाते हैं। जमींदार सरकार के दलाल के रूप में काम करते हैं। यह जमींदार किसान से लगान वसूल करके सरकार का पेट भरते हैं तथा उससे अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। सरकार को चाहिए कि जमींदारी प्रथा का तुरन्त अन्त करे।[१७]

किसान आन्दोलन में नरेन्द्र देव का योगदान वैचारिक और सैद्धान्तिक अधिक रहा है। उन्होंने किसानों के बीच सक्रिय रूप से कार्य किया। शुरू में फैजाबाद जिले के किसानों के बीच उन्होंने जमकर कार्य किया तथा १९३० में कृषकों की दयनीय दशा का अध्ययन करने के लिए कई जिलों को दौरा किया। प्रान्तीय कांग्रेस द्वारा गठित इन्क्वारी कमेटी के सदस्य की हैसियत से १९३१ में उन्होंने अपने सहयोगी सम्पूर्णानन्द के साथ गोरखपुर तथा बस्ती जिले के किसानों की दयनीय दशा का विस्तृत अध्ययन करके अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि जमींदारी प्रथा ही भारतीय किसानों की सारी दुर्दशा की जड़ है। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किये बिना मात्र छुटपुट भूमि सुधारों से किसानों की समस्या हल नहीं की जा सकती। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु किसानों को वर्ग-संघर्ष के लिए तैयार करना आवश्यक है।[१८] साथ ही देश के बहुसंख्यक किसानों को समाजवादी पुनर्निर्माण की योजना से सम्बद्ध करने के लिए सहकारी समितियों को संगठित एवं सुदृढ़ करके कृषि को सहकारी आधार पर संगठित करना आवश्यक है। उनका यह भी सुझाव था कि किसानों के ऋण निरस्त

करके उनके लाभ के लिए सस्ते ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराया जाय। वे गाँवों में सहकारी व्यवस्था कायम करके लोकतांत्रिक ग्राम सरकार की स्थापना के पक्षधर भी थे।[१९]

लोकतन्त्र का मूल तत्व व्यवहार और परम्परा होता है। हम अपने देश में लोकतन्त्र उदय की आशा तब तक नहीं कर सकते जब तक हम उन मिथ्या धारणाओं और निष्ठाओं को समाप्त नहीं कर देते जो वर्तमान समाज व्यवस्था के अवलम्ब हैं। नरेन्द्र देव का मानना था कि यदि हम शक्तिशाली राज्य स्थापित करना चाहते हैं तो हमें समानता के आधार पर समाज को संगठित करना होगा। यदि सम्प्रभुता जनता में स्थित है तो आम जनता में प्रभावपूर्ण अधिकार निहित करने होंगे और चेन की जो भी कड़ी कमजोर हो उसे यथा समय पर शक्तिशाली बनाना होगा। वास्तव में सामाजिक समरसता शक्तिशाली परिवर्तन के द्वारा ही स्थापित हो सकती है तथा सामाजिक सरसता के बिना शक्तिशाली राज्य की स्थापना असम्भव है। हमें प्रदेश की सीमा के अन्दर क्षेत्रीय स्वयत्तता के सिद्धान्त को स्वीकार कर जनजातियों के अलगाववादी आन्दोलन का सहानुभूतिपूर्ण हल ढूढ़ना होगा। हमें राष्ट्रीय उत्तरदायित्व में पददलित वर्गों का हार्दिक सहयोग मिलने की पूर्ण आशा है। हम उनकी सामूहिक शक्ति का लाभदायक उपयोग तभी कर सकते हैं, जब हम उन्हें यह अनुभव करा सके कि वर्तमान भेदभावपूर्ण व्यवस्था का शीघ्र ही अन्त हो जायेगा। वर्तमान युग में यह भी आवश्यक है कि सभी को अवसर की समानता प्राप्त हो ताकि सभी लोग आर्थिक प्रगति कर सकें। यदि हम अपने देश में जनता को एकता के सूत्र में बाधना चाहते हैं तथा नवजीवन की आधारशिला रखने हेतु उनका सहयोग चाहते हैं तो हमें सोवियत रूस का अनुसरण करना होगा। यदि हम हिन्दू राज्य के नारे को अमल में लाने का प्रयास जारी रखेंगे तो यह स्पष्ट है कि लोकतंत्र लुंज-पुंज हो जायेगा और हमारे समाज में जो वर्तमान बुराइयाँ व्याप्त हैं वो स्थायी हो जायेंगी। इससे प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण उत्पन्न हो जायेगा, जो लोकतंत्र के आर्थिक आदर्शों की स्थापना के मार्ग में व्यवधान उत्पन्न करेगा। इसलिए सही लोकतांत्रिक व्यवस्था के विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सामाजिक असमानताएँ समाप्त की जांय।[२०]

पंच सम्मेलन के प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए नरेन्द्र देव ने कहा कि ग्राम में शोषित का मोर्चा कायम हो। ग्राम पंचायतों में वयस्क मताधिकार होने से ग्रामों की शोषित जनता में जागृति आएगी, उसे अपने अधिकार का ज्ञान होना तथा यह शोषित वर्ग शोषण के विरुद्ध आवाज उठा सकेगा। इस प्रकार ग्रामों में ऊँच-नीच वर्ग का अन्त होगा और जनता में नयी जागृति आएगी। उन्होंने आगे कहा कि कुचला हुआ मजदूर आर्थिक एकाधिकार का दोष जाति की ऊँचाई को देता है। वह यह नहीं देख पाता कि शोषक और शोषित 'ऊँची और नीची' दोनों जातियों में बँटे हुए हैं, किसी में वे थोड़े हैं, किसी में ज्यादा। इस प्रकार के वर्ग-भेद मिटाना समाजवादियों का मुख्य ध्येय होना चाहिए। यदि समाजवादी अपने कार्यक्रमों में दलित शोषित जनता का उद्धार करना मुख्य उद्देश्य बना ले तो लक्ष्य की सफलता निश्चित है।[२१]

नरेन्द्र देव का महत्वपूर्ण राजनीतिक चिन्तन उनकी पुस्तक "राष्ट्रीयता और समाजवाद" में संकलित है। यहाँ वे दो मुख्य शब्दों का प्रयोग करते हैं जो साम्यवाद में एक दूसरे के विरोधी तक स्वीकारे गये हैं। कई बार फासीवादी शक्तियाँ राष्ट्रीयता के नाम पर अधिनायकतन्त्र की स्थापना करती हैं। इसीलिए साम्यवाद दर्शन में इस प्रकार की संकुचित राष्ट्रीयता का विरोध किया गया है। परन्तु साम्राज्यवाद के विरुद्ध मानवाधिकारों की लड़ाई में राष्ट्रीयता बहुत उचित है नरेन्द्र देव इसी आशय से इसका उपयोग करते हैं। वे संसार के सभी शोषित देशों के लिए राष्ट्रीयता की बात को भी अच्छी तरह जानते हैं। राजनीतिक स्वतन्त्रता का कोई महत्व नहीं जब तक सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त न हो। साम्राज्यवादी व्यवस्था में शोषण, गरीबी, अशिक्षा अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। इससे भारतीय जनता को मुक्ति दिलाना अनिवार्य है। इसी कारण स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक स्वतन्त्रता की लड़ाई भी चलती रही और नरेन्द्र देव ने इसमें बहुत योगदान दिया।[२२]

नरेन्द्र देव सुधारवादियों को समाजवादियों से अलग करते हैं। उनका कथन है कि 'समाज सुधारक समाजवादी नहीं कहे जा सकते, क्योंकि खुले विरोधियों की अपेक्षा इस नीति के समर्थकों से वैज्ञानिक समाजवाद को अधिक नुकसान पहुँचता है। इसी सिलसिले में वे आगे लिखते हैं कि वैज्ञानिक समाजवाद न तो सुधारवाद है और न काल्पनिक समाजवाद, यह समाज की एक ऐसी नवीन आर्थिक व्यवस्था को प्रतिष्ठित करता है जिसमें उत्पादन के साधन तथा उत्पादन वस्तुओं का विवरण व विनिमय समाज के हाथ में हो। यहाँ निश्चित ही नरेन्द्र देव काल्पनिक समाजवाद के स्थान पर वैज्ञानिक समाजवाद को स्वीकार करते हैं और समाजवाद का मूलाधार मानवता को मानते हैं। समाजवादी चिन्तन की दिशा में उनके विचार बहुत स्पष्ट हैं। उनके समाजवादी चिन्तन और कार्यक्रम को उन १२ सूत्रों में देखा जा सकता है जो उन्होंने अपने निधन के कुछ समय पूर्व प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अधिवेशन में "हमारा समाजवाद लोकतन्त्रीय है क्योंकि........" नामक शीर्षक में प्रस्तुत किये थे, जो इस प्रकार हैं[२३]

१. यह श्रेणीबद्ध सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध है।
२. यह अधिनायकवादी, सामन्तशाही, पूँजीवादी तथा अन्य किसी रूप में सामाजिक एवं आर्थिक शक्ति के एकाधिकार के विरुद्ध है।
३. यह हर तरह के साम्राज्य एवं विदेशी हुकूमत के विरुद्ध है तथा समस्त मानवता के अधिकार को मानता है।
४. यह सामाजिक सम्बन्धों एवं व्यवहार के लोकतन्त्रीय स्वरूप का समर्थक है।
५. यह सर्वत्र सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक साधनों पर श्रमिकों के नियन्त्रण की व्याख्या करता है।
६. यह सभी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक मामलों में स्वराज की व्याख्या प्रस्तुत करता है।
७. यह स्वतन्त्रता को व्यवस्थित जीवन का आधार मानता है।
८. यह सब लोगों की भौतिक, बौद्धिक एवं नैतिक आवश्यकताओं को प्राथमिकता देता है तथा इस प्रकार समता व सामाजिक न्याय की सुनिश्चित व्याख्या करता है।
९. यह सम्पूर्ण सत्ता एवं उत्तरदायित्व के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर बल देता है।
१०. यह जनता को सत्ता का आधार स्रोत्र मानता है तथा जनता को प्रतिरोध का अधिकार देता है।
११. यह उस सामाजिक सुख को बढ़ावा देता है, जिसमें हर व्यक्ति का सुख निहित है।
१२. अन्ततः यह विश्व शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लोकतन्त्रीय संगठन का समर्थक है।

नरेन्द्र देव की समाजवादी विचारधारा का उद्गम तथा विकास उनकी राष्ट्रीयता और भारतीय समाज की आर्थिक व धार्मिक अधोगति से हुआ था। उनके सामने पराधीनता वह अभिशाप था, जिससे मुक्ति पाए बिना भारत और भारतीय समाज का अभ्युत्थान सम्भव न था। परन्तु जहाँ विद्वानों के लिए स्वतन्त्रता का अर्थ अंग्रेजों के शासन से छुटकारा पाना था, वही नरेन्द्र देव स्वतन्त्र भारत में भारतीय समाज को सभी प्रकार की यातनाओं और शोषण से मुक्त देखना चाहते थे। भारतीय इतिहास व धर्म के गहन अध्ययन के कारण भारतीय समाज की कमजोरियों और उसके पराभव के कारणों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करते हुए भारतीय जन को ऊपर उठाना भी उन्हें आवश्यक लग रहा था। इस प्रकार के शोषण, अत्याचार तथा गरीबी के प्रत्यक्ष दर्शन और निजी अनुभूतियों ने नरेन्द्र देव की समाजवादी विचारधारा को न केवल और भी दृढ़ किया वरन् भारतीय परिवेश में उनको कार्यान्वित करने की दृष्टि भी दी।[२४]

नरेन्द्र देव के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार मूल्य व मानवीय निष्ठाओं पर आधारित हैं। उनके सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों की दार्शनिक पृष्ठभूमि की गहन विवेचना करने के पश्चात हम यह कह सकते हैं कि भिन्न-भिन्न कारकों ने उनकी विचार भावधारा का निर्माण किया और पृष्ठभूमि के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। तथ्यतः जिस प्रकार किसी भवन के निर्माण में उपयोग होने वाली वस्तु सामग्री का महत्वपूर्ण स्थान है उसी प्रकार नरेन्द्र देव ने जो महान विचार समाज तथा राष्ट्र निर्माण के लिए प्रस्तुत किये उनकी आधारशिला चट्टान पर रखी गयी थी जो एक बालक को राष्ट्र नायक बना सकती है।

सन्दर्भ

१. मोहन सुरेन्द्र, 'आचार्य नरेन्द्र देव और उनका युग', आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी, जून १९८९, पृ.१, ५, ६.
२. शर्मा, योगेन्द्र कुमार, 'भारतीय राजनीतिक विचारक', भाग-२, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, २००१, पृ.४५८.
३. दीक्षित, जगदीश चन्द्र, 'आचार्य नरेन्द्र देव', सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, १९८९, पृ.७५-७६.
४. दीक्षित, जगदीश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ.७६.
५. वही, पृ.७७.
६. वही, पृ.४८.
७. शंकर शोभा, 'आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन', साहित्य भवन, १९८०, पृ.२१२-२१३.
८. अवस्थी ए०, अवस्थी आर० के०, 'आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन', रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, २००७, पृ.४१२.
९. शंकर शोभा, पूर्वोक्त, पृ.१४७.
१०. वही, पृ.१४८-१४९.
११. अवस्थी, ए०, अवस्थी, आर० के०, पूर्वोक्त, पृ.४१२.
१२. कुमार अजय, 'नरेन्द्र देव व्यक्ति और प्रमुख विचार', आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, लखनऊ, १९८९, पृ.४२-४५.
१३. वही, पृ.४६-५०.
१४. अवस्थी ए०, अवस्थी, आर० के०, पूर्वोक्त, पृ.४१३.
१५. शंकर शोभा, पूर्वोक्त, पृ.१३८.
१६. शर्मा योगेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ.४१३.
१७. शंकर शोभा, पूर्वोक्त, पृ.१३८, १३९, १४०.
१८. दीक्षित जगदीश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ.६६.
१९. शर्मा योगेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ.४६०.
२०. दीक्षित जगदीश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ.४२, ४३, ४४.
२१. शंकर शोभा, पूर्वोक्त, पृ.१४०.
२२. शंकर शोभा, पूर्वोक्त, पृ.१४५.
२३. वही, पृ.१५३-१५४.
२४. सिंह भगवती शरण, 'आचार्य नरेन्द्र देव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, स्वतन्त्र भारत प्रेस, नई दिल्ली १९६१, पृ.६६.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 1, जनवरी-जून 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

बाल श्रमिकों की पारिवारिक पृष्ठभूमि : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डॉ. कवलजीत कौर**

प्रस्तावना - राष्ट्र के विकास एवं प्रगति में बच्चों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। देश का भविष्य बच्चों में ही निहित है, बच्चे देश के कर्णधार और अपने परिवार की भावी पीढ़ी है। बालकों का समुचित शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक विकास करके ही वास्तविक अर्थो में विकास की संकल्पनाओं को पूरा किया जा सकता है। बच्चों के विकास में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार एक ऐसी धुरी है, जिसमें रहकर ही बच्चों का समाजीकरण किया जाता है, और आने वाली पीढ़ी को तैयार किया जाता है। बदलते परिवेश के साथ परिवार में बच्चों को आर्थिक स्थिति उच्च करने का साधन समझा जाने लगा है। परिवार की आर्थिक तंगी के कारण बच्चों से श्रम करवाया जाता है। बच्चों के द्वारा किये जाने वाले श्रम को बालश्रम कहते हैं।[1] बालश्रम से तात्पर्य समाज की ऐसी व्यवस्था से है, जिसमें कम आयु के बच्चे अपनी इच्छा के विपरीत या विवशता के कारण छोटी उम्र में ही मजदूरी करने को तैयार हो जाते हैं। बाल श्रम न केवल बेरोजगार परिवार के लिए एक बेहतर आय के स्त्रोत है बल्कि सकल घरेलू उत्पाद में भी यह ७ प्रतिशत का योगदान दे रहा है। सर्वाधिक बाल श्रमिक आन्ध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश में हैं। तमिलनाडू के शिवकाशी में पटाखा फैक्टरी और माचिस इकाई में ४५ हजार बच्चे कार्यरत हैं।[2] वैश्विक स्तर पर अगर देखा जाए तो पाकिस्तान में बनने वाली कालीनों को १५ वर्ष से कम उम्र के बच्चे ही बनाते हैं, जबकि इण्डोनेशिया में तम्बाकू बीनते हैं। श्रीलंका में चाय की पत्ती और ब्राजील के अनेक बच्चे संतरे चुनकर अपनी जीविका चलाने को विवश है। बांग्लादेश में बड़े पैमाने पर बच्चे टी-शर्ट बनाने वाले उद्योगों में कार्यरत है दक्षिण अफ्रीका में तो हजारों बच्चे घरेलू नौकरों के रूप में काम करते हैं।

> देश का भविष्य बच्चों में ही निहित है। बच्चों के विकास में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार एक ऐसी धुरी है, जिसमें रहकर ही बच्चों का समाजीकरण किया जाता है, और आने वाली पीढ़ी को तैयार किया जाता है। बदलते परिवेश के साथ परिवार में बच्चों को आर्थिक स्थिति उच्च करने का साधन समझा जाने लगा है। परिवार की आर्थिक तंगी के कारण बच्चों से श्रम करवाया जाता है। इस लघु शोध के अन्तर्गत बाल श्रमिकों की पारिवारिक पृष्ठभूमि को जानने का प्रयास किया गया है।

भारत में बाल श्रमिकों की संख्या[3]

वर्ष	आयु समूह						कुल बाल जनसंख्या
	०-४		५-९		१०-१४		
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
१९८१	८.३	३१.६	९.४	३५.७	८.६	३२.७	२६.३
१९९१	११.०	३५.७	१०.३	३४.३	९.५	३०.१	३०.८
२००१	११.४	३४.२	११.१	३३.३	१०.८	३२.५	३३.३
२०११	११.६	३४.८	१२.५	३२.३	११.९	३३.१	३५.४

बालश्रम की परिभाषा - अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आइ० एल० ओ०) के अनुसार, वह कार्य जो बच्चों को उनके बचपन, उनकी क्षमता व गरिमा से वंचित करता हो, वह कार्य जो मानसिक, शारीरिक, सामाजिक व नैतिक रूप से बच्चों के लिए हानिकारक हो या वह कार्य जो उनके शैक्षिक कार्य में बाधा उत्पन्न करता हो तथा किसी भी प्रकार से उनके स्वस्थ बचपन के अनुभव को प्राप्त करने में हस्तक्षेप करें, बालश्रम है। यूनिसेफ बालश्रम को अलग तरह से परिभाषित करता है- एक बच्चा जो बालश्रम गतिविधियों में लिप्त है, यदि उसकी आयु ५ वर्ष से ११ वर्ष के बीच है तथा वह एक घंटा आर्थिक

❑ **अतिथि प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, एम० बी० (पी०जी०) कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)**

गतिविधियों या एक सप्ताह में २८ घंटे घरेलू कार्य करता है, अथवा १२ से १४ वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों में यदि वह कम से कम १४ घंटे आर्थिक गतिविधियों में या एक सप्ताह में कम से कम ४२ घंटे आर्थिक गतिविधियों तथा घरेलू कार्यो में लगा है, बालश्रम के अन्तर्गत आता हैं।[४]

यूनेस्को ने भारत को उन देशों में शामिल कर दिया है, जो सबको शिक्षा देने का लक्ष्य अभी पूरा नही कर पाए हैं। यूनेस्को ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि 'सबके लिए शिक्षा' के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बाल मजदूरी है। बालश्रम से सम्बन्धित अधिकांश बच्चे ग्रामीण क्षेत्रों के है और उनमें भी लगभग ६० प्रतिशत १० वर्ष से कम आयु के है। व्यापार एवं व्यवसाय क्षेत्र में २३ प्रतिशत तथा घरेलू कार्यो में ३७ प्रतिशत बाल श्रमिक कार्यरत है और वही शहरी क्षेत्र में बच्चे कैन्टीन, रेस्टोरेन्ट और ठेला लगाने में संलग्न है। १९८६ में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा कराए गए सर्वेक्षण के अनुसार भारत में बाल श्रमिको की संख्या १ करोड़ ७३ लाख बताई गई है।[५] वर्ष २००१ की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार यह संख्या १ करोड़ २६ लाख ६६ हजार ३७७ है। वही वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार ४ करोड़ २५ लाख ३२ हजार २४७ है। राष्ट्रीय श्रम संस्थान की ताजा आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में ६ से १४ वर्ष तक के कुल बच्चो ंकी संख्या २२ करोड़ है जो कुल आबादी की २२ प्रतिशत है।[६]

बालश्रम के विविध रूप - बाल श्रमिक मुख्यतः दो क्षेत्रों में पाए जाते है-

असंगठित क्षेत्र - होटल, ढाबा, फैक्टरी, दुकान, वर्कशाप, हॉकर, कचरा चुनना, घर में नौकर का काम आदि।

संगठित क्षेत्र - कालीन बुनाई, दियासलाई, आतिशबाजी, हथकरघा, चमड़ा, कॉच, भवन निर्माण, रत्न उद्योग तथा ताला उद्योग आदि।

शोध प्रारूप - प्रस्तुत अध्ययन हेतु हल्द्वानी शहर के बस स्टेशन के निकट स्थित होटलों में कार्य करने वाले ६० बाल श्रमिकों का चयन किया गया है। तत्पश्चात् साक्षात्कार अनुसूची पद्वति के द्वारा उनके परिवार के बारे में जानकारी प्राप्त की है। न्यादर्श का चुनाव सोद्देश्य निदर्शन प्रणाली के द्वारा किया गया।

उपलब्धियाँ - प्रस्तुत अध्ययन में १०-१४ वर्ष तक के बच्चे कार्य कर रहे थे। अधिकांश कार्यरत बच्चे ५ कक्षा तक पढ़े थे।

तालिका संख्या १

माता-पिता का शैक्षिक स्तर

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
अशिक्षित	३२	५३.३३
प्राइमरी	१५	२५.००
जूनियर हाईस्कूल	१०	१६.६७
हाईस्कूल से अधिक	०३	५.००
योग	६०	१००.००

तालिका द्वारा स्पष्ट होता है कि ५३.३३ प्रतिशत बाल श्रमिकों के माता-पिता अशिक्षित हैं। २५ प्रतिशत बाल श्रमिकों के माता-पिता प्राइमरी तक पढ़े हैं। १६.६६ प्रतिशत बाल श्रमिकों के माता- पिता जूनियर हाईस्कूल तक पढ़े हैं और ५ प्रतिशत बाल श्रमिकों के माता-पिता हाईस्कूल से अधिक पढ़े हैं।

तालिका संख्या - २

बाल श्रमिकों के परिवार की मासिक आय

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
१९९९ से कम	३०	५०.००
१९९९-३९९९	२६	४३.३३
३९९९ से अधिक	०४	६.६७
योग	६०	१००

तालिका द्वारा स्पष्ट होता है कि ५० प्रतिशत बाल श्रमिकों की परिवार की मासिक आय १९९९ से कम है। ४३.३३ प्रतिशत बाल श्रमिकों की परिवार की मासिक आय १९९९ से ३९९९ है और ६.६७ प्रतिशत बाल श्रमिकों श्रमिकों की परिवार की मासिक आय ३९९९ से अधिक है।

तालिका संख्या - ३

परिवार का स्वरूप

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिषत
संयुक्त	४५	७५.००
एकांकी	१५	२५.००
योग	६०	१००.००

तालिका द्वारा स्पष्ट होता है कि ७५ प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार संयुक्त हैं और २५ प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार एकांकी है।

तालिका संख्या - ४

बाल श्रमिकों का निवास स्थल

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिषत
माता-पिता के साथ	२०	३३.३३
माता-पिता से अलग	४०	६६.७७
योग	६०	१००.००

तालिका द्वारा स्पष्ट होता है कि ३३.३३ प्रतिशत बाल श्रमिक अपने माता-पिता के साथ रहते हैं और ६६.७७ प्रतिशत बाल श्रमिक अपने माता- पिता से अलग रहते है।

तालिका संख्या - ५

बाल श्रमिकों के परिवार के सदस्यों की संख्या

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिषत
३ से कम	०६	१५.००
३ से ५	१२	२०.००
५ से ७	१८	३०.००
७ से अधिक	२१	३५.००
योग	६०	१००.००

तालिका द्वारा स्पष्ट होता है कि १५ प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार के सदस्यों की संख्या ३ से कम है। २० प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार के सदस्यों की संख्या ३ से ५ है। ३० प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार के सदस्यों की संख्या ५ से ७ है और २५ प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार के सदस्यों की संख्या ७ से अधिक है।

तालिका संख्या - ६

बाल श्रमिकों का पारिवारिक वातावरण

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिषत
टूटे परिवार	२५	४१.६७
कलह व लड़ाई झगड़े	३५	५८.३३
शान्तिपूर्ण वातावरण	-	-
योग	६०	१००.००

तालिका द्वारा स्पष्ट होता है कि ४१.६७ प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार टूटे हुए है और ५८.३३ प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार का वातावरण कलह व लड़ाई झगड़ों से युक्त है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है, कि अधिकतर बाल श्रमिकों के माता-पिता अशिक्षित या कम पढ़े लिखे हैं। शिक्षा समाज की दिशा को बदल देती है। शिक्षा जीवन की मूलभूत आवश्यकता है जिसके अभाव में व्यक्ति अपने आप की पहचान तक भूल जाता है। शिक्षा के अभाव के कारण वे तार्किक निर्णय नही ले पाते हैं। अधिकतर बाल श्रमिक निर्धन परिवारों से आते हैं। उनके परिवार की मासिक आय कम होती है। निर्धन परिवार अपने बच्चों के भरण-पोषण में सक्षम नही हो पाते हैं जिसके कारण बच्चों को बाल श्रमिक के रूप में जीवनयापन करने के लिए विवश होना पड़ता है।

गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा के कारण इनके परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक होती है। परिवार का स्वरूप बड़ा होने के कारण परिवार की आवश्यकता अधिक होने के कारण बचपन से ही बच्चों को धन कमाने के लिए घर से बाहर कार्य करने के लिए भेज दिया जाता है। अधिकांशत बाल श्रमिक टूटे परिवार से आते हैं। उनके परिवार में माता-पिता में से एक मृत्यु हो चुकी होती है या दोनों अलग हो चुके होते हैं। इनका पारिवारिक वातावरण कलह व लड़ाई झगड़ों का केन्द्र बना रहता है। इस कारण अधिकतर बाल श्रमिक माता-पिता से अलग रहते है।

संदर्भ

१. आर्य चंदा, १६११, 'बालश्रम एक बिडम्बना' योजना (बाल सरोकार), वर्ष ४५, अंक ाॅ, नई दिल्ली, पृष्ठ ३४-३५

२. दैनिक जागरण १६ नवम्बर, २००७ पृष्ठ १

३. प्रसाद, विष्णु देव, १६११, 'बाल श्रमिकों की जीवन पद्धति एवं कार्य की दशा', भारतीय सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी अन्वेषिका, अंक १, २०१२ पृ. २१-२६

४. जैन, श्रीमती नीतू, १६१६, 'बाल श्रमिक एक भयावह समस्या एवं चुनौतियाँ', कृतिका, वर्ष २, अंक ४, २०१०, पृ. १६१-१६४

५. सिन्हा, विनीत कुमार, 'बालश्रम समस्या एवं समाधान', नैनो हिन्दी निबन्ध, कुमार बुक सेन्टर, दिल्ली, पृष्ठ १

६. सारस्वत, अभिलाषा गौड़, १६१२, 'बाल श्रम प्रतिशत समस्या और सरकारी प्रयास', राधा कमल मुकर्जी प्रतिशत चिन्तन परम्परा, वर्ष १५, अंक १, पृ. ११४-११६

Regd. No. UPHIN/1999/955
ISSN 0974-0074

मध्यप्रदेश की बैगा जनजाति के शैक्षिक विकास का एक भौगोलिक अध्ययन

❑ मनोज द्विवेदी

जनजाति अभिप्राय एवं परिभाषा :- जनजाति से तात्पर्य देश के मूल एवं प्राचीनतम निवासियों से है। ये प्राचीन काल से ही देश के सुदूर एवं निर्जन स्थानों पर निवास करते रहे हैं। इसी का परिणाम है कि आधुनिक विकास और शहरी वातावरण का अपेक्षाकृत कम प्रभाव जनजातियों पर पड़ा है। जनजातियों की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान का कारण भी यही है। सन् १९१७ से १९३१ की जनगणना में जनजातियों के नामकरण के संदर्भों में उत्तरोत्तर संशोधन होते रहें, जैसे आदिवासी या दलित वर्ग। समाजसेवी ठक्करबप्पा ने इस पिछड़े वर्ग को आदिवासी अर्थात् मूल निवासी कहा, तो डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इनके लिए दलित वर्ग शब्द का इस्तेमाल किया। सन् १९४१ की जनगणना तक इन विशेषणों को कानूनी रूप में त्याग दिया गया। स्वतंत्रता पश्चात् ''अनुसूचित जनजातियों'' तथा ''आदिवासियों'' (जैसा उन्हें सामान्यतः पुकारा जाता है) का अभिप्राय ग्रहण करने की प्रथा चलती रही। संविधान निर्माण के समय डॉ. घुरिये ने इस वर्ग के लिए ''अनुसूचित जनजाति'' नाम प्रस्तावित किया जिसे भारतीय संविधान के अनु. ३४२ के अन्तर्गत पांचवी अनुसूची में शामिल कर लिया गया।[1]

बैगा जनजाति मध्यप्रदेश की प्राचीनतम एवं सबसे पिछड़ी जनजातियों में से एक है। सुदूर वनों में रहने आधुनिकीरण की दौड़ में पीछे रह जाने, अशिक्षा, पर्यावास एवं सांस्कृतिक ह्रास के कारण ये विभिन्न प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त हैं। परसंस्कृतिग्रहण के कारण ये कई तरह की सांस्कृतिक समस्याओं एवं सामाजिक जटिलताओं का सामना कर रहे हैं। कस्बों के आस पास रहने वाले बैगा अब ज्यादा शिक्षित, समझदार तथा जागरूक हो गए हैं किन्तु वन क्षेत्रों में हालात यथावत हैं। शैक्षिक जागरूकता में वृद्धि के कारण बैगा अपने बालकों को विद्यालय तथा आश्रम शालाओं में भेजने लगे हैं, किन्तु इनमें प्राथमिक स्तर की शिक्षा के बाद विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति बहुत ज्यादा है। हालाँकि विकास की अनन्त यात्रा में बैगा भी शामिल हैं। पूर्व वर्षों की तुलना में विकास की दर बैगाओं में जीवन के हर पहलू में परिलक्षित होती है। किन्तु यह गति अत्यन्त धीमी है। इसके तीव्र किये जाने कि नितांत आवश्यकता है।

शोध प्रविधि- प्रस्तावित शोध-पत्र में आवश्यक सूचनाओं की प्राप्ति के लिए अनुसूची के माध्यम से सूचनाओं को एकत्र किया गया है। इसके साथ-साथ समूह चर्चा के माध्यम से भी आवश्यक सूचनायें एकत्रित की गई हैं। शोध-पत्र में मध्य प्रदेश के डिण्डोरी जिले के सर्वाधिक बैगा आबादी वाले दस गाँवों से चयनित १६४ परिवारों का अध्ययन किया गया है। बैगा जनजाति के शैक्षिक विकास के भौगोलिक मूल्यांकन के लिए बैगा परिवारों के शैक्षिक सूचकों एवं निर्धारकों से संबंधित जानकारी एवं आंकड़ों के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। प्राप्त आंकड़ों का सरलीकरण सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग कर विश्लेषण एवं प्रतिवेदन तैयार किया गया हैं।

प्रजातीय विशेषताएं - ''बैगा एक द्रविड प्रजाति की जनजाति है।[2] शिवकुमार तिवारी (१९९४:९९) ने इसे कोल वर्ग की जनजाति बताया है।[3] ''बैगा मध्यम से नाटे कद के लम्बे, संकरे सिर और चपटी नाक वाले होते हैं।[4] बैगाओं का कृष्ण वर्ण, शरीर छरहरा तथा मजबूत होता है। इनके केश काले, घने तथा लहरियेदार होते हैं। बैगा पुरुषों को सिर पर चोटी (गिर्दा) तथा लंगोटी के द्वारा पहचाना जा सकता है जबकि महिलाओं को शरीर पर गुदनों के द्वारा पहचाना जा सकता है।[5]''

''बैगा अपनी मूल भाषा भूल चुके हैं, और अब अपने आसपास बोली जाने वाली देशज इण्डो-आर्यन भाषा बोलते हैं।[6]'' ''स्थानीय बोली फारसी भाषा या गवैंही भाषा, हिन्दी का बिगड़ा रूप बैगाओं द्वारा बोली जाती है।[7]'' बैगा अपने पड़ोसियों की भाषा बोलते हैं। अतः बैगाओं की बोली में 'गोंडी' के शब्दों का मिलना स्वाभाविक है। अब वे छत्तीसगढ़ी का विकृत रूप बोलते हैं।[8]'' बैगा अब जो बोली बोलते हैं, उसे ''बैगानी'' कहा जाता है।

''बैगा मध्यप्रदेश के मूल निवासी भी कहे जा सकते हैं।''बैगा शब्द का तात्पर्य है ''मायावी वैद्य'' और यह इस सन्दर्भ में छोटा नागपुर की जनजातियों के पुरोहित की ओर इंगित करता है। कोल और गोंड, बैगा को एक ऐसा पुजारी मानते हैं जिन्हें

❑ शोध अध्येता-भूगोल, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म०प्र०)

क्षेत्र की मिट्टी के रहस्यों का ज्ञान है और वो बैगाओं को अपने से ज्यादा प्राचीन भी मानते हैं और सीमा विवाद में उनके निर्णय का सम्मान करते हैं।और उनके मध्य प्रान्त में प्रवास के समय उनके ग्राम पुजारी होने के कारण उन्हें बैगा नाम दिया या अपनाया गया।[९]" अतः बैगाओं को गुनिया के पर्यायावाची के रूप में भी जाना जाता है।

जनसंख्या – भारतीय जनगणना २०११ के नवीन आंकड़ों के अनुसार मध्यप्रदेश में बैगा जनजाति की जनसंख्या ४१४५२६ (तालिका संख्या १.२.४) है। जिसमें पुरुष जनसंख्या २०७५८८ तथा महिला जनसंख्या २०६९३८ है। शोध के दौरान बैगा जनजाति की जनांकिकीय-संरचना के अध्ययन में १६४ परिवारों के प्रत्येक सदस्य की जानकारी प्राप्त की गयी जिसमें १६४ परिवारों में ९९७ सदस्य पाये गये। उसके आधार पर बैगा समाज की अध्यायित गाँवों में जो जनांकिकीय संरचना पायी गयी, वह सारणी क्रमांक १ से स्पष्ट होती हैः-

सारणी क्रमांक १-

अध्यायित जनसंख्या में लिंगानुसार प्रतिशत

कुल अध्यायित जनसंख्या	पुरुष	महिला
९९७(१००)	४९३(४९.५४)	५०४(५०.४६)

लिंगानुपात – वर्ष २००१ की जनगणना के अनुसार मध्य प्रदेश के बैगा जनजाति में लिंगानुपात-९८४ था जब कि वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार बैगाओं में लिंगानुपात ९९७ हो गया। अध्यायित १० गाँवों के, १६४ परिवारों के, ९९७ सदस्यों में बैगा जनजाति में लिंगानुपात अधिक पाया गया। एक हजार (१०००) पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या एक हजार बाईस (१०२२) पायी गयी। एल्विन (१९३९:२८५) के अनुसार-१९३१ में बैगाओं का लिंगानुपात १००० पुरुषों पर १३५५ महिलाओं का था।[१०] अतः बैगा समाज में पचहत्तर वर्षों में लिंगानुपात में गिरावट आई है, लेकिन यह अभी भी राष्ट्रीय स्तर तथा प्रादेशिक स्तर के लिंगानुपात से अधिक है, जिसे सारणी क्रमांक २ में दर्शाया गया है।

सारणी क्रमांक २-

लिंगानुपात की तुलना

अध्यायित गाँवों	सन् १९३१ में	सन् २०११ में
१००० पुरूषों	१००० पुरूषों	१००० पुरूषों
१०२२ महिलायें	१३५५ महिलायें	९९७ महिलायें

सारणी क्रमांक ३-

शोध में प्राप्त बैगा जनांकिकीय तथ्यों का विवरण

जनांकिकीय तथ्य	संख्या	प्रतिशत
बालक (अविवाहित पुरुष)	२७४	२७.४८
बालिका (अविवाहित महिला)	२८३	२८.३८
विवाहित पुरुष (५५ वर्ष तक)	१८२	१८.२५
विवाहित महिला (५५ वर्ष तक)	१८२	१८.२५
५५ वर्ष से अधिक आयु के पुरुष	१६	१.६०
५५ वर्ष से अधिक आयु के महिला	२१	२.१०
विधुर	०६	०.६०
विधवाएँ	१०	१.००
परित्यक्त पुरुष	०६	०.६०
परित्यक्त महिलाएँ	०८	०.८०
कुल सदस्य	९९७	१००

उपर्युक्त सारणी क्रमांक ३ में प्रदर्शित प्रतिशत को कुल जनसंख्या ९९७ से निकाला गया है। उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि अध्यायित गाँवों के बैगा समाज में जनांकिकीय दृष्टि से प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। बालिकाओं की संख्या बालकों से अधिक है। ५५ वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या अधिक है। विधुर की तुलना में विधवा अधिक हैं।

शोध के दौरान बैगा समाज में महिलाओं की संख्या का पुरुषों की तुलना में अधिक पाया जाना, महिलाओं की जीवन-प्रत्याशा पुरुषों की तुलना में अधिक होना प्रमाणित करता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य तथ्य, बैगा समाज में महिलाओं के प्रति लैंगिक भेद-भाव न्यूनतम या नहीं होना भी प्रकट होता है क्योंकि कन्या जन्म को रोकने के प्रयास न करने के कारण बैगाओं में लिंगानुपात अधिक (१०२२) पाया गया है।

विकास विवरण – अनुसूचित जनजातियाँ जिन्हें भारतीय वर्ण व्यवस्था में सर्वाधिक निम्न स्थान प्राप्त है, के लिए सामाजिक व्यवहार में 'हरिजन' तथा वैधानिक व्यवहार में 'अनुसूचित जनजाति' जैसे शब्द का प्रयोग होता है। समाज में इन्हें अन्य जातियों के समक्ष लाने के लिए भारतीय संविधान द्वारा कुछ विशेष अधिकार और सुविधायें दी गईं एतदर्थ, इन्हें शिक्षा तथा नौकरी आदि क्षेत्रों में विशेष सुविधा (आरक्षण की सुविधा) दी गई है, अनुच्छेद १४, १५, १७, १६, २३, २५, ४६, ७६, ३३०, ३३२, ३३४, ३३५, आदि सभी का सम्बन्ध अनुसूचित जाति-जनजाति तथा सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के कल्याण से सम्बन्धित है। अनुसूचित जनजातियों के लिए ६५वें संविधान संशोधन द्वारा एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया है।

उपर्युक्त संवैधानिक संरक्षण देने के परिणाम स्वरूप ही अनुसूचित जनजातियों में विकास के विभिन्न क्षेत्रों (सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक) में परिवर्तन आया है और लोगों का

इनके प्रति नजरिया भी परिवर्तित हुआ है। यह परिवर्तन ग्रामों की अपेक्षा नगरों तथा अशिक्षित की अपेक्षा शिक्षित क्षेत्रों में अधिक देखा गया है किन्तु मात्र प्रशासनिक व संवैधानिक व्यवस्था ही इनके कल्याण हेतु पर्याप्त नहीं है वरन् विभिन्न सामाजिक संगठनों को भी आगे आना होगा। यद्यपि कई सामाजिक संगठन कार्यरत हैं किन्तु इन्हें अपने कार्य में और अधिक दक्षता व पारदर्शिता लानी होगी।

बैगा वर्तमान मध्यप्रदेश की तीन प्रमुख आदिम जनजातियों में से एक है। ये डिण्डोरी, मण्डला, शहडोल, उमरिया, बालाघाट, सहित देश के कई भागों में फैले हुये हैं। भोपाल के जनजातीय विकास संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार यह राज्य की सबसे पिछड़ी जनजातियों में से एक है। हाल के वर्षों तक बैगा जनजाति के लोग झूम कृषि (बेवार) करते रहे हैं। अब उन्हें इस कृषि व्यवस्था को छोड़ने की सलाह दी गयी है (या उन पर ऐसा करने के लिए दबाब डाला गया है)। डिण्डोरी जिले के ५२ गाँवों में बैगा चक आरक्षित क्षेत्र के भीतर ही उन्हें सीमित स्तर पर बेवार खेती की अनुमति है। यद्यपि अब वे हल चलाकर कृषि करने की आवश्यकता के लिए मानसिक रुप से तैयार हो रहे हैं किन्तु आज भी कुछ अपने अतीत की यादों में खोये रहते हैं, जब वे बेवार के द्वारा १२ प्रकार के अनाज उगाया करते थे। बेवार खेती में हल की जगह कुदाली का प्रयोग किया जाता है।

१६३५ में सरकार ने बैगा गॅावों को वन ग्राम घेषित किया था। बैगा जनजाति को अत्यन्त पिछड़े स्तर पर रखते हुये 'शेड्यूल्ड एरिया एण्ड शेड्यूल्ड ट्राइब कमीशन' ने १६६०-६१ में मध्य प्रदेश की ६वीं विशेष पिछड़ी जनजाति के रूप में अनुसूचित किया। ६वीं योजना के प्रारंभ में जनजातीय विकास हेतु नयी परियोजनायें एवं विशेष विकास अभिकरण बनाये गये। अतः बैगा विकास हेतु बैगा विकास अभिकरण, बैगा विकास परियोजना जिला मण्डला को मध्यप्रदेश सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट १६७३ के तहत पंजीकृत कराया गया; जिसका मुख्यालय डिण्डोरी में स्थापित किया गया। बैगा विकास अभिकरण, बी.डी.ए. को बैगा विकास का दायित्व सौंपा गया। वर्तमान में बैगा विकास अभिकरण डिण्डोरी के कार्य क्षेत्र में बैगाचक के ५२ गांव सम्मिलित हैं।

शैक्षिक विकास विवरण – बैगा जनजाति का शैक्षिक स्तर निम्न है। १६८१ की जनगणना के अनुसार बैगा जनजाति की शिक्षा का स्तर मात्र ३.६२ था जिसमें पुरुष साक्षरता दर ६.७ तथा महिला साक्षरता दर ०.५० थी। जबकि प्रदेश में अनुसूचित जनजाति की साक्षरता दर १०.८८ थी। सन् २००१ की जनगणना में मध्यप्रदेश की बैगा जनजाति में साक्षारता दर बढ़कर ११.४ हो गई। सन् २०११ की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश की बैगा जनजाति में शैक्षिक स्तर बढ़ कर ४७.२ हो गया है। यह एक उल्लेखनीय प्रगति है। किन्तु बैगा अब भी अपने पड़ोसी गोंड और देश की अन्य जनजातियों की तुलना में शिक्षा के मामले में बहुत पीछे हैं। स्त्री शिक्षा में इनकी स्थिति और भी ज्यादा खराब है। नीचे सारणी क्रमांक ४ में मध्यप्रदेश की बैगा एवं उनके पड़ोसी गोंड जनजाति का तुलनात्मक शैक्षिक विवरण दिया गया है।

सारणी क्रमांक- ४ मध्यप्रदेश की बैगा एवं गोंड जनजाति का तुलनात्मक शैक्षिक विवरण

जनजाति	कुल जनसंख्या	साक्षरता		
		कुल साक्षरता	पुरुष	महिला
बैगा	४१४५२६	४७.२	५६.४	३७.६
गोड़	५०६३१२४	६०.१	७०.०	५०.२

चार दशकों तक उद्योगों में काम करने विभिन्न औद्योगिक कस्बों में बस जाने और ऊर्ध्व गतिशिलता की भावना मन में घर कर जाने के कारण जनजातीय लोगों ने आधुनिक शिक्षा के महत्व को समझ लिया है। जनजातीय शिक्षा के विन्यास में अध्ययन से दो महत्वपूर्ण समस्यायें सामने आती हैं। जनजातीय बच्चों द्वारा बीच में पढ़ाई छोड़ने की दर बहुत ऊँची है और माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं में यह दर और भी अधिक है। दूर दराज के गांवों में रहने वाले जनजातीय लोगों के बच्चों के लिए आश्रम विद्यालय खोले गये हैं। प्रत्येक जनजातीय बस्ती के लिये एक अलग स्कूल की स्थापना संभव नही है। किन्तु सब बच्चों के लिए निकटतम नियमित विद्यालय इतने दूर होते हैं कि बच्चा स्कूल जा कर उसी दिन घर नहीं लौट सकता है इसलिए आश्रम स्कूल खोले गये हैं जहां बच्चों के रहने एवं खाने पीने की निःशुल्क व्यवस्था होती है। इन विद्यालयों में शिल्प आधारित शिक्षा प्रदान की जाती है। इस प्रकार शिक्षा को उत्पादक गतिविधियों से संबंध किया गया है। स्कूली शिक्षा पूर्ण करने पर छात्र कोई न कोई शिल्प आधारित व्यवसाय प्रारंभ करने के लिए तैयार हो चुका होता है। इस प्रकार जनजातीय

लोगों में विविध प्रकार के व्यवसायों का चलन हो सकेगा। **शोध** के दौरान पाया गया कि अध्यायित कुल १६४ परिवारों में से मात्र ७६ परिवार साक्षर हैं। साक्षर परिवार से आशय यहाँ पर ऐसे परिवारों से हैं जिनमें कम से कम परिवार का एक सदस्य शिक्षित है न कि पूरा परिवार।

शोध के दौरान बैगाओं की कक्षावार शैक्षिक स्थिति लिंगानुसार निम्न प्रकार से पायी गयी :-

सारणी क्रमांक ५-लिंगानुसार, कक्षावार शैक्षिक स्थिति

५ वीं		८ वीं		१० वीं		१२ वीं	
पुरुष	महिला	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला
३६ (७.६)	३६ (७.१४)	२५ (५.०७)	२२ (४.३६)	१२ (२.४३)	०६ (१.७८)	०७ (१.४१)	०६ (१.१६)

सारणी क्रमांक ५ में पुरुष और महिला साक्षरता प्रतिशत पुरुषों और महिलाओं की अध्यायित जनसंख्या क्रमशः ४६३ और ५०४ से निकाला गया है। सारणी से स्पष्ट होता है कि कक्षा ५ से कक्षा १२ की ओर महिला एवं पुरुष दोनों की संख्या लगातार घटती गई है। लिंगानुसार भी दोनों में अन्तर प्रदर्शित होता है।

सारणी क्रमांक ६ कुल साक्षरता की स्थिति

कुल साक्षरता	पुरुष साक्षरता	महिला साक्षरता
१५६ (१५.६४)	८३ (१६.८३)	७३ (१४.४८)

सारणी क्रमांक ७(क)

शिक्षा सत्र २०१२-२०१३ में अध्यायित ग्रामों के बैगा विद्यार्थियों की कक्षावार स्थिति

कक्षा १ से कक्षा ५ तक			कक्षा ६ से कक्षा ८ तक		
कुल विद्यार्थी	बैगा बालक	बैगा कन्या	कुल विद्यार्थी	बैगा बालक	बैगा कन्या
६२६ (१००)	६५ (१०.३३)	६२ (६.८५)	१७८ (१००)	२२ (१२.३५	११ (६.१७)

सारणी क्रमांक ७(ख)

शिक्षा सत्र २०१२-२०१३ में अध्यायित ग्रामों के बैगा विद्यार्थियों की कक्षावार स्थिति

कक्षा ६ से कक्षा १० तक			कक्षा १० से कक्षा १२ तक		
कुल विद्यार्थी	बैगा बालक	बैगा कन्या	कुल विद्यार्थी	बैगा बालक	बैगा कन्या
६० (१००)	०८ (८.८८)	०२ (२.२२	३६ (१००)	०३ (७.६६)	०२ (५.१२)

श्रोतः अध्यायित ग्रामों के विद्यालयों की दैनिक उपस्थिति पंजी

सारणी क्रमांक ७ (क) एवं ७ (ख) से स्पष्ट होता है कि कक्षा १ से कक्षा १२ की ओर क्रमशः कक्षावार कुल विद्यार्थियों के मुकाबले बैगा बालक एवं बालिकाओं की संख्या निरंतर घटती गई है। कक्षा १० से १२ में तो कुल ३६ विद्यार्थियों में मात्र तीन बैगा बालक एवं २ बैगा बालिकाएँ पाई गई हैं।

सारणी क्रमांक ८

अन्य छात्र-छात्राओं के साथ बैगा छात्र-छात्राओं की तुलनात्मक स्थिति (शिक्षा सत्र २०१२-२०१३ में)

कुल विद्यार्थी	कुल बैगा विद्यार्थी	कुल बैगा छात्र	कुल बैगा छात्राएँ
६३६ (१००)	१७५ (१८.६६)	६८ (१०.४७)	७७ (८.२२)

सारणी क्रमांक ८ में अध्यायित गाँवों के कुल छात्र-छात्राओं की तुलना में बैगा छात्र-छात्राओं की तुलनात्मक स्थिति का विवरण दिया गया है।

सारणी क्रमांक ६ राज्य स्तर पर बैगा जनजाति का शैक्षिक स्तर

कुल साक्षरता	प्राथमिक विद्यालय स्तर से नीचे	प्राथमिक विद्यालय	माध्यमिक विद्यालय	उच्च. मा. विद्या.	तकनीकि और गैरतकनीकि डिप्लोमा	स्नातक स्तर से ऊपर
११.४	५०.४	२६.०	८.३	३.४	०.०	०.५

सारणी क्रमांक ६ से स्पष्ट होता है, कि प्राथमिक स्तर तक पढ़ने वाले बैगा विद्यार्थियों की संख्या माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक की तुलना में काफी अधिक है। इसका कारण यह है, कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय क्षेत्र में काफी दूर-दूर खोले गये हैं, जबकि प्राथमिक विद्यालय अधिकांश गाँवों में खोले गये हैं।

निष्कर्ष : अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अशिक्षा इनकी समस्याओं की जड़ है। अशिक्षित होने के कारण ये अपने हित-अहित में अन्तर नहीं कर पाते हैं। जागरूकता एवं दूरदर्शिता का अभाव रहता है। साथ ही सरकारी सुविधाओं का लाभ उठाने से भी वंचित रहे जाते हैं। बैगा अपनी गरीबी एवं अशिक्षा के कारण तात्कालिक समस्याओं के निदान पर अधिक ध्यान देते हैं, उनमें दूर-दर्शिता का अभाव होता है। कुछ बैगा परिवार छोटे बच्चों को स्कूल भेजने की अपेक्षा सम्पन्न व्यक्तियों के यहाँ गृह-कार्य अथवा अन्य छोटे-मोटे कार्यों को कराकर मजदूरी प्राप्त करना अधिक पसन्द करते हैं। यद्यपि इस जनजाति में शिक्षा के प्रति विगत वर्षों में काफी जागरुकता आई है तथा अधिकांश बैगा अपने बच्चों को विद्यालयों में भेजने लगे हैं। जनजातीय साक्षरता में निश्चित रूप से वृद्धी हुई है, परंतु विद्यालयों में उच्च कक्षाओं तक पढ़ायी जारी रखने और फिर महाविद्यालयों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम है। जैसा की पहले कहा गया कि बीच में पढ़ाई छोड़ने की दर बहुत अधिक है और लड़कियों के मामले में यह और भी ज्यादा है। मिश्रित क्षेत्रों में जहां छोटी तथा बड़ी जनजातियां मिलजुल कर रहती हैं वहां छोटी जनजातियों में पढ़ाई बीच में छोड़ देने की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक है।

आश्रम विद्यालयों के मूल्यांकन अध्ययनों में अलग तरह के तथ्य सामने आये हैं। पाठ्यक्रमों में अधिक रुझान साक्षरता आधारित शिक्षा की ओर रहता है। शिल्प आधारित शिक्षा प्रदान करने का प्रयास आधे-अधूरे मन से किये जाते हैं। जिस विशेष उद्देश्य से आश्रम विद्यालय खोले गये हैं वह उपेक्षित हो जाता है और वे भी अन्य सामान्य विद्यालयों जैसे बन जाते हैं।

बैगा चक में हमने देखा कि बैगा विद्यार्थी सामान्यतः प्राथमिक शिक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं; जबकि गोण्ड विद्यार्थी उच्च कक्षाओं तक पढ़ाई जारी रखते हैं। शिक्षा आधुनिकता का एक महत्वपूर्ण कारण है किन्तु जब जनजातीय लोग इसका लाभ नहीं उठा पाते हैं तो उनमें आधुनिकता, गतिशीलता, तथा व्यवसायों की विविधता लाने की गुंजाइश कम हो जाती है।

संदर्भ

१ हसनैन, नदीम, जनजातीय भारत, दिल्ली, जवाहर प्रकाशन, २००१, पृ.११

२ Russell, Robert Vane Tribes and Castes of the Central Provinces of India London: Macmillan & Co.1916%77

३. तिवारी शिवकुमार, 'मध्य प्रदेश की जनजातीय संस्कृति', मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल, १६६४, पृ. ६६

४. Singh, K S, 'Tribal Society in India', Manohar Publication, Delhi,1995, p. 79

५ मिश्रा, शिवाकान्त, 'मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १६६८, पृ. ४५

६ Russell Robert Vane, 'Tribes and Castes of the Central Provinces of India', Macmillan & Co., London, 1916, p.78

७ तिवारी शिवकुमार, पूर्वोक्त, पृ. १०६

८ Elwin, Verrier, 'The Baiga', John Murray, London, 1939, p. 53

६ Russell, Robert, Vane, op.cit. p. 78

१० Elwin, Verrier, op.cit., p. 285

११ बैगा विकास अभिकरण प्रगति प्रतिवेदन, २०१२

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी-जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

बाल अपराधियों पर सम्प्रेक्षण गृहों का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ श्रीराम यादव

बाल अपराध यद्यपि समाज के लिए एक भयंकर चुनौतीपूर्ण समस्या है, तथापि इस समस्या के निवारणार्थ अब तक किसी स्वस्थ मार्ग का अन्वेषण नही किया जा सका है।अपराधशास्त्री जब अपनी इस असफलता पर विचार करते है तो उनकी पहली शिकायत यह होती है कि जो भी कार्यक्रम बाल अपराध की समस्या के नियंत्रण के लिए चलाये गये हैं, उनमें साधनों का अभाव है, उनकों चलाने के लिए योग्य व्यक्ति उपलब्ध नही हैं तथा उनमें न तो जनता का विश्वास है और न सहयोग ही। इस संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत जिन संप्रेक्षण गृहों में बाल अपराधी रह रहे हैं वहां की स्थितियों का आकलन करने का प्रयास किया गया है।

हमारे देश में बाल अपराधियों की संख्या दिनो-दिन बढ़ती जा रही है। खासतौर पर निम्न आर्थिक वर्ग से संबंधित वह बच्चे जो झुग्गी झोपड़ी में रहते हैं। वे इन अपराधों की चपेट में जल्दी आ जाते हैं, क्योंकि उनके माता-पिता दोनों ही मजदूरी करते हैं इसलिए वह अपने बच्चे पर ध्यान नही दे पाते। लेकिन सिर्फ यह समझ लेना कि बाल अपराध इसी वर्ग तक सीमित हैं तो यह कदाचित सही नही है। आंकड़ों की मानें तो पढ़े-लिखे और अच्छे स्कूल में जाने वाले बच्चे भी गलत क्रिया कलापों में संलिप्त हो जाते हैं जिसके पीछे सबसे बड़ा कारण यह होता है कि उनके माता-पिता उन पर ध्यान नही देते। वह अपने जीवन में स्वयं इतने व्यस्त होते हैं कि उन्हें बच्चों की सुध-बुध ही नही रहती। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि आज के बच्चे ही कल का भविष्य है जिनके कंधों पर हमारे समाज की पूरी जिम्मेदारी है। अगर हमारी अनदेखी की वजह से यह कंधे कमजोर पड़ जाएंगे तो यह हमारे लिए कतई हितकारी नहीं होगा। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि पारिवारिक वातावरण और आस-पास की परिस्थितियां मनुष्य के चरित्र निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। बचपन में ही व्यक्ति के आचरण और उसकी आदतें देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वयस्क होने के बाद वह समाज में अपनी कैसी पहचान बनाएगा। नकारात्मक परिस्थितियों के कारणवश कई बच्चे अपराध की दुनियॉ में कदम रख देते हैं, जो उनके सम्पूर्ण जीवन को अंधकार के गर्त में धकेल देता है। बचपन में किए गऐ उनके यही अपराध आगे चलकर उन्हें बड़ा अपराधी बना सकते है।[१]

शॉ और मैके ने अपनी पुस्तक 'Social Factors in Juvenile delinquency' Washington D.C. 1931 में बताया है कि बाल अपराध का प्रसार व्यक्तिगत और सामूहिक सम्पर्को से होता है और सामाजिक नियंत्रण की एजेन्सियों का अभाव बड़े नगरों के कुछ गांवों में अपराध की भारी संख्या को बढ़ाने में योगदान देता है।[२]

बाल्टर मिलर ने अपने अध्ययन में पाया कि निम्न वर्ग के बच्चों में आपराधिक क्रिया-विधि अधिक पायी जाती है। सड़क का समूह निम्न वर्ग के किशोर लड़कों का उद्धण्डता से कार्य करने का और विभिन्न गतिविधियों में लिन होने के अवसर प्रदान करता है।[३]

एल्वर्ट कोहेन ने माना हैं कि अपराध प्रमुख रूप से एक श्रमिक वर्ग की घटना है। इसके अनुसार श्रमिक वर्ग का लड़का जब कभी भी मध्यम वर्ग के संसार में जाता है तो वह अपने को स्थिति के सोपान से तल पर पाता है। इसके कारक श्रमिक वर्ग के लड़के कुंठित हो जाते हैं। मध्यम वर्ग के मूल्यों और मानदण्डों के विरूद्ध प्रतिक्रियाएं करने लगते है।[४]

फ्रेकलिन ई० इब्ल्यु के अनुसार बालकों पर उनके परिवारजनों, साथियों, पड़ोसियों एवं उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का प्रभाव अवश्य ही परिलक्षित होता है। जीवन यापन की कठिन परिस्थितियों से परेशान होकर माता-पिता अपने बच्चे को अल्पायु में ही कार्यो में लगाने का प्रयास करते है। बालको के अपराध के लिए माता-पिता ही उत्तरदायी हैं बालक कदापि नहीं। आपचारिक प्रवृत्ति या उनके द्वारा अपचार में प्रमुख प्रभाव उनके परिवारजनों, पारिवारिक परिस्थितियों अथवा उनके साथियों या पास-पड़ोस का पड़ता है।[५]

ऋचा साहनी एवं ऋचा राज सक्सेना ने बाल अपराध के बारे में अध्ययन किया है। वे कहती हैं कि बाल अपराध एक

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र विभाग, दी०द०उ०गो०वि०वि० गोरखपुर (उ०प्र०)

सामाजिक समस्या है और इस पर प्रभावी नियंत्रण आवश्यक है क्योंकि बच्चे ही हमारे देश के भविष्य होते हैं। बाल अपचार पर नियंत्रण के लिए एक प्रभावी कार्य योजना तैयार की जानी चाहिए। उपचार से ज्यादा अच्छा है बचाव करना। यदि किसी बच्चे में अपचारिता का विकास होता दिखे तो तुरन्त किसी अच्छे मनोचिकित्सा से परामर्श लेना चाहिए।[६]

इलियट और मैरिल ने बताया है कि अमेरिका में सर्वप्रथम शिकागो में किशोर न्यायालय की स्थापना १८६६ में हुई। यह न्यायालय अमेरिका में ही नही संसार में अपने ढंग का प्रथम एवं एक विशिष्ट न्यायालय था। इसकी स्थापना शिकागो बार एशोसियेशन तथा शिकागो के सामाजिक कार्यकताओं, नागरिक नेताओं और संगठनों के मिले-जुले प्रयासों का परिणाम था। यह न्यायालय निराश्रित, उपेक्षित और अपचारी बालकों के उपचार और नियंत्रण हेतु विर्मिनय एवं अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित किया गया था। अमेरिका में स्थापित इस पहले किशोर न्यायालय का मौलिक विचार यह था कि राज्य उन सभी बालकों के संरक्षक का कार्य करें जिनमें अपचार की प्रवृतियां उनकी विपरीत दशाओं के कारण पनप रही हैं। इसके पश्चात् पांच वर्ष के अन्दर अमेरिका के १० राज्यों में ऐसे न्यायालयों की स्थापना हुई। १६३८ में अमेरिका में फेडरल, ज्युविनाइल कोर्ट एक्ट पारित होने तक सभी राज्यों में किशोर न्यायालयों की स्थापना हो चुकी थी। आज संसार के सभी देशों में ऐसे न्यायालय है। इस कार्य में चिकित्सकों, मनोचिकित्सकों, मनोवैज्ञानिकों, सामाजिक कार्यकत्ताओं, अपराध वैज्ञानिकों और समाज वैज्ञानिकों सहित अधिवक्ताओं आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।[७]

Clifford R. Shaw and Henry D.Mckey ने Social Factors in Juvenile Delinqency में बताया है कि अमेरिका में बाल आपचारियों के लिए सुधारात्मक संस्थाओं की सर्वप्रथम स्थापना हुई। न्यूयार्क शहर में इस प्रकार की प्रथम संख्या ''हाउस ऑफ रिफ्यूज'' १८२५ में की गई थी। तत्पश्चात मैसाच्यूसेट्स में १८४७ में एक सुधार गृह स्थापित किया गया था किन्तु वहां का वतावरण जेल जैसा ही था। शनैःशनैः इन संस्थाओं के स्वरूप में परिवर्तन आया तथा निजी प्रशिक्षण पाठशालाएं तथा नगरपालिका पाठशालाएं भी बाल अपचारियों के सुधार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण हेतु स्थापित की गई। ब्रिटेन तथा अन्य पाश्चात्य देशों में इस प्रकार की संस्थाएं १६ वीं शताब्दी के अंतिम दशक में स्थापित की गई जिनमें ''बोस्टल गांव'' की सुधारात्मक संस्था में किशोर अपराधियों को सुधार हेतु रखा जाता था यह संस्था अपने-आप में अनूठी संस्था थी। इसमें अपचारियों का वर्गीकरण उनके व्यक्तित्त के गुणों, उनके द्वारा अपराध की गंभीरता, उनकी शिक्षा और उनके प्रशिक्षण की आवश्यकता के अनुसार किया जाता था, इस संस्था का प्रभाव अमेरिका एवं दुनिया के अन्य देशों में स्थापित की गई सुधारात्मक संस्थाओं पर पड़ा। बाल अपचारियों का प्रथम सुधारात्मक स्कूल भारत में १८८३ में डॉक्टर बुइस्ट द्वारा मुम्बई में स्थापित किया गया था जो वर्तमान समय में डेविड सवसून इण्डस्ट्रियल स्कूल के नाम से जाना जाता है।[८]

उद्देश्य :-प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य बाल-अपराधियों के साथ सम्प्रेक्षण गृह में किये गये व्यवहारों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन करना है।

शोध प्रारूप :- प्रस्तुत अध्ययन के लिए गोरखपुर मण्डल के राजकीय सम्प्रेक्षण गृह में रखे गये बाल अपराधियों का चयन किया गया है। वर्तमान समय में यहां ६६ बाल अपराधी हैं। इनमें सिर्फ बाल अपराधी लड़कों को ही रखा गया है जिसमें से ५० का चयन सुविधाजनक निदर्शन के माध्यम से किया गया है। इनसे साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सूचनाओं का संकलन किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में चयनित उत्तरदाताओं (बाल-अपराधियों) के साथ सम्प्रेक्षण गृह में किये गये व्यवहार, उनकी आवश्यकता की पूर्ति एवं सुविधाओं का विश्लेषण निम्न प्रकार है-

तालिका संख्या १

सम्प्रेक्षण गृह में लाये जाने का स्थान

स्थान	संख्या	प्रतिशत
सड़क के किनारे से	२०	४०
रेलवे प्लेटफार्म	८	१६
शराब के अड्डे	४	८
वेश्यालय के पास से	४	८
घर या गांव से	३	६
कोर्ट थाने में हाजिर	११	२२
योग	५०	१००

सर्वेक्षण की तालिका संख्या- १ अनुसार गोरखपुर मण्डल के संम्प्रेक्षण गृह में ४० प्रतिशत बच्चे सड़क के किनारे से १६ प्रतिशत बच्चे रेलवे प्लेटफार्म से तथा २२ प्रतिशत बच्चे थाने से लाये गये है। इसके अतिरिक्त २२ प्रतिशत बच्चे शराब के अड्डों, वेश्यालयों के पास से तथा घर या गांव से लाये गये है।

तालिका संख्या- २
त्यौहार पर विशेष मिठाई का वितरण

मानक	संख्या	प्रतिशत
हॉ	३०	६०
नहीं	१५	३०
कभी-कभी	५	१०
योग	५०	१००

तालिका संख्या- ३
मिठाई वितरण कब की जाती है

मिठाईयां	संख्या	प्रतिशत
सामान्य रूप से	-	-
अधिकारी के आने	१०	२०
आफिस की मांग पर	१५	३०
त्यौहार पर	१५	३०
सप्ताह में एक दिन	५	१०
महीने में एक दिन	५	१०
योग	५०	१००

जैसा कि तालिका २ व ३ से ज्ञात होता है कि सम्प्रेक्षण गृह में विशेष अवसरों व त्योहारो पर मिठाई वितरण भी की जाती है। जिसमें ३० प्रतिशत बच्चे ने त्योहारों पर, ३० प्रतिशत ने कहा आफिस की मांग पर, १० प्रतिशत के अनुसार महीने में एक दिन, २० प्रतिशत ने कहा अधिकारियों के आने पर तथा १० प्रतिशत बच्चों ने कहा कि हफ्ते में एक दिन मिठाई वितरण की जाती है।

तालिका संख्या- ४
स्वास्थ्य व्यवस्था

मानक	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	१०	२०
संतोषजनक	३०	६०
असंतोषजनक	१०	२०
योग	५०	१००

तालिका संख्या- ४ के अनुसार से सम्प्रेक्षण गृह में चिकित्सा की सुविधाओं को दर्शाया गया है। इसमें ६० प्रतिशत बाल अपराधियों ने कहा है कि सम्प्रेक्षण गृह में स्वास्थ्य सुविधा संतोषजनक रहती है। शेष ४० प्रतिशत बालकों में से २० प्रतिशत ने कहा कि चिकित्सा सुविधा सामान्य तथा २० प्रतिशत ने असंतोषजनक कहा।

तालिका संख्या- ५
आवश्यकता पूर्ति

मानक	संख्या	प्रतिशत
हॉ	३०	६०
नहीं	१२	२४
कभी-कभी	८	१६
योग	५०	१००

सर्वेक्षण की तालिका संख्या- ५ अनुसार सम्प्रेक्षण गृह में ६० प्रतिशत बाल अपचारियों ने कहा कि उनकी आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती है। वहीं २४ प्रतिशत ने नही तथा १६ प्रतिशत ने कहा कि कभी-कभी आवश्यकता पूर्ति हो जाती है।

तालिका संख्या- ६
पढ़ने-लिखने की व्याख्या

व्यवस्था	संख्या	प्रतिशत
अखबार	१०	२०
कापी किताब	२५	५०
पत्रिकाएं	८	१६
ज्ञानवर्धक पुस्तके	४	८
अन्य	३	६
योग-	५०	१००

यहां १० प्रतिशत में अखबार, ५० प्रतिशत में कापी किताब तथा शेष ४० प्रतिशत सम्प्रेक्षण गृह में पत्रिकाएं, ज्ञानवर्धक पुस्तके व अन्य उपयोगी पुस्तके पायी गयी।

आमोद- प्रमोद के कार्यक्रम खेलकूद, कीड़ा :- सर्वेक्षण की तालिका संख्या- ७ के अनुसार सम्प्रेक्षण गृह में खेलकूद की व्यवस्था के अन्तर्गत ६० प्रतिशत सम्प्रेक्षण गृह में कैरमबोर्ड, २० प्रतिशत में शतरंज तथा १६ प्रतिशत में बैडमिंटन तथा ४ प्रतिशत में कबड्डी जैसी व्यवस्था भी पायी गयी है।

तालिका संख्या- ७
आमोद-प्रमोद व खेलकूद

व्यवस्था	संख्या	प्रतिशत
शतरंज	१०	२०
कैरमबोर्ड	३०	६०
बैडमिंटन	८	१६
कवड्डी	२	४
फुटबाल	-	-
बॉलीबाल	-	-
योग	५०	१००

रेडियों, टेलीविजन तथा टेप संगीत - सर्वेक्षण की तालिका संख्या- ८ के अनुसार सम्प्रेक्षण गृह में मनोरंजन के

रूप में ७० प्रतिशत में टी०वी० तथा १६ प्रतिशत में कम्प्यूटर, १० प्रतिशत में रेडियों, तथा ४ प्रतिशत में टेप रिर्काडर पायी गयी।

तालिका संख्या- ८
मनोरंजन के रूप :-

साधन	संख्या	प्रतिशत
टी०वी०	३५	७०
रेडियो	५	१०
कम्प्यूटर	८	१६
टेप रिर्काडर	२	४
योग	५०	१००

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि बाल- अपराधियों को सुधारने के लिए सम्प्रेक्षण गृहों में उन्हें अच्छा बनाने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाया जाता है जिससे वे अपराधिक गतिविधियों को छोड़ सके तथा अपने नैतिक गुणों का विकास कर सके।

बाल अपराध यद्यपि समाज के लिए एक भयंकर चुनौतीपूर्ण समस्या है, तथापि इस समस्या के निवारणार्थ अब तक किसी स्वस्थ मार्ग का अन्वेषण नही किया जा सका है। बाल अपराध के आँकड़े इस बात को स्पष्ट करते है कि समस्या घटने के स्थान पर द्रोपदी के चीर के समान बढ़ती जा रही है और हमारे प्रयत्न असफल हो रहे है। इस वस्तुस्थिति को देखते हुए समस्या के निदान एवं निराकरण का प्रश्न हमारे लिए चिंतन का विषय बना हुआ है। अपराधशास्त्री जब अपनी इस असफलता पर विचार करते है तो उनकी पहली शिकायत यह होती है कि जो भी कार्यक्रम बाल अपराध की समस्या के नियंत्रण के लिए चलाये गये हैं, उनमें साधनों का अभाव है, उनकों चलाने के लिए योग्य व्यक्ति उपलब्ध नही हैं तथा उनमें न तो जनता का विश्वास है और न सहयोग ही।

बाल अपराध की समस्या के निवारण तथा नियन्त्रण के सम्बन्ध में किये गये अनुसंधान परिणामों से स्पष्ट रूप से ज्ञात हुआ है कि इस समस्या के निवारण तथा नियन्त्रण के लिए अब तक कोई योजना कार्यान्वित नही की जा सकी है। किसी ठोस योजना के अकार्यान्वयन के दो प्रधान कारण रहे है। प्रथमतः समस्यागत अध्ययन परिणामों में एकीकरण का अभाव रहा है तथा द्वितीयतः, पर्याप्त आर्थिक साधनों की अनुपलब्धता रही है।

सन्दर्भ

१ भार्गव महेश : आधुनिक मनोविज्ञान, मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं भाषा, हर प्रसाद भार्गव, १९९८, पृ. ८

२ Clifford. R. Shaw and Henry D. Mckey: Social Factors in Juvenile Delinquency Was Hington D.C. 1931.

३ Miller Walter, "Lower Class Culture as a Generating Milieu of Gang Delinquency" Journol of social Issues, No. 3, 1958.

४ Cohen Albert, Delinquent Boys: The Culture of the Gang, The Free Press, Glencoe, 1955

५ इब्ल्यु फ्रेकलिन ई० सामाजिक अध्ययन मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड मुम्बई १९६१।

६ साहनी ऋचा, ऋचा राज सक्सेना, 'बाल श्रम समस्या एवं समाधान', लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली, २०१० पृ. १६

७ Elliott Merrial, 'Social Disorganisation' Harper and Brothers New Yourk. 1950.

८ वही

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

पेपर मिल में कार्यरत् श्रमिकों की समाजार्थिक स्थिति

❑ चन्द्रा गोस्वामी

प्राचीन काल में भारत में तालपत्रियों, ताड़पत्रों व भोजपत्रों को लेखन कार्य में प्रयुक्त किया जाता था परन्तु वर्तमान समय में लेखन कार्य हेतु पेपर का ही प्रयोग किया जाता है। भारत में माड़ एवं पेपर उद्योग आज की स्थिति में एक स्थापित उद्योग के रूप में जाना जाता है। प्रस्तुत लघु शोध के अंतर्गत नैनीताल जिले के लालकुँआ तहसील में पेपर मिल में कार्यरत श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा कार्य सम्बन्धी दशाओं का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना – औद्योगिक समाजों की स्थापना में मशीनों के अविष्कार एवं बड़े उद्योग-धन्धों का विशेष योगदान हैं। जिस देश में जितनी अधिक तीव्र गति से उद्योगों का विकास होता है, वह देश उतनी ही तीव्र गति से उन्नति की ओर आगे बढ़ता है।[१] स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की औद्योगिक संरचना की तस्वीर इतनी अच्छी नही थी जितनी आज है। वर्तमान समय में भारत मे अनेक उद्योगों की स्थापना हो चुकी है। उनमें पेपर उद्योग भी प्रमुख है।

प्राचीन काल में भारत का संस्कृति तथा साहित्य के क्षेत्र में विश्व में सर्वोच्च स्थान था। यहां पर तालपत्रियों, ताड़पत्रों व भोजपत्रों को लेखन कार्य में प्रयुक्त किया जाता था परन्तु वर्तमान समय में लेखन कार्य हेतु पेपर का ही प्रयोग किया जाता है।[२] भारत में प्रथम पेपर मिल पश्चिम बंगाल प्रान्त के सीरामपुर नामक स्थान पर सन् १८१२ में स्थापित की गयी थी। यह मिल मुख्यतया घासफूस एवं जूट को कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त करती थी। पेपर उद्योग में व्यापक स्तर पर मशीनीकरण, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग सन् १६०५ में शुरू किया गया। भारत में माड़ एवं पेपर उद्योग आज की स्थिति में एक स्थापित उद्योग के रूप में जाना जाता है। इस तरह पेपर उद्योगों के विकास के तारतम्य में नैनीताल जिले के लालकुँआ तहसील में स्थित पेपर मिल की स्थापना घनश्याम दास विरला द्वारा १६८४ ई० में की गई। इस मिल में स्थायी व अस्थायी श्रमिक कार्यरत है, जो स्थायी अथवा अस्थायी रुप से यहॉ के निवासी हैं।

सेन्चुरी पेपर मिल लालकुँआ तहसील के दक्षिण दिशा में स्थित हैं। यह एशिया की सबसे बड़ी कागज निर्माण मिल है। लालकुँआ तहसील के उत्तर में नैनीताल व हल्द्वानी नगर स्थित है, दक्षिण में पन्तनगर है। इसके उत्तर पश्चिम की ओर लालकुँआ रेलवे स्टेशन तथा उत्तर पूर्व में फैक्ट्री द्वारा आवासीय सुविधा हेतु तीन मंजिला इमारत बनायी गयी है, जिसमें सिर्फ स्थायी कर्मचारी रहते हैं। लालकुँआ सेन्चुरी पेपर मिल के अन्दर पूर्व की ओर, फैक्ट्री सीमा के भीतर लालकुँआ सेन्चुरी पेपर मिल द्वारा स्थापित एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र है। लालकुँआ पेपर मिल में लगभग ८७०० श्रमिक कार्यरत हैं, जिसमें ३५०० स्थायी, ४७०० अस्थायी तथा ५०० अन्य है।[३]

लालकुँआ सेन्चुरी पेपर मिल के द्वारा अनेक श्रमिक, व्यापारी, कर्मचारियों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से जीविका प्राप्त होती है। लालकुँआ सेन्चुरी पेपर मिल के स्थापित होने के बाद यहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संरचना में व्यापक परिवर्तन आया हैं जिनमें कुछ परिवर्तन सकारात्मक हुए तो वहीं कुछ परिवर्तन नकारात्मक भी हुए हैं। आज उद्योग हमारे देश की विकास की आधारशिला है, बहुराष्ट्रीय कल-कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की दशा एवं दिशा का अध्ययन अति प्रासंगिक हो गया है। श्रमिक वर्ग किसी भी उद्योग निर्माण की आधारशिला होता है, इसी क्रम में श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने का प्रयास किया गया हैं।

शोध प्रारुप – प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य पेपर मिल में कार्यरत श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा कार्यसम्बन्धी दशाओं का अध्ययन करना है। अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के लिये उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल जनपद के लालकुँआ क्षेत्र के सेन्चुरी पेपर मिल में कार्यरत् ५० श्रमिकों का उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि के आधार पर चयन किया गया। तत्पश्चात् साक्षात्कार अनुसूची द्वारा श्रमिकों से जानकारी प्राप्त की गई।

उद्देश्य –

१. श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
२. श्रमिकों के लिए उपलब्ध सुविधाओं एवं कार्यसम्बन्धी

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, एम.बी.जी.पी.जी. कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

दशाओं का अध्ययन करना।

उपलब्धियाँ- श्रमिकों की समाजार्थिक स्थिति तथा कार्यसम्बन्धी दशाओं को निम्न तालिकाओं द्वारा दर्शाया गया है:

तालिका संख्या - १

श्रमिकों के परिवार का स्वरुप

परिवार का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत्
संयुक्त परिवार	१०	२०
एकाकी परिवार	३८	७६
अन्य	०२	०४
योग	५०	१००

तालिका संख्या १ द्वारा स्पष्ट होता है कि पेपर मिल में कार्यरत २० प्रतिशत श्रमिक संयुक्त परिवार में रहते है। ७६ प्रतिशत श्रमिक एकाकी परिवार में रहते हैं, जबकि ४ प्रतिशत श्रमिक ऐसे है, जो संयुक्त परिवार व एकांकी परिवारों के मिलेजुले रुप में रहते है अर्थात् संयुक्त चूल्हे का अभाव है परन्तु ये परिवार खाद्य पदार्थों के अलावा अन्य वस्तुओं की खरीद पर संयुक्त रुप से व्यय करते है जैसे- जमीन की खरीद, प्रॉपटी खरीदना आदि। इन मिले-जुले परिवार का अलग रहने का प्रमुख कारण यह है कि जीविका कमाने के लिए इसके सदस्य चाहते हुए भी एक साथ एक छत के नीचे नही रह पाते एवं एकाकी परिवारों की ओर अधिक अग्रसर हैं।

तालिका संख्या - २

श्रमिकों का आयु के आधार पर वितरण

आयु वर्ग	संख्या	प्रतिशत्
१८-२५	०२	०४
२५-३०	१२	२४
३०-३५	१०	२०
३५-४०	०६	१८
४०-४५	०३	०६
४५-५०	०४	०८
५०-५५	०७	१४
५५-६०	०३	०६
योग	५०	१००

तालिका संख्या २ द्वारा स्पष्ट होता है कि पेपर मिल में कार्यरत ४ प्रतिशत श्रमिक १८-२५ आयु वर्ग के हैं, २४ प्रतिशत २५-३० आयु वर्ग के है। २० प्रतिशत ३०-३५ आयु वर्ग के है। १८ प्रतिशत ३५-४० आयु वर्ग के है। ६ प्रतिशत ४०-४५ आयु वर्ग के, ८ प्रतिशत ४५-५० आयु वर्ग के, १४ प्रतिशत ५०-५५ आयु वर्ग के, तथा ६ प्रतिशत श्रमिक ५५-६० आयु वर्ग के हैं।

तालिका संख्या - ३

श्रमिकों का शैक्षिक स्तर

शैक्षिक स्तर	संख्या	प्रतिशत्
हाईस्कूल	०६	१८
इंटरमीडिएट	२१	४२
स्नातक	१६	३२
स्नातकोत्तर	०४	०८
योग	५०	१००

तालिका संख्या ३ द्वारा स्पष्ट होता है कि १८ प्रतिशत श्रमिक हाईस्कूल तक शिक्षित हैं। ४२ प्रतिशत श्रमिक इंटरमीडिएट तक शिक्षित हैं। ३२ प्रतिशत श्रमिक स्नातक स्तर तक शिक्षित हैं, जबकि ८ प्रतिशत श्रमिक स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षित हैं।

तालिका संख्या - ४

श्रमिकों का स्थायी निवास स्थान

स्थायी निवास स्थान	संख्या	प्रतिशत्
लालकुँआ	८	१६
अन्य स्थान	४२	८४
योग	५०	१००

तालिका संख्या ४ द्वारा स्पष्ट होता है कि १६ प्रतिशत श्रमिक लालकुँआ क्षेत्र के स्थायी निवासी हैं। जबकि ८४ प्रतिशत श्रमिक किसी अन्य स्थान से आये हैं।

तालिका संख्या - ५

श्रमिकों के आवास का स्वरुप

आवास का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत्
फैक्ट्री का	३०	२०
स्वयं का	१२	२४
किराये का	०८	१६
योग	५०	१००

तालिका संख्या ५ द्वारा स्पष्ट होता है कि ६० प्रतिशत श्रमिक फैक्ट्री के द्वारा उपलब्ध आवास में रहते है। २४ प्रतिशत श्रमिक स्वयं के आवास में रहते हैं तथा १६ प्रतिशत श्रमिक किराये के आवास में रहते है।

तालिका संख्या - ६

श्रमिकों को प्राप्त होने वाला वेतन

प्राप्त होने वाला वेतन	संख्या	प्रतिशत्
६०००-१००००	२०	४०
१००००-१४०००	१०	२०
१४०००-१८०००	१५	३०
१८०००-२२०००	०४	०८
२२००० से अधिक	०१	०२
योग	५०	१००

तालिका संख्या ६ द्वारा स्पष्ट होता है कि ४० प्रतिशत श्रमिकों को ६०००-१०००० रूपये वेतन प्रतिमाह मिलता है। २० प्रतिशत श्रमिकों को १००००-१४००० रूपये प्रतिमाह ३० प्रतिशत को १४०००-१८००० रूपये प्रतिमाह ८ प्रतिशत श्रमिकों को १८०००-२२००० रूपये प्रतिमाह तथा २ प्रतिशत श्रमिकों को २२००० से अधिक वेतन प्रतिमाह मिलता है।

तालिका संख्या - ७

श्रमिकों के कार्य के घण्टे

कार्य के घण्टे	संख्या	प्रतिशत्
८ घण्टे	३०	२०
८ घण्टे से अधिक	०५	१०
अनिश्चित समय	१५	३०
योग	५०	१००

तालिका संख्या ७ द्वारा स्पष्ट होता है कि ६० प्रतिशत श्रमिक ८ घंटे कार्य करते हैं। १० प्रतिशत श्रमिक ८ घंटे से अधिक कार्य करते हैं, जबकि ३० प्रतिशत श्रमिकों के कार्य के घंटे निश्चित नही है। वह कभी-कभी अतिरिक्त समय में भी कार्य करते हैं।

तालिका संख्या - ८

फैक्ट्री द्वारा प्राप्त सुविधाऐं

प्रदत्त सुविधाएँ	संख्या	प्रतिशत्
आवास	२६	२०
चिकित्सा	०८	१६
शिक्षा	०२	०४
बस सेवा	१४	२८
योग	५०	१००

तालिका संख्या ८ से स्पष्ट होता है कि ५२ प्रतिशत श्रमिक आवासीय सुविधा का लाभ उठाते हैं। १६ प्रतिशत श्रमिक चिकित्सीय सुविधा का लाभ उठाते हैं। ४ प्रतिशत श्रमिक शैक्षिक सुविधाओं का लाभ उठाते हैं, जबकि २८ प्रतिशत श्रमिक बस सेवा का लाभ उठाते हैं।

तालिका संख्या - ६

अतिरिक्त कार्य के लिए वेतन

वेतन मिलता है	संख्या	प्रतिशत्
हॉ	३८	७६
नहीं	१२	२४
योग	५०	१००

तालिका संख्या ६ द्वारा स्पष्ट होता है कि ७६ प्रतिशत् श्रमिकों को अतिरिक्त कार्य के लिए वेतन दिया जाता है, जबकि २४ प्रतिशत् श्रमिकों को अतिरिक्त कार्य के लिए कोई वेतन नहीं दिया जाता है।

निष्कर्ष - प्रस्तुत तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकतर श्रमिक दूसरे क्षेत्रों से आए हैं इस कारण वे एकांकी परिवारों में रहते हैं। अधिकतर श्रमिक २५ वर्ष से ४५ आयु वर्ग वाले हैं। श्रमिक प्रायः सप्ताह में ४८ घण्टे कार्य करते हैं। श्रमिक अपनी आय को बढ़ाने के लिये स्वेच्छा से अतिरिक्त समय कार्य करते हैं, जिसका उन्हें वेतन भी दिया जाता है। अतिरिक्त समय में कार्य करने से श्रमिक व पूँजीपति दोनों को लाभ प्राप्त होता है। फैक्ट्री द्वारा श्रमिकों को आवासीय, चिकित्सीय, शैक्षिक तथा बस सेवा उपलब्ध होने के साथ-साथ कैन्टीन सुविधा भी प्राप्त है, जिसमें कम दामों पर खाद्य सामग्रियाँ श्रमिकों के लिये उपलब्ध हैं। श्रमिक फैक्ट्री द्वारा उपलब्ध प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की अपेक्षा निजी अस्पताल को अधिक महत्व देते हैं। फैक्ट्री में कार्यरत् स्थायी श्रमिकों के एक पुत्र को योग्यतानुसार इसी फैक्ट्री में रोजगार की सुविधा भी उपलब्ध है। फैक्ट्री परिसर में श्रमिकों के बच्चों के लिए कक्षा ८ तक का एक विद्यालय भी है। औद्योगीकरण के साथ- साथ श्रमिकों का भी आर्थिक विकास हुआ है।

लालकुँआ सेन्चुरी पेपर मिल के द्वारा आर्थिक विकास को गति मिलने के साथ-साथ वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण में भी तीव्र वृद्धि हुई है, जिससे यहाँ के निवासियों में विभिन्न रोगों के होने की सम्भावना बढ़ी है।[४] अजय रावत की रिपोर्ट के अनुसार - लालकुँआ सेन्चुरी पेपर मिल के कारण मिल के आसपास के लोगों को श्वाँस सम्बन्धी बीमारियाँ हो रही हैं, जो कि वायु प्रदूषण के कारण हो रहा है लोगों की शिकायत के बावजूद भी कोई सरकारी संस्था इस ओर ध्यान नहीं दे रही है। आसपास के लोगों के अनुसार मिल के द्वारा प्रदूषण नियन्त्रक यंत्र स्थापित तो किये गये हैं, परन्तु उनका संचालन व्यय अत्यधिक होने के कारण उन्हें नियमित रूप से संचालित नहीं किया जाता है, उन्हें तभी संचालित किया जाता है जब कि प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के द्वारा निरीक्षण किया जाता है।[५]

कागज और लुगदी औद्योगिक प्रवाह के कारण मृदा में घुलनशील अपशिष्टों में वृद्धि के कारण मृदा की उर्वरक क्षमता में काफी कमी आयी है।[६] पीयूष मालविया एवं वी.एस. राठौर की रिपोर्ट के अनुसार- लालकुँआ सेन्चुरी पेपर मिल से औसतन ७००० गेलन निस्सारी प्रति टन पेपर उत्पादन की प्रक्रिया में होता है। इतनी अधिक मात्रा में यह निस्सारी गांवों, कृषि भूमि और वन क्षेत्रों से गुजरता हुआ अन्त में गौला नदी में मिल जाता है जो कि इस मिल से १५ कि.मी. दक्षिण में है।[७] स्टेट हेल्थ इन्सटीट्यूट और पन्तनगर विश्वविद्यालय की रिपोर्ट के अनुसार लालकुँआ सेन्चुरी पेपर मिल के कारण जल प्रदूषित हो गया है। परन्तु कन्ट्रोल बोर्ड ऑफ इंजीनियर्स ने कई बार मिल का निरीक्षण किया लेकिन कभी इस बात की पुष्टि नहीं की कि फैक्ट्री का जल प्रदूषित हो रहा है सिर्फ संभावित अनुमान लगाया गया है। वर्तमान में मिल को आई.एस.ओ. के द्वारा गुणवत्ता, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संबंधी प्रमाणपत्र प्राप्त है।

पूँजीवादी व्यवस्था के कारण अस्थाई श्रमिकों की संख्या अधिक है, जिसके कारण ठेकेदारी व्यवस्था का उत्थान हुआ है। रोजगार पाने के लिये पलायन के कारण इस क्षेत्र का विस्तार हुआ है, जिस कारण अनेक प्रकार की समस्याओं जैसे- बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए आवास सुविधाओं का अभाव, स्वच्छता की व्यवस्था का अभाव आदि समस्याओं का जन्म हुआ है। श्रमिकों के लिये लालकुँआ में केवल प्राथमिक स्वास्थ्य साधन एवं सुविधाएँ ही उपलब्ध हैं, उचित एवं उच्च स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त करने के लिए हल्द्वानी, बरेली व दिल्ली आदि नगरों में जाना पड़ता है।

सन्दर्भ

१. कपाड़िया, एस. सी., 'औद्योगिक संबंध तथा सामाजिक सुरक्षा', आर. बी. एस. पब्लिशर्स, १९९० पृ. २३४-२५४
२. भगोलीवाल, टी. एन. एवं भगोलीवाल, प्रेमलता, 'श्रम अर्थशास्त्र एवं औद्योगिक संबंध', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, २००१, पृ. ३६१
३. www.wikipedia.com
4. Singh P., "Decolorization and detoxification of pulp and paper mill effluent using microbes", Ph.D Thesis, G.B. Pant University of Agriculture and Technology, Pantnagar, India, 2004
5. Rawat, Ajay,1998, "Forests on fire-Ecology and Politics in the Himalayan Tarai", Cosmo Publications, New Delhi.
6. Kamalakar. J.A., "Physiochemical characteristics of the liquid effluents of paper and pulp mill, Lalkuan and their effect on germination and growth of maize and sunflower", Thesis MSc., G.B. Pant University of Agriculture and Technology, Pantnagar, 1988
7. Malaviya ,Piyush and Rathore, V. S. , Seasonal variations in different physico-chemical parameters of the effluents of Century Pulp and Paper Mill, Lal Kuan, Uttarakhand, Journal of Environmental Biology April, 2007.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

साहित्य और समाज में नारी की बदलती स्थिति

❑ डॉ. डी.एस. भण्डारी

भारतीय समाज के इतिहास में नारी की स्थिति व स्थान में परिवर्तन होता रहा है। कुछ विद्वान मानते हैं कि वैदिक काल में नारी को पुरूष के समान ही अधिकार प्राप्त थे व पुरूष प्रधान समाज में नारी को पुरूषों के समान ही सम्मान प्राप्त था। शिक्षा, विवाह, संपत्ति के सम्बन्ध में उन्हें समान अधिकार प्राप्त थे तो कुछ क्षेत्रों में उन्हें विशिष्ठ स्थान भी प्राप्त था। मध्य युग में स्त्रियों की इस सम्मान जनक स्थिति को आघात लगा, व नारी सम्मान के लिए संघर्षरत दिखाई देने लगी। पुनः आधुनिक काल में नारी की स्थिति में अन्तर आया और समकालीन भारतीय नारी तो पुरूष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है। प्रस्तुत आलेख के अंतनिर्हित भारतीय समाज और साहित्य में नारी की परिवर्ती स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय समाज के इतिहास में नारी की स्थिति व स्थान में परिवर्तन होता रहा है। कुछ विद्वान मानते हैं कि वैदिक काल में नारी को पुरूष के समान ही अधिकार प्राप्त थे व पुरूष प्रधान समाज में नारी को पुरूषों के समान ही सम्मान प्राप्त था। शिक्षा, विवाह, संपत्ति के सम्बन्ध में उन्हें समान अधिकार प्राप्त थे तो कुछ क्षेत्रों में उन्हें विशिष्ठ स्थान भी प्राप्त था। मध्य युग में स्त्रियों की इस सम्मान जनक स्थिति को आघात लगा, व नारी सम्मान के लिए संघर्षरत दिखाई देने लगी। पुनः आधुनिक काल में नारी की स्थिति में अन्तर आया और समकालीन भारतीय नारी तो पुरूष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है। राजनीति समाज, विज्ञान नौकरियां, फिल्मों, सेना, कृषि,मजदूरी हो या राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, कलेक्टर, न्यायाधीश जैसे सर्वोच्च संवैधानिक पदों पर भी महिलाएं सुशोभित हो रही हैं। स्त्रियों की स्थिति दलित व आदिवासी समाज के अतिरिक्त ग्रामीण समाज में सम्मानजनक नहीं कही जा सकती है,यद्यपि इन क्षेत्रों में भी स्त्री की सामाजिक स्थिति में लगातार सुधार हो रहा है। दिनों दिन वढ़ते आधुनिकता के दबावों ने औरत को उसके अधिकारों के विषय में तो जाग्रत कराया किन्तु एक नये प्रकार का स्त्री शोषण भी अस्तित्व में आ गया है। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण की कीमत भी हमें चुकानी पड़ रही है, इसका परिणाम यह हुआ कि औरत आज भारतीय समाज में शरीर के रूप में परोसा जा रहा है। आज भी औरत को अबला के दृष्टिकोण से देखा जाता है। औरत के नाम से जो निरीह काया जेहन में आती है उसे बदलने की आवश्यकता है। आज जीने का ढंग बदल गया हो लेकिन परंपराएं नहीं बदली हैं, आधुनिकता ने भले ही उन्हें नया आवरण पहना दिया हो मगर उनके अदंर की वास्तविकता भी किसी से छिपी नहीं है।

मणिमाला के इस कथन का उल्लेख कई आलोचक करते हैं उन्होंने लिखा है कि परंपरा में हमने सीता को आदर्श माना,आज भी हम हर औरत से सीता होने की अपेक्षा करते हैं, सीता एक परंपरा बनकर जिंदा है। सीता को हमने एक औरत के रूप में जिन्दा नहीं रखा, क्योंकि ऐसा करना पुरूष प्रधान समाज के लिए संभव भी नहीं था। सीता का संपूर्ण व्यक्तित्व केवल यौन शुचिता तक नहीं सिमटा था वह हमने समेटा है।[1]

सबसे बड़ी समस्या यह है कि स्त्री अपनी भूमिका स्वयं तय नहीं करती है वरन् उसकी भूमिका को हमेशा या तो समाज तय करता है या ताकतवर पुरूष तय करता है। बस इसी स्थिति के कारण वह समाज में पुरूष की बराबरी नहीं कर सकती है। स्त्री को पूर्वकाल में कम स्वतंत्रता प्राप्त थी परन्तु वह अधिक सुरक्षित थी आज स्थिति यह है कि स्त्री की स्वतंत्रता में वृद्वि हुई है लेकिन वह पूर्व से अधिक असुरक्षित हो गई है। अब नारी अपनी स्वतंत्रता की कीमत अपनी सुरक्षा से चुका रही है,दोनों दशाओं में नारी की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है। भारतीय समाज ने स्त्री को ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' कहकर देवी के पद पर आसीन किया परन्तु उसके साथ दासी जैसा व्यवहार करते रहे, और उसे सम्पूर्ण जीवन पुरूषों की सेवा के लिए बाध्य कर दिया। सरला दुआ कहती हैं कि एक ओर समाज उसके पाद पदमों में अपनी मुकटमणियों को बिछा देता है, वह सर्वाधिक पूज्य मानी जाती है, वह देवी की महिमा से मंडित होती है। दूसरी ओर उसके जन्म लेते ही उसके माता पिता चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं, पुत्र के समान उसे प्यार नहीं मिलता है, तथा जीवन

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी, बालगंगा महाविद्यालय सेन्दुल केमर, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

को सुखी व समृद्ध बनाने वाले अन्य साधनों से वह वंचित हो जाती है। नारी जीवन में चांचल्य, सकुमार, सौन्दर्य तथा अन्य उदात्त गुणों की भूमिका का निर्माण उसके कन्या रूप में ही होता है।[२]

वर्षो तक स्त्री की समस्याओं पर किसी का भी कोई ध्यान नहीं गया,पुरूष से भिन्न उसकी समस्याओं का आकलन नहीं किया जाता था।पराधीनता उसके जीवन की कहानी थी और एक समय ऐसा आया कि इस पराधीनता ने उसका मानस भी पराधीन कर दिया।

स्त्री को पुरूष का गुलाम बनाने में धर्म ने भी योगदान दिया है। बौद्ध व जैन धर्म में यह प्रचारित किया गया कि स्त्री को मोक्ष नहीं मिलता है,साधना के द्वारा उसे पुरूष योनि प्राप्त होती है और यदि वह साधना करती रहे तभी उसे मुक्ति मिलती है। इस प्रकार से एक धार्मिक समाज में उसे दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाने लगा। स्त्री पुरूष का ऐसा उपनिवेश रहा है जिसे अपने वश में करने के लिए पुरूष को अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ी है। गृहस्थी को मन्दिर मानने के लिए विवश किया जाने लगा और उसके लिए एक प्रकार से एक अस्थाई जेल की व्यवस्था कर दी गई।[३]

हिन्दी साहित्य के रीति काल में स्त्री को दरबारों की शोभा माना जाता था, नारी के रूप सौन्दर्य को लक्ष्य करके ही कविगण रचनायें करते थे, कुछ विद्वान मानते हैं कि सामंती युग में स्त्री की दासता और पराधीनता अपने चरम पर थी। स्त्री को पुरूष की सम्पत्ति माना जाता था यह सोच कभी समाप्त नहीं हो पाई है। स्त्री पुरूष की संपत्ति है, उसकी इज्जत है,इसलिए उस पर हाथ डालना शत्रु पुरूष को या विपक्षी पुरूष वर्ग को नीचा दिखाना है, यह सोच किसी भी जनतंत्रीय समानाधिकार और नारी जागरण की भावना से मेल नहीं खाती है।[४]

पूंजीवादी समाज में भी स्त्री की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता है,धनिकों की स्त्री पैसों से खेलती हुई दिखाई देती हैं और दूसरे वर्गों की पैसों के लिए खेलती हुई। पैसे को पाने के लिए पैसे के हाथ बिकने को वह मजबूर दिखाई देने लगती है,कुल मिलाकर भोग और विलास की वस्तु से वह अलग अपनी छवि नहीं बना पाई थी। प्रेम की भावना वात्सल्युक्त मातृत्व,त्याग और आदर्श का निर्माण, नवीन दिशाओं का निर्माण नवीन दिशाओं का दर्शन ,पारिवारिक सुख सन्तोष से दूर हटाकर नारी को पूंजीवाद के हाथों में खिलौना बना दिया गया।[५]

पूंजीवाद का विरोध करने पर मार्क्सवादी समाज की स्थापना पर भी स्त्री की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। यद्यपि मार्क्सवादी विचारक यह चिंता अवश्य करते थे कि स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, उसे भोग और विलास की वस्तु माना गया है। स्त्री समाज में केवल किसी की बहिन बेटी, मां, पत्नी के रूप में ही अपनी पहचान रखती है।

समाज में अधिकांश ऐसे विचारक हैं जो यह मानते हैं कि घर, परिवार, समाज की मर्यादा की डोर स्त्री से बंधी हुई हैं, जो उसकी निर्धारित मान्यताओं के बाहर कदम रखते ही टूट सकती हैं,लेकिन कुछ विचारक मानते हैं कि यह विचारधारा जिसने सदियों से अपनी व्यस्वथा की जंजीरों में स्त्री को बांध कर रखा, और स्त्री को निर्जीव बना दिया है। साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है और स्त्री की दशा का चित्रण भी हिन्दी साहित्य मे इसी उक्ति को चरितार्थ करता है। हिन्दी साहित्य के आदि काल से आधुनिक काल तक नारी को केन्द्र में बनाये रखने के लिए साहित्यकार प्रयासरत दिखाई देते हैं। प्रत्येक देश के साहित्य में स्त्री के विविध चारित्रिक पहलू दिखाई देते हैं। दो समाजों या दो देशों में स्त्री के प्रति एक समान दृष्टिकोण नहीं दिखाई देता है। दो साहित्यकारों की दृष्टि भी इसी प्रकार अलग अलग दिखाई देती है। समाज में कुछ धूर्त लोग साहित्यकारों के वाक्यों का उपयोग नीति वचनों की तरह या वेद वाक्यों की तरह करते हैं, व समाज से दीर्घकाल तक उनका पालन करने की अपेक्षा करते हैं। वैदिक साहित्य में कहीं भी कन्या का पुत्र की भांति संस्कार करते हुये नहीं दिखाई गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि वैदिक काल में भी कन्या होने पर किसी प्रकार से कोई संस्कार सम्पन्न नहीं किया जाता था। स्त्री के प्रति भेद भाव का आरम्भ यहीं से होता है। इस समय तक स्त्री से आशा की जाती थी कि वह अधिक से अधिक पुत्रों को जन्म दे। पितृ सत्तात्मक समाज में शूद्रों के समान ही स्त्रियों को भी वेदाध्ययन से वंचित किया गया था। वैदिक काल के उपरान्त शैव साहित्य में प्रथम बार अवश्य स्त्री को एक शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया। समस्त शिव पार्वती संवाद के रूप में जो साहित्य है उस साहित्य में अवश्य नारी की महत्ता स्वीकार की गई है। इसके बाद सूर साहित्य में नारी का स्वतंत्र रूप दिखाई देता है। कबीर काव्य में स्त्री की स्थिति विचित्र है। कबीर स्त्री को माया का स्वरूप मानते हैं। स्त्री को भगवान की प्राप्ति में बाधक माना गया है क्योंकि वह माया का प्रतिनिधित्व करती है इसी कारण कबीर उसे त्याज्य मानते हैं। उनका मानना है कि स्त्री ही पुरूष को माया पाश में बांधती है।

कबीर काव्य में स्त्री का दूसरा रूप भी दिखाई देता है जिस

स्त्री को कबीर त्याज्य मानते हैं उसी स्त्री का भेष धारण कर वह भगवान से मिलन की प्रार्थना करते हैं। एक ओर कबीर स्त्री को साधना के मार्ग पर सबसे बड़ा बाधक मानते हैं और दूसरी ओर वह स्वयं को भगवान की प्रियतमा मानते हैं। अब यह विचारणीय विषय है कि जिस स्त्री को वह माया मानते हों और जिस माया का महा ठगिनी कहते हों आखिर ईश्वर की प्राप्ति के लिए उन्हें वही रूप क्यों धारण करना पड़ा। अलौकिक प्रिय के प्रति अपना प्रेम प्रकट करने के लिए कबीर स्त्री के रूपक का ही चुनाव करते हैं। श्याम सुन्दर दास सम्पादित विरह को अंग में जो साखियां संकलित हैं उन सभी साखियों में कबीर ने आत्मा से परमात्मा के अलग होने की पीड़ा को विरहिणी स्त्री की पीड़ा के मार्मिक स्वरूप में व्यक्त किया है।[६]

अध्यात्म जगत की इस पीड़ा को अभिव्यक्त करते समय संत कवि कबीर का स्त्री रूप ध्यान आकृष्ट करने वाला है, बहुत दिनों तक प्रियतम की याद में बाट जोहती स्त्री, प्रिय तक न पहुंच पाने में विवश विरहिणी,पथिक से प्रिय का हाल पूछती स्त्री, प्रिय के वियोग में आठों पहर दुख भोगती स्त्री आदि विरहिणी स्त्री के अनेक रूपों का चित्रण संत कबीर दास द्वारा किया गया है।

आधुनिक युग में स्त्रियों को समानता दिये जाने का मूल स्वर जो चारों ओर सुनाई दे रहा है उसका मूल मन्तव्य पुरूष से समानता व नारी की आर्थिक आत्मनिर्भरता से लिया जाता है। नारी परतंत्रता की जो कहानियां दिखाई देती हैं उनमें यह तथ्य दिखाई देता है कि यदि आर्थिक रूप से नारी स्वतंत्र हो जाय तो पुरूष प्रधान समाज का अंकुश उसके उपर कुछ कम हो जायेगा। आर्थिक स्वालम्बन के अभाव मे नारी अपने ही परिवार में शोषित होती रही है, और समय के साथ तो आर्थिकता सम्पूर्ण समाज व्यस्थाओं का केन्द्र विन्दु बनती जा रही है। समाज में नारी के लिए अलग अलग नियम निर्धारित किये हुये हैं। ''विभिन्न मानसिकता के दो मुंहे समाज में आज की नारी वस्तु मात्र सम्पत्ति व विनिमय की मूर्ति के रूप में जानी जाती है।''[७]

वर्तमान समाज में नारी को मात्र भोग विलास की वस्तु समझने की जो मानसिकता है इस मानसिकता का विरोध भी अधिकांश विचारकों द्वारा किया गया है। यह तथ्य कहने में सुखद अनुभूति होती है कि स्त्री समाज के अतिरिक्त भी नारी दासता की पीड़ा को कई विचारकों ने अपने विचारों का केन्द्र विन्दु बनाया है।

नारी मुक्ति या नारी स्वतंत्रता के विचार में प्रर्याप्त विभिन्नतायें देखी जा सकती हैं। ''पुरूष विरोध करते हुये पुरूष की तरह निरंकुश और स्वछन्द हो जाना नारी मुक्ति नहीं है।''[८]

नारी को परिवार में अनेक भूमिकाओं का निर्वहन करना पड़ता है। आज बेटी और बहू में भी भेद भाव किया जाता है। लेकिन विडम्बना देखिये कि बहू के रूप में एक घर में जहां वह भेद भाव की शिकार होती है वहीं दूसरे घर में वह बेटी बन जाती है और इसी प्रकार का भेद भाव वह दूसरे से करती है। मनुष्य के दिमाग में संर्कीणताओं ने अपना घर बना लिया है, लेकिन आज नारी अपनी स्थिति में सुधार के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देती है। उसका आत्मविश्वास बढ़ गया है,अपनी स्थितियों में सुधार के लिए वह एकजुट दिखाई देती है। चित्रा मुद्‌गल के अनुसार ''औरत बोनसाई का पौधा नहीं है जब जी में आया उसकी जडों को काट कर उसे दूसरे गमलों में रोप दिया। वह स्वयं को बौना बनाये रखने के लिए विरोध भी कर सकती है।''[६]

आज साहित्य में बहुत कम स्थानों पर कल्पना के लिए जगह है, अनुभूत सत्य को ही साहित्य में स्थान दिया जाता है। यही कारण है साहित्य में नारी की स्थिति का वास्तविक चित्रण मिलता है। नारी की स्थिति में सुधार हो,या कहीं उसकी स्थिति पुरूषों की तुलना में अधिक सुदृढ हो ऐसा पुरूष प्रधान समाज स्वीकार ही नहीं कर सकता है। यह स्थिति कार्यालयों में भी देखी जा सकती है,कार्यालय प्रमुख यदि स्त्री है तो उसके आदेशों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है।

कीर्तिकया कहानी में कश्मीरी लाल कहते हैं कि नारी को बेचारी शब्द से आपत्ति है, हर जगह पर औरतों का बुरा हाल है। समाज में कोई दूध का धुला नहीं है।स्त्री को आज भी शूद्र बनाया गया है, वह वस्तु है, वह साधन है, वह गुलाम है और यही कारण है कि वह नारी स्वतंत्रता के अधिकार को समझती है। उसे नारी के लिए बेचारी शब्द के सम्बोधन से आपत्ति है। जयशंकर प्रसाद जी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक ध्रुवस्वामिनी में नाटक की नायिका ध्रुवस्वामिनी अपने पति के विभिन्न प्रकार के अत्याचार से पीड़ित है वह उसको चुनौती देती हुई कहती है कि"यदि तुम मेरी, अपनी कुल मर्यादा की रक्षा नहीं कर पाते हो तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। मैं उपहार में दी जाने वाली शीतलमणि नहीं हूं,मुझमें रक्त की तरल लालिमा है मैं अपनी रक्षा स्वयं करूंगी।[१०]

स्त्री जाति के संघर्ष के लम्बे इतिहास में अनेकों बार उतार चढ़ाव दिखाई देते हैं कभी वह अपनी अस्मिता के लिए लड़ती है और कभी वह अस्तित्व के लिए लड़ती हुई दिखाई देती है, इस संघर्ष में उसने कई बार पुरूष अहंकार के आगे घुटने टेके

हैं लेकिन एक सत्य यह भी है कि वह हर बार अधिक मजबूती के साथ संघर्ष में वापस लौटी है। आज वह अपने ऊपर हुये अन्यायों के खिलाफ आवाज उठा रही है, पुरूष प्रधान समाज का दृष्टिकोण भी उसके प्रति पहले की तुलना में कठोर नहीं दिखाई देता है फिर भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसके मन में एक अज्ञात भय बना हो, और वह उस भय से छुटकारा प्राप्त करना चाहती हो। वैदिक काल से लेकर आज तक स्त्री की स्थिति में हमेंशा ही परिवर्तन होते रहे हैं। समाज में उसका स्थान हमेंशा बदलता रहा। परिस्थितियों के अनुसार नारी की स्थिति में भी परिवर्तन होते गये और वह इन परिवर्तनों को सहजता के साथ स्वीकार करती गई। पुरूष प्रधान समाज में वह हमेशा स्वयं को उपेक्षित एवं हाशिये पर खड़ा पाती, लेकिन नारी के अर्न्तमन में अपने अधिकारों के लिए जो ललक थी वह धीरे धीरे सशक्त होती गई और कुछ लोग तो उसे महाशक्ति पुकारने लगे। भारतीय समाज में युगों से चले आ रहे अंध विश्वासों के प्रति जन जागरूकता के कारण नये युग का सूत्रपात हुआ। भारतीय समाज में अंधविश्वासों का कुप्रभाव भी सबसे अधिक स्त्रियों पर हुआ अतः जब अंध विश्वास समाप्त हुये तो इसका सर्वाधिक लाभ भी स्त्रियों को ही हुआ।

बीसवीं शताब्दी में शिक्षा के प्रसार से नारी अपने अधिकारों के प्रति और अधिक सचेत हो गई। अनेक महिला संगठनों का गठन हुआ और नारी मुक्ति आन्दोलन की हवा गली कूचों में दिखाई देने लगी। सन १८५७ ई. के बाद देश के जाने माने राजनीतिक विचारक, चिन्तक स्त्रियों की समस्या के सम्बन्ध में चिन्तित दिखाई देने लगे। यद्यपि यह आन्दोलन अधिक सफल नहीं हुये इसका कारण यह था कि आन्दोलन के प्रथम दौर में महिलाओं के लिए जो आन्दोलन किया जा रहा था उस आन्दोलन में महिलाओं की सहभागिता बहुत कम थी। लेकिन बाद के दशकों में स्थिति में परिवर्तन आया और महिलाओं की मुक्ति के नाम पर जो आन्दोलन चलाये जा रहे थे उनका नेतृत्व भी महिलाओं द्वारा किया जाने लगा। स्त्री अपनी अस्मिता व अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करते हुये दिखाई देती है,उसके इस संघर्ष में पुरूष सहभागी नहीं बना ऐसा कहा जा सकता है क्योंकि नारी जाति की समस्त समस्याओं की जड़ में पुरूष ही दिखाई देता है। बहुत लम्बें समय बाद आज नारी ने यह सिद्व कर दिया है कि वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में पुरूष से कम नहीं है।

सन्दर्भ

१. राजकिशोर, 'मणिमाला-स्त्री, परंपरा और आधुनिकता', तक्षशिला प्रकाशन, देहली, १६५०, पृ. २४
२. दुआ सरला, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी', तक्षशिला प्रकाशन, देहली, १६६०, पृ. २०१
३. किशोर राज, 'स्त्री पुरूष : कुछ पुर्नविचार', तक्षशिला प्रकाशन, देहली, १६५५, पृ. १३, १४
४. त्रिपाठी चंद्रवली, 'भारतीय समाज में नारी आर्दर्शों का विकास', तक्षशिला प्रकाशन, देहली, १६५६, पृ. ३१
५. दुआ सरला, 'आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएं', तक्षशिला प्रकाशन, देहली, १६५५, पृ. २६
६. दास श्याम सुन्दर, 'कबीर ग्रन्थावली', पृ. ७४
७. पुष्पा मैत्रीयी, 'बेतवा बहती रही', पृ. ३५
८. मुद्गल चित्रा, 'एक जमीन अपनी', पृ. २५
६. वही, पृ. ३२
१० प्रसाद जयशंकर, 'ध्रुवस्वामिनी', पृ. ३८

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

मुस्लिम महिलाओं की समाजार्थिक स्थितिः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ तबस्सुम जहाँ

इस्लाम में हर जगह हर प्रकार से महिला–पुरूष समानता को दर्शाया गया है। भारत में मुगल काल से पहले मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति बहुत खराब हो गई थी और मुगलकाल के प्रारंभ होने पर स्त्रियों की स्थिति बहुत खराब हो गई थी और मुगलकाल के प्रारंभ होने पर स्त्रियों की स्थिति बदतर होती चली गई। स्वतंत्रता से पूर्व तक महिलाएं अनेक पारिवारिक समाजार्थिक एवं राजनीतिक निर्योग्यताओं की शिकार रहीं। स्वतंत्रोपरांत संवैधानिक प्रावधानों, सरकारी, गैरसरकारी तथा समाज सुधारकों के प्रयास से स्त्रियों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हो रहा है। परिवर्ती सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में शिक्षा और रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि हुई है। अतः सांप्रत भारत में मुस्लिम महिलाओं की समाजार्थिक स्थिति का आंकलन करना महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास कहा जा सकता है।

हमारे देश में विभिन्न धर्म और जातियों के लोग रहते हैं जिनकी भाषाएँ और संस्कृतियाँ भी अलग–अलग हैं। सभी धर्मावलम्बी यहाँ अपने तौर तरीके से रीति रिवाज और परम्पराओं का पालन करते पाये जाते हैं। इस्लाम धर्म के अनुयायियों को मुस्लिम कहा जाता है। इस्लाम का मूल आरम्भ अरब में हुआ। प्राचीन अरबी धर्म ही परिवर्तित होकर इस्लाम धर्म बन गया। यही कारण है कि इस्लाम धर्म और मुसलमानों के सामाजिक जीवन पर प्राचीन अरबी धर्म और सामाजिक जीवन का प्रभाव देखने को मिलता है। मुस्लिम सामाजिक जीवन एवं संगठन की प्रमाणिक जानकारी हमें कुरान से मिलती है। कुरान मुस्लिम रीति–रिवाज का मुख्य स्त्रोत तथा मुस्लिम जीवन पद्धति के लिए सर्वोपरि प्रमाण है। इस्लाम में गति का सिद्धान्त विद्यमान है इसलिए मुस्लिम सामाजिक संगठन और जीवन पद्धति देश और काल के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

सामान्यतः मुस्लिम महिला को एक चादर में लिपटी हुई घर की चार दीवारी में कैद महिला के रूप में सोचा जाता है, जो कि पूर्णतः भ्रांतिपूर्ण और भ्रामक अवधारणा है। यद्यापि इस्लाम धर्म में मुस्लिम महिला के लिए परदे का प्रावधान है लेकिन साथ ही साथ उनकी शिक्षा एवं अपने अधिकारों को प्रयोग करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। महिला और पुरूष, दोनों से ही समाज का निर्माण हुआ। संसार में सर्वप्रथम खुदा ने हजरत आदम साहब को पैदा किया तथा उनके ही शरीर से माँ हव्वा को पैदा किया। तभी से दुनिया की शुरूआत हुई। इस्लाम धर्म के अनुसार हम सभी उन्ही की सन्तान हैं। मुस्लिम समाज में महिला की दयनीय स्थिति का आरम्भ बहुत समय पूर्व हुआ था। इस्लाम से पहले औरतो के कोई हुकूक (अधिकार) नहीं थे। उनकी जान की कोई कीमत नहीं थी। पत्नियों की कोई गिनती नहीं थी। इसलिए जो व्यक्ति जिस औरत को चाहता उसे अपने निकाह में ले लेता और उकसे साथ वही व्यवहार करता जो जानवरों के साथ किया जाता है।[1]

अरब समाज में इस्लाम से पूर्व महिलाओं की स्थिति बहुत खराब थी। स्त्रियाँ दिन रात मजदूरी करती थीं और जो कुछ भी वह कमाती थीं वह भी पुरूषों को दे दिया करती थीं। तब भी पुरूष स्त्रियों की कोई इज्जत नहीं करते थे, बल्कि उन्हें जानवरों की तरह मारते पीटते थे। अरब के लोग लड़कियों के पैदा होते ही उन्हे जिन्दा दफन कर देते थे। स्त्रियों को उनके माँ, बाप, भाई तथा पति की विरासत से कोई हिस्सा नहीं मिलता था। स्त्रियों का किसी वस्तु पर कोई हक नहीं होता था। अरब के कुछ कबीलों में यह दस्तूर था किसी स्त्री के विधवा हो जाने पर उसे घर से बाहर निकाल कर एक छोटे से कमरे में एक साल तक कैद रखा जाता था। बहुत सी स्त्रियां तो घुट–घुट कर मर जाती थी। इन मजबूर स्त्रियों की लाचारीं की यह स्थिति थी कि समाज में इन स्त्रियों के कोई हक नहीं थे। अधिकतर देशों में मुस्लिम महिलाओं की यही स्थिति थी। जब पैगम्बर मुहम्मद साहब खुदा की तरफ से दीन इस्लाम लेकर आए तो दुनिया की सताई हुई स्त्रियों का सितारा चमक उठा और इन स्त्रियों का दर्जा बहुत ऊँचा हो गया। हर जगह स्त्रियाँ पुरूषों के बराबर खड़ी हो गईं और उनकी बराबरी के दर्जे पर पहुँच गयीं। इस्लाम में बताया गया कि पुरूष और स्त्री एक–समान है, एक दूसरे के पूरक है। उनमें किसी एक को किसी दूसरे पर बरतरी हासिल नहीं है। कुरान में फरमाया गया

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, राधे हरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, काशीपुर (उत्तराखण्ड)

है कि ऐ! लोगो हमनें तुम्हें एक औरत और एक मर्द से पैदा किया है, तुम्हे कौयों, कबीलों, और खानदानों में करार दिया। तुम एक – दूसरे को पहचानों बेशक अल्लाह के नजदीक तुम में से ही बुजुर्ग बरतर है, जो सबसे ज्यादा परहेजगार है।[२]

कुरआन में अल्लाह फरमाता है कि "तुम बनीनो इंसान में से बाज – बाज से ही हो और तरजे जुद में एक – दूसरे में कोई फर्क नहीं"[३]

इस प्रकार मुस्लिम धर्म में हर जगह हर प्रकार से पुरूष और महिला की समानता को दर्शाया गया है। इस्लाम दुनिया में वह पहला धर्म है, जिसने औरत को सब से ज्यादा अधिकार दिए हैं। इन अधिकारों के द्वारा औरत को तरक्की, खुशहाली इज्जत, सभी स्थान हासिल होते हैं। सब से पहले कुरआन ने यह साफ कर दिया है कि स्थान और अधिकार में पुरूष और स्त्री दोनों बरावर हैं। अपने जन्म के हिसाब से पुरूष अधिक बलवान और औरत कमजोर नहीं है बल्कि दोनों को बराबर स्थान मिला हुआ है और इन्सानियत की बुनियाद पर हासिल होने वाले अधिकार में भी दोनों में कोई फर्क नहीं है। फिर जब दोनो जीवन के एक जीने में खड़े होते है, तो अपने चरित्र, खूबियों के द्वारा दोनों में जो चाहे जितने भी ऊँचे जीने चढ़ सकता है, और इसमें लिंग भिन्नता के नाम की कोई रूकावट कहीं पर नहीं आती है। लिहाजा इस्लामी तारीख में राबिआ बशरिया ने जो स्थान प्राप्त किया वहां तक बड़े-बड़े शुफियां नहीं पहुँच सकें। लिहाजा इन्सानियत और आत्मीय विकास में वह किसी से पीछे नहीं रह सकती है।

इस्लाम धर्म में रसूल मुहम्मद साहब के समय में महिलाएं अपना कारोबार करती थीं। इस्लाम में पुरूषों की तरह औरतों को भी यह निर्देश दिए गए है कि वह अपने पैरों पर खुद खड़ी हों और इस काबिल बने कि वह न सिर्फ अपनी जिन्दगी अच्छी गुजार सकें, बल्कि अपने खानदान और दूसरों के लिए भी मददगार बन सकें।

ग्यारहवी शताब्दीः से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव बढ़ने लगा था। मुगलकाल से पहले ही मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। लेकिन इसी काल में पहली मुस्लिम महिला शासक राजिया सुल्ताना ने यह सिद्ध कर दिखाया कि महिलाएं किसी से कम नहीं हैं। राजिया सुल्ताना हिन्दुस्तान के इतिहास में पहली मुस्लिम महिला है जिस ने बहादुरी और दिलेरी से अपने कारनामे अन्जाम दिए हैं जिस की मिसाल मुश्किल से ही दिखाई देती है। राजिया सुल्तान को अपनी हुकुमत बचाने के लिए अपने विरोधियों से कई लड़ाईयां लड़नी पड़ीं। मुगलकाल के प्रारम्भ होने पर स्त्रियों की स्थिति बहुत बदतर होती चली गई । इस समय स्त्रियों की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। अब ५ या ६ वर्ष तक की अबोध कन्याओं का भी विवाह किया जाने लगा। रक्त की शुद्धता को बनाये रखने के लिए और स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के उद्देश्य से बाल-विवाहों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया गया। इस काल में पर्दा-प्रथा प्रचलित हुई। स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र केवल घर की चारदीवारी तक सीमित हो गया। पुरूष स्वयं एक पत्नी के होते हुए भी दूसरी और तीसरी स्त्री से विवाह करने लगे। इस काल में स्त्रियाँ पूर्वतः परतन्त्र हो चुकी थीं। वे आर्थिक दृष्टि से कोई भी कार्य नहीं कर सकती थीं। जन्म से लेकर मृत्यु तक उन्हें पुरूष के नियन्त्रण में रखा गया। इस काल में लड़कियों उनको पिता की सम्पत्ति में उत्तराधिकार मिलने लगा जिनके कोई भाई नहीं था। इस काल में धर्म के नाम पर स्त्रियों का सर्वाधिक शोषण हुआ। उन्हें चेतना शून्य पुरूष की कृपा पर आधारित और निर्बल बना दिया गया। इस काल में स्त्रियों की सामान्य स्थिति में काफी गिरावट आयी। यद्यपि यह सही है कि मध्यकाल में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति बहुत निम्न हो गयीं थी लेकिन मुगल काल की शाही परिवार की स्त्रियों की स्थिति काफी उच्च्व थी। उन्हें सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। महल में नियुक्त शिक्षिकाएं ही प्रारम्भिक शिक्षा दिया करती थीं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि केवल शाही परिवार की महिलाओं की स्थिति ही उच्च्व थी जबकि अन्य महिलाओं की स्थिति काफी दयनीय दशा में थी। इसका कारण उस समय के लोगों का धर्म से दूरी का होना था क्योंकि इस्लाम धर्म में हमेशा से ही महिलाओं के सभी अधिकारों की बात कहीं गयी है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व महिलाएं अनेक सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक व राजनीनिक निर्योग्यताओं का शिकार रहीं। अंग्रेजी शासनकाल में नारी की प्रस्थिति में सुधार होना प्रारम्भ हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नारियों की प्रस्थिति में और भी अधिक सुधार हुआ है। सरकारी, गैर-सरकारी संगठन (महिला संगठनों सहित) तथा समाज सुधारकों के प्रयासों के परिणामस्वरूप आज भारतीय नारी की प्रस्थिति मध्यकाल की नारी से कहीं ऊँची है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात संविधान का निर्माण किया गया तब उसमें अल्पसंख्यकों के हितों से सम्बन्धित आवश्यक प्रावधान किया गया है। स्वतंत्र भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति १९८६ में १७ कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया था जिसमें से एक कार्यक्रम "अल्पसंख्यकों की शिक्षा की व्यवस्था भी थी। इस प्रकार धीरे-धीरे सरकार के प्रयासो और मुस्लिम धर्म गुरूओं के प्रयासो के द्वारा स्त्री

की स्थिति को ऊपर उठाने में मद्द मिली। आधुनिक समय में मुस्लिम स्त्रियां भी हर क्षेत्र में आगे आयी हैं तथा वे भी पुरूषों के बराबर खड़े होकर कार्य कर रही है। "कुरआन" में स्पष्ट निर्देश हैं कि महिला आवश्यकतानुसार घर से बाहर निकल सकती है, लेकिन उसको धार्मिक प्रतिबन्धों के अनुसार कार्य करना होगा। इससे स्पष्ट होता है कि इस्लाम महिला के अधिकारो को छीनने और उन पर पाबन्दियाँ लगाने के हित में नहीं हैं। बल्कि इस्लाम स्वयं स्त्री एवं पुरूष की समानता की बात कहता है। इस्लाम में कहा गया है कि जिस प्रकार पुरूषों को शिक्षा प्राप्ति के अधिकार हैं, ठीक उसी प्रकार महिलाओं को भी अधिकार प्राप्त है। इस्लाम में महिलाओं को भी वे सभी अधिकार प्राप्त है, जो पुरूषों को दिए गए हैं, लेकिन मुस्लिम महिलाएँ शिक्षा के माध्यम से उन अधिकारों को पाने के लिए जद्दोजहद कर रही हैं।

स्वतन्त्रता के बाद की बदली हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि हुई है। इन नई परिस्थितियों के फलस्वरूप ही उनके बीच समानता व स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति और उसकी प्रतिष्ठा के नये-नये रास्ते खुल गये हैं। यही कारण है कि व्यवसायिक क्षेत्रों में मुस्लिम महिलाओं की संख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है।

मुस्लिम जगत में लिंग भेद का अध्ययन करने वाली एक इतिहासकार का कहना है कि मुस्लिम महिलाएं घर में लगी बंदिशों को तो तोड़ ही रही है, सार्वजनिक अवसरों पर भी समान अधिकारों की माँग कर रही हैं। उनका मानना है कि इस्लामी दुनिया में लोगों की मानसिकता तेजी से बदल रही है। महिलाओं के प्रति पुरूषों के नजरियें भी परिवर्तन आ रहा है। इसका कारण यह है कि पुरूष तथा महिलाएं दोनों ही अपने गलत या सही कार्यों के लिए स्वयं को ही जिम्मेदार मानने लगे है।[४]

अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान समय में मुस्लिम महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का पता लगाना है। इसके अन्तर्गत उनके जातिगत नियमों के पालन की स्वीकृति, विवाह की अनिवार्यता के प्रति उनकी मनोवृत्ति, विवाह से पहले लड़की-लड़के- के मिलने व बातचीत करने के सम्बन्ध में मनोवृत्ति, पुत्र-जन्म की अनिवार्यता, लड़की व लड़कों को बरावर स्वतन्त्रता, लड़कियों के घर के बाहर के क्रिया-कलाप में भाग लेने, लड़कियों को शिक्षा प्राप्ति के लिए बाहर भेजने, नौकरी करने, तथा पर्दा करने आदि बिन्दुओं के माध्यम से मुस्लिम महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति ज्ञात करना है।

अध्ययन पद्धति- अध्ययन का समग्र जसपुर नगर है, जिसमें कुल १३ वार्ड है। मुस्लिम महिलाओं के अध्ययन के लिए १३ वार्डो में से मुस्लिम बाहुल्य-वार्ड ६ एवं १० को अध्ययन के लिए चुना। वार्ड नं० ६ में ११३७ महिलाएं है तथा वार्ड नं० १० में १२२५ महिलाएं है। दोनों वार्डो में से २५-२५ मुस्लिम महिलाओं का चयन दैव निदर्शन की लॉटरी विधि द्वारा किया गया। प्रस्तुत शोध के उत्तरदाता केवल मुस्लिम महिलाएं हैं जो कि शिक्षित-आशिक्षित, युवा-वृद्ध हैं। ऐसी स्थिति में उनसे प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन की उपलब्ध्यिां : वर्तमान में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति को जानने के लिए सर्वप्रथम उनकी जातिगत नियमों के पालन की स्वीकृति के सम्बन्ध में मनोवृत्ति को ज्ञात किया गया है।

सारणी सं० - १
जातिगत नियमों के पालन की स्वीकृति

जातिगत नियम	आवृत्ति	प्रतिशत
अत्यधिक कठोरता के साथ	२	४
सामान्यता के साथ	४०	८०
नहीं मानना चाहिएं	८	१६
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से पता चलता है कि ८० प्रतिशत उत्तरदाता जातिगत नियमों को सामान्यता के साथ मानते है तथा १६ प्रतिशत उत्तरदाता बिल्कुल नही मानते तथा ४ प्रतिशत उत्तरदाता जातिगत नियमों को कठोरता के साथ मानते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मुस्लिम महिलाएं जातिगत नियमों के बारे में सामान्य सोच रखती हैं जिससे ज्ञात होता है कि वर्तमान समय में मुस्लिम महिलाएं कट्टरता को छोड़कर सामान्यता की ओर बढ़ रही हैं।

सारणी सं०-२
विवाह की अनिवार्यता

विवाह की अनिवार्यता	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	४०	८०
नहीं	०८	१६
कोई उत्तर नहीं	०२	०४
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि अधिकांश ८० प्रतिशत उत्तरदाता विवाह को अनिवार्य मानती हैं, १६ प्रतिशत उत्तरदाता अनिवार्य नही मानते हैं तथा ४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई

उत्तर नही दिया। इससे स्पष्ट होता हे कि वर्तमान समय में भी अधिकतर मुस्लिम महिलाएं विवाह को अनिवार्य मानती हैं।

सारणी सं०-३

विवाह से पहले लड़की-लड़के का मिलना व बातचीत करना

विवाह से पहले मिलना व बात-चीत करना	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	३४	६८
नहीं	१२	२४
कोई उत्तर नहीं	०४	०८
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि अधिकांश ६८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने लड़की व लड़के के विवाह से पहले मिलने व बात-चीत को उचित माना है तथा २४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने उचित नही माना है तथा ८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई उत्तर नहीं दिया। इससे स्पष्ट होता है कि आज भी मुस्लिम समाज में अधिकतर लोग लड़की व लड़के के विवाह से पूर्व मिलने व बात-चीत करने को उचित समझते है। यह वर्तमान समय में मुस्लिम महिलाओं की आधुनिक सोच को दर्शाता है।

सारणी सं० - ४

पुत्र जन्म की अनिवार्यता

पुत्र जन्म की अनिवार्यता	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१५	३०
नहीं	३३	६६
कोई उत्तर नहीं	०२	०४
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि ६६ प्रतिशत उत्तरदाता पुत्र जन्म को अनिवार्यता नहीं मानते तथा ३० प्रतिशत उत्तरदाता अनिवार्य मानते हैं। ४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई उत्तर नहीं दिया, यह वर्तमान स्थिति को दर्शाता है।

सारणी सं०-५

लड़की व लड़कों को बराबर स्वतन्त्रता देना

लड़की व लड़को को बरावर स्वतन्त्रता	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	३५	७०
नहीं	१०	२०
कोई उत्तर नहीं	०५	१०
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि ७० प्रतिशत उत्तरदाता लड़की व लड़को को बराबर स्वतन्त्रता देने के पक्ष में हैं। इससे पता चलता है कि मुस्लिम समाज में स्त्री के प्रति मनोवृत्ति में अन्तर आया है लेकिन २० प्रतिशत उत्तरदाता बराबर स्वतन्त्रता देन के पक्ष नहीं है तथा १० प्रतिशत उत्तरदाता ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सारणी सं०-६

लड़कियों का घर से बाहर के क्रिया-कलापों में भाग लेना

लड़कियो के घर बाहर के क्रिया-कलापों में भाग	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	३५	७०
नहीं	१३	२६
कोई उत्तर नहीं	०२	०४
योग	५०	१००

उक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि ७० प्रतिशत उत्तरदाता लड़कियों के बाहर के क्रियाकलाप में भाग लेने का स्वीकार करते हैं तथा २६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार नहीं किया है तथा ४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई उत्तर नहीं दिया है। इस प्रकार ऐसा कहा जा सकता है कि मुस्लिम समाज में लड़कियों की स्थिति में परिवर्तन आया है।

सारणी सं०- ७

लड़कियों को शिक्षा प्राति के लिए बाहर भेजना

लड़कियों को शिक्षा प्राप्ति के लिए बाहर रहना	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	३८	७६
नहीं	१०	२०
कोई उत्तर नहीं	०२	०४
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि ७६ प्रतिशत उत्तरदाता लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाहर भेजने के पक्ष में हैं तथा २० प्रतिशत उत्तरदाता बाहर भेजने के पक्ष में नहीं तथा ४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। इससे ज्ञात होता है कि वर्तमान समय में मुस्लिम लड़कियों की स्थिति अच्छी है।

सारणी सं० - ८

नौकरी करने के प्रति उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण

नौकरी करने के प्रति दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	३०	६०
नहीं	१७	३४
कोई उत्तर नहीं	०३	०६
योग	०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है। अधिकांश ६० प्रतिशत उत्तरदाता नौकरी करने के पक्ष में हैं जो कि सामाजिक परिवर्तन की स्थिति को दर्शाता है तथा ३४ प्रतिशत उत्तरदाता नौकरी करने के पक्ष में नहीं है तथा ६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः पूर्ण विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि विगत ६० वर्षो में हमारे देश में भारी सामाजिक परिवर्तन हुए हैं जिसका प्रभाव यहाँ के सम्पूर्ण समाज पर पड़ा है खासतौर से मुस्लिम समाज पर। आज से लगभग १४००० वर्ष पूर्व ही महिलाओं को समाज में अधिकार दिए गए थे, लेकिन आज भी वे उन अधिकारों के कुछ हद तक ही इस्तेमाल कर पा रही हैं। अतः कहा जा सकता है कि परम्परागत मुस्लिम समाज में धर्म को अधिक महत्व दिया जाता था, महिलाओं को चहार दीवारी में कैद रखा जाता था, उनकी स्थिति बहुत निम्न थी, वे अधिकारों से वांचित थीं। लड़को एवं लड़कियों में अन्तर किया जाता था, लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान नही दिया जाता था, उन्हे नौकरी करने के अवसर प्राप्त नहीं थे। वर्तमान में इन सभी परिस्थितियों में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। आज आधुनिकीकरण का प्रभाव मुस्लिम समाज में देखने को मिलता है। लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान दिया जा रहा है। लड़की व लड़को के बीच का अन्तर समाप्त हो गया है। किन्तु वर्तमान में भी अनेक प्रथाए बनी हुई हैं तथा धर्म को भी महत्व दिया जा रहा है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि मुस्लिम समाज में पुराने तथा नये दोनो ही समाजो की विशेषताएं पायी जाती है। आने वाले समय में मुस्लिम समाज में शिक्षा पर अत्यधिक ध्यान दे कर उनमे व्याप्त रूढ़िवादिता को समाप्त किया जा सकता हैं।

सन्दर्भ

१- आजमी अब्दुल मुस्तफा, 'जन्नती जेवर जियाउल कुरान' पब्लिकेशन लाहौर

२- कुरआन, ४६ : १३

३- कुरान, ३ : १६५

४- समाचार पत्र अमर उजाला, १० दिसम्बर २००४

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

सूचना, संचार प्रौद्योगिकी एवं आवश्यकता

❑ **ललित चंद्र जोशी**

संचार साधनों ने व्यक्ति के सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक जीवन को प्रभावित कर दिया है। उसने आधुनिक जीवन पद्धति को नई दिशा दे दी है। संचार के साधनों में निरंतर परिवर्तन व विकास से समाज में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं। सूचना संसाधनों के अवदान के कारण ही भारत जैसे विकासशील देश में समाजार्थिक परिवर्तन संभव हो पाये हैं। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत सांप्रत भारत में सूचना संचार प्रौद्योगिकी की बढ़ती महत्ता को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

'भूमण्डलीकरण' व 'सूचनायुग' की अवधारणा के फलस्वरूप समाज में परिवर्तन निरंतर दृष्टिगोचर हो रहा है। ''सूचना युग में बदलते परिवेश के कारण उच्च शिक्षा के प्रासंगिक स्वरूप पर सोच आवश्यक है। भूमण्डलीकरण, सूचना क्रांति युग, विज्ञान-प्रौद्योगिकी, सामाजिक विकास एवं मानव मूल्यों के साथ सहायक भूमिका निभाने वाली व्यवहारिक एवं जीवन उपयोगी मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता है। आज के सूचना क्रान्ति युग में भारत जैसे विकासशील देश में सभी व्यवसाय अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान प्रधान होते जा रहे हैं और इसीलिये अपेक्षाकृत अधिक विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा की आवश्यकता अनुभव हो रही है। भूमंडलीकरण की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप प्रत्येक समाज में अनेक और विविध प्रकार की संस्कृतियों एवं प्रौद्योगिकी का समावेश होगा। जिनकी शैक्षिक क्षमताओं में विविधरूपता होगी। संभवतः उनमें बड़ी संख्या में ऐसे लोग होंगे जो वंचित पृष्ठभूमि के हों या पहली पीढ़ी के हों। दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के दबाव के चलते विद्यार्थियों के चयन, शिक्षण, संस्थानों के स्वरूप, शिक्षा प्रणाली की योजना का संघर्ष भी पैदा हो सकता है। इसके निराकरण हेतु प्रतिमान ही बदलने होंगे।''[1]

पिछले कुछ वर्षों में हुए तकनीकी नवपरिवर्तनों ने मानवीय संचार को और अधिक सार्वभौम बना दिया है। आज इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी ने संचार-क्रांति ला दी है जिसका तीस वर्ष पूर्व अस्तित्व ही नहीं था। कम समय में संचार के क्षेत्र में हुए प्रगति या परिवर्तन तीव्रता से हुआ है। संचार सुविधाओं का विस्तार जिस गति से हुआ है उसका समाज पर प्रभाव पड़ रहा है। हम प्राचीन समय के उस कठिन दौर से आगे निकल आये हैं। जब ईसा के ३५००० वर्ष पूर्व भाषा का जन्म हुआ था। मानव भाषा के विकास के साथ ही हमारी सभ्यता का जन्म हुआ। लेखन के विकास के साथ लोग विश्व की महान संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के संपर्क में आए। मुद्रण एवं पुनर्जागरण का आविर्भाव एक-एक कर १५वीं शताब्दी में हुआ। बाद में टेलीग्राफ, फोटाग्राफी, टेलीफोन, फिल्म, रेडियो, टेलीविजन आदि के आविष्कार ने नये आयामों को गढ़ा।

संचार की उत्पत्ति को लेकर विद्धानों में कई तरह के मत हैं। प्राचीन समय में कैसे वार्तालाप हुआ होगा? कैसे संचार हुआ होगा? उस समय शब्द नहीं थे केवल इशारों से ही अपनी अभिव्यक्ति को अभिव्यक्त करना पड़ता होगा। आज जमाना बदल गया है। आज जब मौखिक 'शब्द संचार' होता है, उस समय लिखित भाषा तो मानव से कोसों दूर होगी। ''धार्मिक दृष्टि से देवी-देवताओं के चित्र बनाए। मानव ने कंदराओं की दीवारों पर चित्र बनाए। मानव शरीर के लिए टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ पत्थर, हड्डी लकड़ी, सींग, हाथी दांत, पेड़ की छाल, जानवरों की खाल पर खींची। दौड़ता हिरन, दौड़ते घोड़े, उड़ते पक्षियों के चित्रों से मानव अभिव्यक्ति को आगे बढ़ाया। मानव ने यह कार्य लिपि के विकास के लिए नहीं किया बल्कि जादू-टोने के लिए किया। इस प्रथा को आज हम स्मृति विज्ञान के नाम से जानते हैं। इस प्रकार के चित्र दक्षिण फ्रांस, यूनान, अमेरिका, स्पेन, इटली, मोसोपोटामिया, ग्रेटब्रिटेन, ब्राजील, कैलिफोर्निया आदि देशों में मिलते हैं।''[2]

जॉन डिवी विद्यालयों को समाज का लघु रूप मानते हैं। समाज की गतिविधियों और समाज पर वैश्वीकरण के प्रभावों के चलते शैक्षिक संस्थाएं अपना कलेवर परिवर्तित कर रही हैं। विचार करें तो शिक्षा संस्थानों के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान और वैश्वीकरण होना संभव हुआ है। पूर्व-प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर, व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा प्रदान करने वाली समस्त संस्थाएं वैश्विक प्रतिस्पर्धा में अद्यतन एवं प्रासंगिक बने रहना चाहती हैं। इसके लिए स्वयं को संसाधनयुक्त, कार्यक्षम जन बल एवं दक्ष प्रबंधन का विकास करने की होड़ वैश्वीकरण

❑ **शोध अध्येता समाजशास्त्र, एस०एस०जे०परिसर,अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)**

से उपजी हैं।''[3]

सूचनाओं के आदान-प्रदान के कारण ही एक दूसरे देश की संस्कृतियां आपस में मिल गयी हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र एक ग्लोब में सिमट गये हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, समस्या व मुद्दे आज वैश्विक पटल में छा गये हैं, जिस समस्या पर सभी विचार कर समाधान खोजने की कोशिश करते हैं। वैश्वीकरण ने सूचना तकनीक तथा सूचना के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति ला दी है। कोई भी घटना अब कुछ ही पलों में सम्पूर्ण विश्व तक पहुँचाई जा सकती है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया जिस सीमा तक आगे बढ़ चुकी है उसे रोका तो नहीं जा सकता लेकिन उसे राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर जन-आकांक्षाओं के अनुरूप अवश्य बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से वैश्वीकरण के सामाजिक पहलू पर भी विचार किया जाना चाहिए। आज हमारे जीवन स्तर, आय, रोजगार, संस्कृति एवं इन सबसे ऊपर राष्ट्र की अपनी स्वयं की पहचान से जुड़ा है। सामाजिक तौर पर लोगों को महसूस नहीं होना चाहिए कि उनकी संस्कृति को अतिक्रमण किया जा रहा है।

संचार साधनों ने व्यक्ति के सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक जीवन को प्रभावित कर दिया है। उसने आधुनिक जीवन पद्धति को नई दिशा दे दी है। संचार के साधनों में निरंतर परिवर्तन व विकास से समाज में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं। आज से तीन चार दशकों पूर्व जन संचार माध्यमों या साधनों का सुलभता से अवदान नहीं हुआ था। धीरे-धीरे दूरदर्शन का विकास, रेडियो का विकास व पत्र-पत्रिकाएँ विकसित हुई। इलैक्ट्रॉनिक संसाधनों का उपयोग निरंतर बढ़ चला है। उपग्रह, सेल्यूलर फोन, फैक्स, टेलीप्रिंटर, कम्प्यूटर, इंटरनेट, ई-मेल, वीडियो, पत्रकारिता, कॉम्पैक्ट डिस्क आदि सम्मिलित हैं। सूचना संसाधनों के अवदान के कारण ही भारत जैसे विकासशील देश में समाजार्थिक परिवर्तन संभव हो पाये हैं। हर जगह इन माध्यमों की सहायता से विकास कार्य गति पकड़ रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मुद्दे पर बहस जारी है। सरकार ने भी ''विज्ञान और प्रौद्योगिकी शिक्षा में शोधात्मक उत्पादकता बढ़ाने तथा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए सभी प्रौद्योगिकी संस्थानों को इलेक्ट्रॉनिक जर्नल्स और डाटाबेस सुलभ कराया जा रहा है। कम लागत के उद्देश्य से एआईसीटीई और भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी डाटा लाइब्रेरी (आई.एन.डी.ई.एस.टी.) ने एक साथ मिलकर संयुक्त ए.आ.ई.सी.टी.ई-आई.एन.डी.ई.एस.टी. संकाय स्थापित करने के लिए कदम उठाया है।''[4]

संचार तकनीकी इतनी आगे बढ़ रही है कि टेक्नोलॉजी में आयी इस क्रांति से बेखबर हो कर कोई भी समाज या देश उन्नति नहीं रह सकता है। संचार के अभाव में ना तो मानव समाज का विकास हो सकता है और ना ही सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था का निर्माण क्योंकि संचार के अभाव में व्यक्ति का संचार सीमित और संकुचित हो जाता है। भारतीय समाज व्यवस्था के परम्परागत ढ़ाँचे में रूपान्तर की प्रक्रिया औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात, मुक्त बाजार व्यवस्था और सूचना-सम्प्रेषण आदि संसाधनों के विकास का प्रतिफल है। परम्परागत भारतीय समाज और उसकी सांस्कृतिक संरचना का ऐतिहासिक विकास-क्रम वैदिक संस्कृति से लेकर आधुनिक, राजनीतिक व धर्म-निरपेक्ष सांस्कृतिक उत्थान पतन, परिशोधन और प्रगति का इतिहास है। वर्तमान में सामाजिक मूल्य, परम्पराएँ धार्मिक प्रतिबद्धता, रीति-रिवाज और अन्य विशिष्टताएँ, सांस्कृतिक मूल्य में निरंतर परिवर्तन इसी संचार साधनों के माध्यम से हो रहा है। इस संचार साधनों ने मानव समाज की एक आधारभूत स्थिति को परिवर्तित कर रख दिया है। परम्परागत रूप से मानव ने शब्द, भाषा और प्रतीकों के माध्यम से अपनी इच्छा, अनिच्छा, भाव, को संप्रेषित किया है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ वैसे-वैसे संचार साधनों का भी विकास हुआ और संचार की प्रक्रिया जटिल होती चली गई।

समाज का विकास वैज्ञानिक सोच के अनुसार हुआ है। 'पुर्नजागरण काल' में यूरोप में 'वैज्ञानिक क्रान्ति' हुई इस वैज्ञानिक क्रान्ति के प्रभाव से न केवल मनुष्य के भौतिक जीवन में परिवर्तन हुआ बल्कि प्राकृतिक और समाज के प्रति मनुष्य के विचार विचारों में भी परिवर्तन हुआ। प्राकृतिक व सामाजिक घटनाओं के बारे में जानकारी मिलने लगी। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी युग के सूत्रपात से मनुष्य के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हुआ। कापर्निकस गैलीलियो, कैप्लर, न्यूटन जैसे भौतिक विज्ञानियों और गणितज्ञों ने विज्ञान के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। यह सब नयी तकनीकों के खोज के कारण ही संभव हो पाया। संचार साधनों के अभाव में आधुनिक समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी ने मानवीय अन्त : प्रक्रियाओं को संभव बनाया है। प्राचीन समय में संचार पद्धतियाँ प्राथमिक स्तर की थीं, वहीं मध्ययुगीन भारत में सूचनाओं का आदान-प्रदान घुड़सवार, अनुचरों, सैनिकों, पक्षियों की सहायता से होता था। हेपवार्थ और वाटरसन ने संचार साधनों की उपयोगिता दर्शाते हुए कहा,'' सूचना प्रौद्योगिकी की नयी तकनीक न केवल लोगों के आर्थिक जीवन को प्रभावित कर रही है अपितु यह उनमें सार्वजनिक

प्रगति के प्रति भी उन्मुखता उत्पन्न करती हैं।"[५]

ब्रिटिश शासन काल में अर्थात् १८ वीं शताब्दी में भारत के अधिकांश हिस्से में उपनिवेश स्थापित हो गये। रेल यातायात सुनिश्चित करने की दिशा में विकास हो गया। के.पी०सिंह, टीना अरोड़ा जनसंचार की उपयोगिता को दर्शाते हुए, जनसंचार माध्यम और सामाजिक परिवर्तन के बारे में कहते हैं, १९ वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में टेलीफोन, रेडियो एवं टेलीविजन जैसे संचार के साधन आधुनिक विश्व की प्रयोगशालाओं से निकलकर सामान्य जन के उपयोग के लिए धीरे-धीरे सुलभ होने लगे। स्वतंत्र भारत में यातायात व संचार से संबंधित प्रौद्योगिकी का तीव्र गति से विकास हुआ। वर्तमान समय में भी आर्थिक विकास हेतु आधुनिक मानदण्डों के अनुरूप राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित करने का निरन्तर प्रयास किया जा रहा है। इस संदर्भ में समाज के मूलभूत पक्षों को प्रभावित करने वाले आधुनिक अभिकरणों में संचार के साधनों की भूमिका सबसे अधिक सशक्त रूप में स्वीकार की जाती है।"[६]

जनसंचार को मानवीय समाज के लिए महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि समाज में बिना सम्पेषण के कुछ नहीं कार्य किया जा सकता। बिलवर और शेम ने लिखा है,"संचार साधनों के द्वारा जिस पक्कार की सामग्री का प्रवाह होता है, उसी के अनुरूप समाज की मुख्य व्यवस्था निर्धारित होती है। साथ ही संचार के नवीन साधन व्यक्ति को राष्ट्रीय घटनाओं से जोड़ते हैं। सूचना के नवीन साधन व्यक्ति को राष्ट्रीय घटनाओं से एवं लक्ष्यों को विभिन्न विचारधाराओं तथा आवश्यकताओं और व्यक्तिगत अधिकारों के प्रति सचेत करते हैं।"[७]

संचार न हो तो सारी क्रियायें बाधित हो जाती हैं। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास थम जाता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रभावित होता है। जीवन को वैज्ञानिक रूप में समझने के लिए संचार आवश्यक तथ्य है। स्थानीय राजनीति से लेकर विश्व राजनीति और क्षेत्रीय संस्कृति से विश्व संस्कृति के निर्माण व परिवर्तन में इनकी भूमिका निर्णायक की भांति रही है। हॉब्स ने अफ्रीका के जनजातीय ग्रामीण द्वारा पहली बार दूरदर्शन देखने और उससे साक्षरता में वृद्धि की स्थिति का मूल्यांकन किया तथा स्पष्ट किया कि दूरदर्शन का प्रभाव अत्यधिक उल्लेखनीय रहा है। प्रौढ़ लोगों में ऐसे काय्रक्रमों के प्रति अधिक आकर्षण पाया गया है।"[८] अनिल कुमार सिंह सूचना से व्यक्ति की दूरदर्शिता और सामाजिक व राजनीतिक जीवन के प्रति जागरूकता तथा सहभागिता में वृद्धि को देखते हैं।"[९]

सामाजिक जीवन में बदलाव को जे०ए०कौर, टी०वी, सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का शक्तिशाली माध्यम है। यह समाज की उन्नति का सबसे महत्वपूर्ण सार्थक तकनीकी विकासों में एक है। लाखों वर्ष पूर्व जब मानव का विकास हुआ तबसे उसका सांस्कृतिक विन्यास हुआ है। मानव समाज प्रजनन के लिए जैविक वृत्तियों पर ही निर्भर नहीं रहा। वह समाज के संगठन से प्राप्त प्रेरणाओं पर ही निर्भर रहा है। अर्थात् जीवन की परिस्थितियों पर समाज के लोकाचारों एवं प्रथाओं पर, विवाह एवं धर्म की संस्थाओं आदि पर अपने ही समाज से एक अचेतन सामाजिक प्रेरणा का दृष्टांत दिया। ए०के०शर्मा, के अनुसार दूरदर्शन पर जारी सरकारी विज्ञापनों फिल्मों तथा समाज के बदलाव को कुछ कुछ समझते हुए कई जगहों पर अभिभावक लड़कियों को स्कूल भेजने लगे हैं।[१०]

संचार माध्यमों के विविध माध्यम लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में तथा दिशा विशेष की ओर उन्मुख करने में विशेष योगदान प्रदान करते हैं। जनसंचार माध्यमों के अन्तर्गत दूरदर्शन की महत्वूर्ण भूमिका को भूला-बिसराया नहीं जा सकता। यह सामाजिक परिवर्तन का एक साधन है। आधुनिक विश्व की सभ्यता और संस्कृति में संचार के विभिन्न माध्यमों ने महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। किसी भी देश के सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास में अन्र्तसंबंध पाया जाता है जिसके बिना समाज का विकास संभव नहीं हो सकता। सामाजिक परिवर्तन में संचार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसीलिए प्रत्येक राष्ट्र अपने देश की उन्नति के लिए संचार साधनों का उपयोग करता है। सूचना सम्प्रेषण के विविध माध्यमों को पहले विलासिता की वस्तु समझा जाता था परन्तु समसामयिक परिस्थितियों में इसे दैनिक जीवन की प्रमुख आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया गया है।"[११]

संचार माध्यमों के विकास में शिक्षा के क्षेत्र में भी भारी परिवर्तन हुए हैं। भारत में १९७५-७६ में उपग्रह द्वारा आंध्र-प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, मध्य-प्रदेश तथा राजस्थान के २४०० गांवों में सामाजिक शिक्षा कार्यक्रम चलाया गया था। एक दूसरे देश में सूचनाओं का प्रसारित कर नई क्रान्ति हुई है। विकासोन्मुख देशों में संचार माध्यमों के महत्वपूर्ण योगदान के कारण समाज के विविध वर्गों के ऊपर रचनात्मक प्रभाव पड़ा हैं इस प्रभाव से भारतीय समाज में दलित समुदाय भी परिवर्तित हुआ है। आर्थिक विषमतायें, शोषण, पिछड़ापन भी दूर हुआ है। समुदाय के लोग, निर्धन तबके के लोग अपने अधिकारों के लिए चेत गये हैं। उनमें चेतना का प्रसार सूचना के संचार के कारण ही संभव हो पाया है। "आधुनिक विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश है जो अपने सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण प्राप्त करने में सूचना

सम्प्रेषण के विविध माध्यमों का उपयोग न करता हो। संचार से जुड़े लोग इसे विद्युत और अभियांत्रिकी के जादुई जाल के रूप में देखते हैं।''[१२]

''**आधुनिक** भारत में सरकार द्वारा लोगों को शिक्षित करने की दिशा में आधुनिक जनसंचार माध्यमों के व्यवसीापकों द्वारा कई कदम उठाये गये हैं। ग्रामीण परिवेश और उसके प्रसार क्षेत्रों की तुलना में नगरीकरण, औद्योगिकरण और यांत्रिकारण सीमित क्षेत्रों में ही है। यदि भारत को विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ आर्थिक विकास और सर्वांगीण प्रगति के परिप्रेक्ष्य में अपनी प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति बनाये रखना है तो इसे राष्ट्र निर्माण के कार्यक्रमों को ग्राम्य स्तर से शुरू करना होगा।''[१३]

जनसंचार माध्यमों ने दलित समुदाय तक भी अपनी पकड़ बना ली है। उसने लोगों में शिक्षा का प्रसार, स्वास्थ्य के प्रति चेतना, घरेलू समस्याओं के बारे में निदान खोजा है। उनकी जीवन शैली इसके कारण ही परिवर्तित हो पायी है। जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के प्रसार में भी उसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जनसंचार माध्यमों ने दलित समुदाय के लोगों में, युवाओं में, महिलाओं में नवीन विचारों को प्रेषित किया है। उन्हें समाज के लिए कुछ रचनात्मक कार्य करने हेतु प्रेरित किया है। ''जनसंचार के विभिन्न माध्यमों ने दलित समुदाय के लोगों में नवीन चेतना का सृजन करते हुए उनके जीवन में आशातीत परिवर्तन लोने का अद्बितीय प्रयास किया है। इसके द्वारा दलित समुदाय को सिर्फ शोषण से मुक्ति नहीं हुई है वरन् उन्हें अपने अस्तित्व बोध का भी ज्ञान हुआ है जो सार्थक एवं महत्वपूर्ण है।''[१४]

समाज में सामाजिक, राजनैतिक चेतना इसी के कारण संभव हो पायी है। आज गांव से लेकर शहर तक की खबरें इसी संचार के कारण हमें प्राप्त हो रही हैं। इनके माध्यम से जनता का जीवन सरल हो गया है, अशिक्षा और आर्थिक विषमतायें दूर हुई हैं। नगरीकरण, औद्योगीकरण के प्रसार, यातायात व संचार के साधनों के विस्तार, नवीन औद्योगिक प्रयोग आदि के कारण दलित समुदाय में विविध प्रकार के परिवर्तनों की अभिवृद्धि हुई हैं। लोगों का आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन,रीति-रिवाज, संस्कृति आदि का आत्मसात् हो रहा है। सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन होने लगे हैं। कल कारखानों के विकास, स्कूलों, स्वास्थ्य सेवाओं का विकास, विद्यालयों का विकास, ग्रामीण इलाकों का विकास आदि सभी इसी संचार के कारण ही संभव हो पाया है। संचार साधनों ने व्यक्ति की जरूरतों को पूर्ण किया है तथा उसका मनोरंजन किया है। वहीं कंपनियों, कारखानों में इसी के माध्यम से बहुलता व विविधता आई है। सामाजिक विकास, राजनैतिक विकास एवं प्रगति के लिए सभी व्यवस्थाओं में व्यक्तियों की सक्रियता एक अनिवार्य तत्व है। राजनैतिक जागरूकता आज के समाज में एक महत्वपूर्ण तथ्य है। आज समाज में महिलाओं की दयनीय स्थिति को सुधारने में संचार साधनों की भूमिका रही है। अस्सी और नब्बे के दशकों में ही दृश्य व श्रव्य संचार माध्यमों के क्षेत्र में भी अनेक महिलाओं का पदार्पण हुआ। महिलाओं की हर क्षेत्र में बढ़ती भागीदारी से एक ओर तो उनकी समस्याओं चाहे वह कार्यक्षेत्र से संबंधित हों या घरेलू क्षेत्र से ध्यान आकर्षित होने लगा व दूसरी ओर महिलाओं के आंदोलन भी बढ़े। कई स्तरों पर न्यायपालिका के द्वारा भी महिलाओं के अधिकारों के लिए सक्रिय भूमिका निभाई गई। महिला समानता, कल्याण, सुरक्षा, संरक्षण, लिंगभेद, सामाजिक न्याय आदि इसी के कारण संभव हुआ है।

जनसंचार की लोकप्रियता उसके विशिष्ट प्रकार के कार्यों के द्वारा संभव है। जनसंचार अपने माध्यम से मनोरंजन, परिवर्तन, शिक्षण, समाजीकरण, प्रस्थिति निर्धारण करता है। इसका सबसे अधिक प्रभाव व्यक्ति की समाज चेतना को प्रभावित करने से होता है। संवेदनाओं के जागृत होने से व्यक्ति सिर्फ अपनी समस्याओं के बारे में जागरूक नहीं होता वरन् उसके निराकरण के विभिन्न आयामों को समझने का प्रयास भी करता है। जनसंचार के विविध माध्यमों-दूरदर्शन, रेडियो, समाचार पत्र आदि ने भारतीय समाज के दलित समुदाय में जागरूकता को उत्पन्न किया है और उसके विकास में अपना रचनात्मक योगदान प्रदान किया है। जनसंचार के माध्यमों से दलित समुदाय के जीवन के विविध पक्ष प्रभावित हुए हैं। उनके परम्परागत जीवन में शिक्षा और विकास के सीमित अवसर सुलभ हुए हैं। बाह्य जगत से उनके अन्तःक्रियात्मक संबंध स्थापित हुए हैं और परम्परागत मूल्यों से उठकर दलित समुदाय के लोग अपने सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन के विविध पक्षों से अलगाव होते हुए उसमें परिवर्तन के विविध आामों की रूपरेखा देखने लगे हैं। आधुनिक विश्व प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, मुक्त बाजार व्यवस्था और आर्थिक जगत में उत्पादन की नवीन प्रविधियों के परिणाम सवरूप दिन-प्रतिदिन विकास की ओर अग्रसर है। विकास के विभिन्न अभिकरणों के सृजन करने में, प्रचार-प्रसार में विविध माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज गांवों में जागृति उत्पन्न हुई है और उनमें चेतना का प्रसार हुआ है। जनसंचार के विविध माध्यमों विशेषकर रेडियो, दूरसंचार एवं समाचार पत्रों ने अपने विविध कार्यक्रमों के माध्यम से एक अच्छा प्रभाव छोड़ने

का प्रयास किया है। जनसंचार के विविध माध्यमों ने बेरोजगारी, निर्धनता, बेकारी, अशिक्षा, जैसे ज्वलंत समस्याओं को सीधे सरल तरीके से सबके सामने रखा है। जनसंचार माध्यमों ने आर्थिकी, व्यवसायिक आकांक्षाओं के प्रति सजग किया है।

संदर्भ

१. राजपूत दिवाकर सिंह, 'वैश्विक परिदृश्य में भारत में उच्च शिक्षा की पुनर्संरचना', राधाकमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा, वर्ष ६ अंक २, जुलाई-दिसम्बर २००७, पृ०१

२. तिवारी भोलानाथ, 'भाषा विज्ञान', किताब महल, इलाहाबाद, पृ०२८

३. भारत २००७, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, २००७, पृ२३४

४. राजपूत दिवाकर सिंह, पूर्वोक्त, पृ. ३-४

५. हेपवार्थ, मार्क ई० एण्ड वाटरसन मियेल 'इनफार्मेशन अैक्नॉलॉजी एण्ड दि स्पाटियल डायनामिक्स ऑफ कैपीटल, इन्फार्मेशन इकानमिक्स एण्ड पालिसी, १९८८

६. सिंह के.पी. एवं टीना अरोड़ा, 'जनसंचार माध्यम और सामाजिक परिवर्तन', राधाकमल मुकर्जीःचिन्तन परम्परा, वर्ष ६ अंक २, जुलाई-दिसम्बर २००७, पृ०७

७. शेम, बिलवर, 'मास मीडिया एण्ड नेशनल डेवलपमेंट', स्टेन पेन्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बेलपिगरर्निया, १९६४

८. हॉब्स, रिनीफ्रास्ट रिचर्ड, अर्थर एण्ड स्टूफर, 'फर्स्ट टाईम ब्यूअर्स कम्प्रीहेन्ड एडिटिंग कनेक्शन्स' जर्नल एण्ड कम्बीनेशन, बॉल्यूम ३८, अंक ४

९. सिंह, अनिल कुमार, 'ग्रामीण समुदाय में सामाजिक परिवर्तन', क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, १९८२

१०. शर्मा, एस०के०, 'इन्फल्यूंस ऑफ टी०वी०ऑन सोशल लाईफ', जनवरी-मार्च १९९९

११. गैम्सन जोशू, 'इनक्रेडिबल न्यूज', दी अमेरिकन प्रास्पेक्ट १९९४, पृ०२८-३५

१२. मूर्स शाम, मीडिया, 'मार्डनिटी एण्ड लिव्ड एक्सरिरिएन्स', जर्नल ऑफ कम्यूनिकेशन इन्क्वायरी, १९५५,

१३. मैकमिलन, राबर्ट, 'कल्चर एण्ड पॉलिटिक्स', फिलास्फी ऑफ दी सोशल साइंसेज, १९९४, जून, पृ० २१५-२२०

१४. मिआरा कैरोल ओ०, 'टेलीविजन प्रोग्राम प्रोडक्सन', रोनाल्ड न्यूयार्क १९५५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी-जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

भारत-चीन सीमा विवाद

❑ ज्योत्स्ना मिश्रा

भारत-चीन सम्बन्ध अनेक वर्षों से विश्व राजनीति को प्रभावित करते आ रहे हैं। इस हेतु दोनों देशों का अध्ययन अर्थपूर्ण बन जाता है क्योंकि एशिया में यह दो उभरते देश अगर मित्र बन जायें तो दोनों देश विश्व की एक शक्ति का रूप धारण कर सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप दोनों देश अपने सुखद भविष्य को जन्म दे सकते हैं और महाशक्ति (अमेरिका) के लिए खतरे की घण्टी बन सकते हैं। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत भारत चीन सीमा विवाद को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

भारत-चीन दुनिया के दो अत्यधिक विशाल जनसंख्या वाले व तेजी से विकास करने वाले देश हैं जो वर्तमान विश्व में एशिया महाद्वीप की बड़ी शक्ति माने जाते हैं। इनमें भारत धर्मनिरपेक्ष व चीन साम्यवादी देश हैं दोनों ही देश पुरातन सभ्यता के उत्तराधिकारी होने के साथ ही साथ दोनों देशों ने समान दशक (१६४७-४६) में स्वतन्त्रता हासिल कर सम्प्रभुता प्राप्त की। ३० दिसम्बर १६४६ को भारत ने गैर-साम्यवादी देश होने के बावजूद साम्यवादी चीन को मान्यता प्रदान की। जबकि चीन ने १६४६ में ही गैर साम्यवादी देशों के प्रति कठोर नीति अपनाने का निर्णय लिया। परिणामस्वरूप चीन ने भारत को पश्चिमी साम्राज्यवाद का पिछलग्गू कहा।[1] भारत की चीन के प्रति सरल नीति अपनाने के बावजूद १६५२ तक चीन ने अपनी कठोर नीति को अपनाते हुए भारत का उपहास ही किया। १६५४ में भारत-चीन के बीच हुए पंचशील समझौते द्वारा दोनों देशों के मध्य 'हिन्दी-चीनी, भाई-भाई' के नारों की गूंज फैल गई। जबकि १६५०-५१ से चीन द्वारा प्रकाशित नक्शे में भारत के विशाल भू-भाग को चीन का अंग बताया गया था और साथ ही चीन के नकारात्मक व कठोर व्यवहार से भारत-चीन के बीच सीमा सम्बन्धी मुद्दा सीमा विवाद में परिवर्तित हो गया। सीमा विवाद ने इस प्रकार जड़ पकड़ी कि वर्तमान परिदृश्य तक इसका कोई सकारात्मक समाधान दृष्टिगत नहीं हो पाया है।

भारत-चीन सम्बन्धों को तिब्बत मुद्दे ने भी अत्यधिक प्रभावित किया है। तिब्बत भारत और चीन के मध्य स्थित है। साम्यवादी चीन की स्थापना के पश्चात् चीन नें सीमाओं के विस्तार का निर्णय किया। १६४६ में जब चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुयी, तब तिब्बत नें चीन से ल्हासा स्थित चीनी दूतावास छोड़ देने को कहा। इससे चीन और तिब्बत के रिश्ते तनावपूर्ण हो गये। भारत के लिए यह दुर्भाग्य पूर्ण था कि भारत द्वारा चीन के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने के बावजूद भी वर्ष १६५० में चीन के ८० हजार सैनिकों ने तिब्बत पर आक्रमण कर दोनों देशों के मध्य रिश्तों में कड़वाहट पैदा कर दी।[2] चीन नें जब १६५० के दशक में तिब्बत पर कब्जा किया तो वहाँ कुछ क्षेत्रों में विद्रोह भड़के, जिनसे चीन और तिब्बत के बीच के मार्ग के कट जाने का खतरा बना हुआ था। चीन ने उस समय शिंजियांग तिब्बत राजमार्ग का निर्माण किया जो अक्साई चिन से निकलता है और चीन को पश्चिमी तिब्बत से सम्पर्क रखने का एक और जरिया देता है। भारत को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने अपने इलाके को वापस लेने का प्रयत्न किया। यह १६६२ के भारत-चीन युद्ध का एक बड़ा कारण बना। वह रेखा जो भारतीय कश्मीर के क्षेत्रों को अक्साई चिन से अलग करती है, 'वास्तविक नियन्त्रण रेखा' के रूप में जानी जाती है। अक्साई चिन भारत व चीन के बीच चल रहे दो मुख्य सीमा विवाद में से एक है। चीन के साथ अन्य विवाद अरुणाचल प्रदेश से सम्बन्धित हैं।[3]

चीन तिब्बत को अपना हिस्सा मानता आ रहा है। तिब्बत पर कब्जा करने हेतु चीन ने लाखों चीनी तिब्बत में लाकर बसाये, जिससे तिब्बती नागरिक अपने ही देश में अल्पसंख्यक होकर रह गये जिसके फलस्वरूप तिब्बत की आन्तरिक सम्प्रभुता पर गलत प्रभाव पड़ा। चीन ने अपनी साम्राज्यवादी नीति को अपनाते हुए दलाई लामा से जबरदस्ती १७ सूत्रीय समझौते पर हस्ताक्षर करा लिये, जिसमें चीन ने तिब्बत की बाहरी सम्प्रभुता पर अधिकार कर लिया। तिब्बत में दलाई लामा के समर्थन में चीन के विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न हो गया, जिसे चीनी शासकों द्वारा कुचलना प्रारम्भ हुआ और दलाई लामा को तिब्बत छोड़कर भारत में शरण लेनी पड़ी। इसमें भारत की यह सबसे बड़ी भूल थी कि उसने पंचशील सिद्धान्त में तिब्बत पर चीन

❑ शोध अध्येत्री, राजनीति विज्ञान विभाग, एस.बी.डी. गर्ल्स पी.जी. कालेज, धामपुर, बिजनौर (उ.प्र.)

के कब्जे को मान्यता प्रदान की और भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए जरूरी एक 'बफर जोन' को चीन का हिस्सा बनवा दिया। चीन द्वारा तिब्बत के प्रति यह कार्यवाही अन्तर्राष्ट्रीय विधि के खिलाफ थी, जिसका चीन नें उल्लंघन किया। चीन के कब्जे में आने से पहले तिब्बत की भूमिका ब्रिटिश भारत और उत्तरपूर्वी एशियाई देशों के बीच एक 'बफर स्टेट' के रूप में थी। उस वक्त बाहरी दुनिया से तिब्बत का जो भी व्यापारिक या सांस्कृतिक सम्पर्क होता था, वह भारत के जरिये होता था।[४]

चीन द्वारा तिब्बत में लगातार बढ़ती दखलअन्दाजी के फलस्वरूप तिब्बत में चीन के प्रति जनआक्रोश बढ़ता ही गया। वर्ष २००८ में चीन में ओलम्पिक के दौरान भारत में आयी ओलम्पिक मशाल का तिब्बती युवाओं द्वारा जमकर विरोध किया गया तथा भारत सरकार से उम्मीद जतायी गयी कि, वह तिब्बती युवाओं का साथ दे, परन्तु भारत सरकार नें चीन से मित्रता निभाते हुए ओलम्पिक मशाल को भारत से सकुशल विदा करना ही उचित समझा। तिब्बत की राजधानी ल्हासा में चीन ने सैनिकों की संख्या बढ़ा दी, जिससे तिब्बती धर्म गुरू दलाई लामा के सहयोगी दोबारा चीन विरोधी प्रदर्शन न करें। १८ मार्च २०१० को भोपाल यात्रा के दौरान पत्रकारों से बातचीत में दलाई लामा ने तिब्बत मुद्दे पर कहा कि, ''वह तिब्बत को बीजिंग से अलग करने के बजाये उसकी स्वायत्ता चाहते हैं। वह यह भी चाहते हैं कि वहाँ चीन का संविधान लागू न हो। दलाई लामा के मुताबिक तिब्बती युवा उसे बीजिंग से अलग करना चाहते हैं, पर वह खुद उनकी सोच से इत्तफाक नहीं रखते।''[५] १९६२ भारत-चीन युद्ध का एक कारण तिब्बत और दलाई लामा को भी माना जाता है। अर्थात् भारत-चीन के मध्य तिब्बत समस्या चीन की तिब्बत के प्रति साम्राज्यवादी नीति का ही परिणाम हैं।

भारत-चीन के मध्य तिब्बत समस्या का समाधान आसान नहीं है क्योंकि इसके समाधान के साथ ही सीमा से सम्बन्धित समस्याओं का मुद्दा सामनें आयेगा। तिब्बत समस्या का समाधान अत्यधिक जटिल बना हुआ है। इसका समाधान चीन की अपनी सरल नीति के द्वारा ही किया जा सकता है जिसकी ओर चीन ने कोई सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं दिखायी है।

भारत-चीन के मध्य सीमा रेखा मैकमहोन रेखा (Mc Mahon Line) को माना जाता है जिसे लांघकर चीन भारत में घुसपैठ करता आ रहा है। सन् १९१४ में भारत की तत्कालीन अंग्रेज सरकार और तिब्बत के बीच शिमला समझौते के तहत मैकमहोन रेखा अस्तित्व में आयी थी। अनेक विवादों के फलस्वरूप कई वर्षों तक सीमा रेखा का अस्तित्व दबा रहा, किन्तु १९३५ में 'जोलफ केरो' नामक एक अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारी ने तत्कालीन अंग्रेज सरकार को इसे अधिकारिक तौर पर लागू करने की सलाह दी। १९३७ में सर्वे ऑफ इण्डिया के एक मानचित्र में मैकमहोन रेखा को आधिकारिक भारतीय सीमा रेखा के तौर पर दिखाया गया। यह सीमा रेखा हिमालय से होती हुई पश्चिम में भूटान से ५५० मील (८९० किमी०) और पूर्व में ब्रहमपुत्र तक १६० मील (२६० किमी०) तक फैली है।[६] भारत इसे चीन के साथ अपनी सरहद मानता है। इसके विपरीत, चीन १९१४ के शिमला समझौते को नकारता है। उसका कहना है कि तिब्बत स्वायत्त राज्य नहीं था और किसी भी किस्म का समझौता करने का उसके पास कोई अधिकार नहीं था। मैकमहोन रेखा के दक्षिण में ५६,००० वर्गमील के क्षेत्र को तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र का हिस्सा माना जाता है। १९६२ के युद्ध के दौरान भारत के कुछ हिस्सों पर चीन ने कब्जा किया था, जिस पर सीमा विवाद आज भी कायम है। लेकिन भारत-चीन की भौगोलिक सीमा रेखा के तौर पर मैकमहोन रेखा को आज भी जाना जाता है। भारत-चीन के बीच सीमा विवाद मैकमहोन रेखा से चीन द्वारा भारत में घुसपैठ को लेकर है। मैकमहोन रेखा को पारकर चीन भारत के विभिन्न हिस्सों में घुसपैठ करता आ रहा है।

१९५४ के पंचशील समझौते के पश्चात् से ही चीन ने विभिन्न हिस्सों में घुसपैठ करना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ में चीन ने १९५८ में भारत के अक्साई चिन के पठार पर सड़क का निर्माण किया व चीनी सैनिकों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में अवैध चौकियों की स्थापना की गयी। चीन ने सीमा रेखा के विभाजन को हमेशा ही नकारा है। २३ जनवरी १९५९ को चाऊ-एन-लाई ने कहा था कि,''भारत-चीन सीमा कभी भी औपचारिक रूप से सीमांकित नहीं की गयी।''[७] इस वक्तव्य से साफ था कि भारतीय सीमा पर चीनी घुसपैठ का खतरा बना हुआ है। २०वीं सदी के छठे दशक से भारत में चीन की घुसपैठ लगातार जारी है। सीमा विवाद के समाधान के लिए अनेक वार्ताएं हो चुकी हैं। किन्तु उसका कोई सकारात्मक परिणाम सामने नहीं आया है। चीन द्वारा जारी किये अनेक नक्शों में भारतीय भू-भाग को चीन का क्षेत्र दिखाया गया है जिसमें चीन द्वारा सुधार न करते हुए भारतीय भू-भाग के और अन्य क्षेत्रों को भी चीन का क्षेत्र दिखाया जाता रहा है जिसका भारत सरकार द्वारा विरोध तो अवश्य किया जाता रहा है, लेकिन चीन के खिलाफ भारत सरकार द्वारा कोई ठोस कदम नहीं उठाये गये। सीमा विवाद के फलस्वरूप हुए १९६२ के भारत-चीन के

समझौते को पूरी तरह भंग कर दिया जिसने भारत को बहुत आहत किया।

२२ अक्टूबर २०१३ को चीन यात्रा के दौरान मनमोहन सिंह ने सीमा विवाद पर टिप्पणी करते हुए कहा कि, 'ऐतिहासिक मुद्दों के अलावा चीन और भारत के बीच तीन प्रमुख सैन्य घटनाएं रहीं हैं - १९६२ का युद्ध, १९६७ का चोला हादसा और १९८७ की एक झड़प। किन्तु इस प्रकार सीमा मुद्दे को लेकर दोनों देशों के मध्य झड़प वर्तमान परिदृश्य तक बरकरार है।'

इसे विवेचित रूप में देखा जाये तो १९६२ में चीन द्वारा भारतीय भू-भाग पर आक्रमण किया गया। चीन ने सितम्बर १९६७ को नाथूला में भारतीय चौकी पर आक्रमण किया। अक्टूबर १९६७ में चोला पर चीन ने भारतीय चौकी पर धावा बोला। अप्रैल १९६८ में पुनः नाथूला पर चीन की सैनिक गतिविधियाँ देखी गयी। जून १९६८ में मैकमहोन रेखा के दक्षिण में भारतीय क्षेत्र अरूणाचल प्रदेश में कमांग मण्डल के चियांग ड्रेरेग क्षेत्र की चरागाह में चीन द्वारा ६-७ किलोमीटर तक घुसपैठ की गयी। इसके पश्चात् चीन ने अरूणाचल प्रदेश में सैन्य चौकियाँ स्थापित कर लीं। सातवें दौर की वार्ता में चीन ने दावा किया कि, 'पूरा अरूणाचल प्रदेश उसका क्षेत्र है' इस घटना ने भारत-चीन के सम्बन्धों में कड़वाहट पैदा कर दी। जुलाई १९८६ को विदेश मन्त्री शिवशंकर ने लोकसभा में स्पष्ट कहा कि, 'अरूणाचल प्रदेश में चीनियों की घुसपैठ का मामला पेइचिंग में २१ जुलाई (७वें दौर की वार्ता में) को प्रारम्भ होने वाली अधिकारी स्तर की बैठक में उठाया जायेगा।'[८] इस ७वें दौर की वार्ता में भी इसका कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकल सका। फरवरी १९८७ को चीन ने पुनः अरूणाचल प्रदेश पर दावा किया। इस प्रकार २०वीं शताब्दी से चलते हुए २१वीं शताब्दी में भी चीन के साथ भारत का सीमा विवाद बरकरार है।

सन् २००६ में कश्मीर और अरूणाचल प्रदेश को लेकर भारत-चीन के बीच मौखिक झड़प हुई, जिसमें भारत ने कहा कि चीन कश्मीर में उसके ३८ हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर दावा कर रहा है। २००७ में चीन ने अपने वीजा नीति को अपनाया। अरूणाचल प्रदेश में एक भारतीय आई.ए.एस. अधिकारी को चीन द्वारा वीजा देने से मना किया गया। चीन ने कहा ''अरूणाचल प्रदेश चीन का ही हिस्सा है और उन्हें अपने देश में आने के लिये वीजे की आवश्यकता नहीं है।''[९] चीन ने अरूणाचल प्रदेश को अपना अभिन्न अंग बताते हुये वहाँ के नागरिकों को नत्थी वीजा प्रदान किया जिसका भारत सरकार द्वारा विरोध किया गया। सन् २००८ से चीन द्वारा जम्मू-कश्मीर के लोगों को नत्थी वीजा देना प्रारम्भ किया गया। चीन ने दलील दी कि कश्मीर भारत का हिस्सा नहीं है। लेकिन भारत सरकार द्वारा इसका विरोध किये जाने के पश्चात् जुलाई २०१० में चीन ने कश्मीर के चार पत्रकारों को उचित वीजा प्रदान किया जो ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में भाग लेने जा रहे थे परन्तु चीन द्वारा इस कार्यवाही पर रोक नहीं लगायी गयी। पुनः चीन द्वारा अरूणाचल प्रदेश के वेटलिटर और कोच को नत्थी वीजा जारी किया गया जिस पर अरूणाचल प्रदेश के स्टूडेन्ट यूनियन द्वारा ईटानगर में प्रदर्शन किया गया। सन् २००९-१० के करीब चीनी फौज ने दोनों देशों की सीमा पर खास कर लद्दाख और अरूणाचल प्रदेश में घुसपैठ करने का प्रयास किया। चीन द्वारा भारतीय सीमा में लगातार घुसपैठ की घटना जारी रही हैं। २००८ में चीन द्वारा २३२ बार व २००९ में १५० से अधिक बार घुसपैठ की गयी। भारत-चीन के मध्य विवादित मुद्दा अरूणाचल प्रदेश का तवांग शहर भी रहा है। १७वीं सदी में बौद्ध लामा द्वारा इस शहर को बसाया गया था जिस पर चीन अपना अधिकार करना चाहता है। चीन द्वारा मनमोहन सिंह के अरूणाचल दौरे पर आपत्ति का कारण यह तवांग क्षेत्र भी रहा। लम्बे समय तक चीन में राजदूत रह चुके पूर्व विदेश मन्त्री नटवर सिंह का मानना था कि, 'तवांग चीन के साथ विवाद का अपेक्षाकृत नया विषय है।' उनके मुताबिक, १९५३ के भारत के नक्शे में तवांग को नहीं दिखाया गया था, लेकिन अच्छा होता, यदि इस पर भारत का दावा पक्का करने के लिये प्रधानमन्त्री हाल के दौरे में तवांग भी हो आते।[१०] तवांग के पश्चात् चीन ने सिक्किम के एक छोटे भू-भाग पर अपना दावा जताया। यह दावा चीन द्वारा १५ मई २००८ को दोनों देशों की सेनाओं के मध्य हुए नाथूला पोस्ट पर लैग मीटिंग के दौरान किया गया। चीन ने नवम्बर २००९ को हुई बौद्ध गुरू लामा की अरूणाचल यात्रा पर विरोध प्रकट किया, बौद्ध धर्म गुरू लामा ने पहुँचकर कहा, ''मेरी तवांग यात्रा गैर राजनीतिक है जिसका उद्देश्य भाईचारे को बढ़ावा देना है और कुछ नहीं। मैं जहाँ जाता हूँ मेरा मकसद मानवीय मूल्यों का संवर्द्धन करना है।'' इस प्रकार चीन ने अपनी साम्राज्यवादी नीति को अपनाते हुए दलाई लामा के अरूणाचल प्रदेश जाने पर आपत्ति जतायी, साथ ही मनमोहन सिंह के अरूणाचल दौरे पर कुछ टिप्पणी की। यह बात बिल्कुल सही है कि आने वाले वर्षों में चीन की यह नई पुरानी चुनौतियाँ भारत के लिए जोखिम पैदा करती रहेंगी।

चीन ने साम्यवादी नीति को अपनाते हुए २० दिसम्बर २०१०

को सीमा विवाद को और प्रगति प्रदान की। चीन ने दोनों देशों के बीच सरहद की लम्बाई को २००० कि.मी. बताया, जबकि आधिकारिक तौर पर भारत के रिकॅार्ड में यह सीमा रेखा ३६,०० कि.मी. है। यानि चीन ने १६०० कि.मी. सरहद के उस हिस्से को बाहर कर दिया जो जम्मू-कश्मीर में पड़ता है। दिसम्बर २०११ में चीन द्वारा फिर भारतीय सीमा में घुसपैठ की गयी। जम्मू-कश्मीर में लेह के नयोमा सेक्टर में चीनी सैनिकों के भारतीय सीमा में घुस आने की घटना सामने आयी। चीनी सैनिकों के सीमा के डेढ़ किलोमीटर अंदर तक भारतीय सेना के बंकरों को नष्ट कर दिया। चीनी द्वारा भारतीय सीमा में इस प्रकार की कार्यवाही के चलते भारतीय सीमा सुरक्षा में खतरा बना रहता है।

पाकिस्तान ने अपने कब्जे वाले कश्मीरी भू-भाग का ५१८० वर्ग किमी. क्षेत्र चीनी को अवैध रूप से सौंपा, जबकि भारत का कुल १,१६,८०० वर्ग किमी. भू-भाग वर्तमान में पाकिस्तान के अवैध कब्जे में है। लोकसभा में एक लिखित प्रश्न के उत्तर में विदेश मंत्री एस.एम. कृष्णा ने २३ नवम्बर २०११ को बताया कि जम्मू कश्मीर का लगभग ७८,८०० वर्ग किमी. क्षेत्र १६४८ से ही पाकिस्तान के अवैध कब्जे में था जबकि कश्मीर का ही लगभग ३८,००० वर्ग किमी. क्षेत्र १६६२ से चीन के अवैध कब्जे में हैं।

भारत सरकार को चीन की इस साम्राज्यवादी नीति को समझना होगा जबकि भारत सरकार इसकी नीति को हल्के में देख रही है। इसका उदाहरण यह है कि अप्रैल २०१३ में चीन ने पुनः भारतीय सीमा में १६१ किमी० घुसकर चौकी बनाने की हिमाकत की। मगर भारतीय सरकार ने इसे लद्दाख क्षेत्र की स्थानीय समस्या करार दिया। चीनी सेना ने लद्दाख में घुसपैठ के पश्चात् अगस्त २०१३ में न केवल अरूणाचल प्रदेश में घुसपैठ की बल्कि चार दिनों तक वहीं ठहरी रही। इस प्रकार चीन ने पिछले तीन वर्षों में भारतीय सेना में लगभग ६०० बार घुसपैठ की।

चीनी राष्ट्रपति के भारत दौरे पर पहुँचने से एक-दो दिन पहले दक्षिण लद्दाख में भारत और चीनी सेना के बीच सीमा विवाद खड़ा हो गया।[११] चुमार के तीन इलाकों में १००० चीनी सैनिक घुसे थे। भारत और चीन की सेनाएं एक दूसरे से २०० मी. की दूरी पर डटी थीं। चीनी घुसपैठ के बाद हालात पर चर्चा के लिए भारत और चीन एक तरफ लैग मीटिंग कर रहे थे तो दूसरी ओर चीन के सौ सैनिकों ने चुमार में फिर से घुसपैठ कर दी। इस दौरान प्रधानमंत्री मोदी ने साफ शब्दों में कहा, 'सीमा पर शांति बनाए रखने सम्बंधी समझौते पर कड़ाई से पालन होना चाहिए। साथ ही जल्द से जल्द इसका समाधान निकलना चाहिए। इस पर शी ने कहा, सीमा पर बंटवारे की लकीरें खींचा जाना बाकी है, इसलिए कुछ घटनाएं हो सकती हैं।[१२]

२०१४ में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने पद ग्रहण के पश्चात कहा कि, ''भारत को यदि चीन से प्रतिस्पर्धा करनी है तो स्किल (कौशल), स्केल (उत्पादन स्तर), और स्पीड (रफ्तार) पर ध्यान देना होगा।''[१३] दूसरी तरफ चुनाव के दौरान एक प्रचार सभा में मोदी ने चीन को विस्तारवादी सोच से बाज आने की चेतावनी दी थी। इस पर चीन ने पलटवार करते हुए कहा कि उसने किसी देश की एक इंच जमीन पर कब्जा करने के लिए कभी अपनी ओर से नहीं उकसाया।[१४] मोदी २० फरवरी २०१४ में राज्य के २३वें स्थापना दिवस पर उपस्थित होने अरूणाचल यात्रा पर गये इस दौरान चीन के उप विदेश मंत्री ल्यू झेनमिन ने प्रतिक्रिया स्वरूप कहा कि भारत की ओर से कोई भी ऐसी कार्यवाही न हो जो दोनों देशों के मध्य विवादित मुद्दों को और जटिल बनाये।[१५] मार्च २०१५ तक सीमा विवाद सुलझाने के लिए १८वें दौर की वार्ताएं हो चुकी हैं जिसमें भारत और चीन सीमा पर शांति बनाए रखने के लिए सहमत हुए।[१६] इसमें सीमा विवाद को सुलझाने के लिए अनेक विकल्पों पर विचार करने पर सहमति बनी। बैठक में दोनों देशों के नेताओं ने विवादित मुद्दे पर पूर्व में हुई वार्ताओं की व्यापक समीक्षा की और वार्ता प्रक्रिया की प्रगति पर संतोष जताते हुए जल्द से जल्द सीमा के सवाल पर निष्पक्ष, तर्कसंगत एवं आपस में स्वीकार्य प्रस्ताव के लिए त्रिस्तरीय प्रक्रिया अपनाने पर प्रतिबद्धता जतायी।

हालांकि वर्तमान परिदृश्य में भारत-चीन सम्बंधों को देखें तो इनके मध्य मैत्री संबंधों पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है। इन मैत्रीपूर्ण संबंधों को आर्थिक सुधार का परिणाम ही माना जा सकता है। जबकि दूसरी ओर वर्तमान में भी भारत का चीन के साथ सीमा विवाद अनसुलझा ही दृष्टिगोचर होता है। चीन स्वयं को एक शक्ति साबित करने के लिए लगातार भारत को चारों ओर से घेरने का प्रयास करता आ रहा है। चीन अपनी साम्राज्यवादी नीति का प्रयोग करते हुए भारत की सीमा में सैकड़ों बार घुसपैठ की कार्यवाही कर चुका है तथा चीन भारत के साथ सीमा विवाद के मुद्दे को अपने मैत्री संबंधों से अलग रखता है जबकि सीमा विवाद को सुलझाने के लिए १८वें दौर की वार्ताएं हो चुकी हैं। यह सही है कि इसमें लगातार विवाद को सुलझाने के लिए सकारात्मक भूमिका का निर्माण हो रहा है, लेकिन यह वार्ताएं भी किसी निष्कर्ष तक

नहीं पहुंची हैं। भाजपा के सरकार में आने पर प्रधानमंत्री मोदी से सकारात्मक उम्मीदें लगायी जा रही हैं, लेकिन चीन के सीमा विवाद पर असहयोगात्मक रवैये से भारत को चीन की नियत पर संदेह जरूर करना चाहिए। क्योंकि चीन की करनी और कथनी में हमेशा से फर्क रहा है। भारत को चीन के साथ सतर्कतापूर्ण यह कूटनीतिक नीति का प्रयोग करके सीमा विवाद को सुलझा लेना चाहिए।

भारत-चीन सम्बन्ध अनेक वर्षों से विश्व राजनीति को प्रभावित करते आ रहे हैं। इस हेतु दोनों देशों का अध्ययन अर्थपूर्ण बन जाता है क्योंकि एशिया में यह दो उभरते देश अगर मित्र बन जायें तो दोनों देश विश्व की एक शक्ति का रूप धारण कर सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप दोनों देश अपने सुखद भविष्य को जन्म दे सकते हैं और महाशक्ति (अमेरिका) के लिए खतरे की घण्टी बन सकते हैं।

सन्दर्भ

१. घई यू.आर. एवं के.के. घई, 'भारतीय विदेश नीति', न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालंधर २०११-पृ.- २३५।

२. Das Rup Narayan, 'India-China Relations A New Paradism', Published by Institute for Defence Studies and Analysis. New Delhi- 2013, page-17.

३. en.wikipedia.org/wiki/Aksai_Chin.

४. समसामयिकी महासागर, दिसम्बर, २००६, पृ.-३६।

५. अमर उजाला, १६ मार्च २०१०, पृ.-२०।

६. en.wikipedia.org/wiki/Mcmahon_line.

७. घई यू.आर. एवं के.के. घई, पूर्वोक्त, पृ.-२३८।

८. वर्मा दीनानाथ, 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध', ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली- २००६, पृ.-३३६।

९. en.wikipedia.org/wiki/china-India_relations.

१०. हिन्दुस्तान, बरेली, १६ अक्टूबर- २००६, पृ.-१५।

११. हिन्दुस्तान, बरेली, १८ सितम्बर २०१४ पृ.-१५।

१२. वही, १६ सितम्बर २०१४, पृ.-१।

१३. वही, ६ जून २०१४, पृ.-२।

१४. वही, पृ.-१३।

१५. timesofindia.indiatimes.com/india/China-summens-indian-every-over-narendra-modis-Arunachal-visit/articlesshow/ 46325415.cms.

१६. The Times of India, 25 March 2015, P.-6.

१७. Khabar.ndtv.com/news/india/india-china-agree-on-early-resolution-of-border-dispute-749234, 24 march 2015, 5:59 P.M. I.S.T.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

मेघालय राज्य – एक अद्‌भुत समाज

❑ **वीना श्रीवास्तव**

भारत के उत्तर पूर्व में मेघालय राज्य संपूर्ण विश्व में 'नारी शक्ति' के संवर्धन का ज्वलंत उदाहरण है। मातृप्रधान समाज यहां की मौलिक विशेषता है, स्त्रियां सभी क्षेत्रों में स्वीकार्य व सम्माननीय हैं। मेघालय की मनमोहक पहाड़ियों की जनजातियों ने यहां के प्रकृतिक सौन्दर्य के साथ ही अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति को भी सुरक्षित व संयोजित रखा है।

> भारत के उत्तर पूर्व में मेघालय राज्य संपूर्ण विश्व में 'नारी शक्ति' के संवर्धन का ज्वलंत उदाहरण है। मातृप्रधान समाज यहां की मौलिक विशेषता है, स्त्रियां सभी क्षेत्रों में स्वीकार्य व सम्माननीय हैं। मेघालय की मनमोहक पहाड़ियों की जनजातियों ने यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति को भी सुरक्षित व संयोजित रखा है। मेघालय राज्य का इतिहास यहां की खासी, जैन्तिया और गारो जनजातियों के भारत में वाहूय देशों से आगमन से प्रारंभ होता है। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत मेघालय की इन्हीं प्रमुख जनजातियों के संदर्भ में यहाँ की संस्कृति को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

मेघालय राज्य का इतिहास यहां की खासी, जैन्तिया और गारो जनजातियों के भारत में वाहूय देशों से आगमन से प्रारंभ होता है।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार खासी जनजाति के कुछ समूह दक्षिण पूर्व एशिया से आये थे। एक मत यह भी है कि वे उत्तर से आधुनिक बांगलादेश राज्य के सिलहट क्षेत्र से इन पहाड़ियों पर आये और यहां के स्थायी निवासी बन गये। सिलहट क्षेत्र में निरंतर बाढ़ का प्रकोप होने से दो व्यक्ति जिनमें एक खासी और दूसरा डखार ने अपनी लिपि लेकर एक नदी को पार करने का निश्चय किया किन्तु इस प्रयास में खासी व्यक्ति अपनी लिपि व ग्रन्थ सुरक्षित न रख पाया जिसके कारण खासी जनजाति ने बाद में रोमन लिपि को अपनाकर भाषा का प्रचार व विस्तार किया।[१] कुछ इतिहासकारों का मत है कि खासी वर्मा से आये क्योंकि वर्मा की भाषा में समानता पायी जाती है।[२] ग्रिफिथ के अनुसार खासी इंडोनेशिया के मेनखमेर समूह के हैं और भाषा के अनुसार वे छोटा नागपुर के मुन्डा जाति से भी संबंधित बताये जाते गये हैं।[३]

खासी जाति के इतिहास का अवलोकन उनके व्यवहारिक जीवन व प्रचलित रीति रिवाजों व प्रथाओं पर निर्भर करता है। एक खासी कवि के अनुसार उनका इतिहास पेड़, पत्तियों, पत्थरों या प्रकृति में पढ़ा व समझा जा सकता है। खासी व जैन्तिया जातियों की भाषा में बहुत सी अन्य भाषाओं का समन्वय है।

खासी व जैन्तिया जनजातियों का अंग्रेजों के आगमन के पूर्व का इतिहास उनके मातृप्रधान सत्ता व समाज के प्रचलन की रूपरेखा प्रदान करता है। उत्तर पूर्व का एक प्रचीन राज्य कामाख्या, राजधानी गौहाटी गारो व खासी जनजातियों के द्वारा शासित किया जाता था दोनों ही जातियों ने एक साथ एक युद्ध में अपने प्रतिद्वंदियों को पराजित भी किया था। दोनों में मातृप्रधान संस्था का प्रचलन पाया गया था। खासी जनजाति कामाख्या देवी (ka meikha) की उपासना हिन्दू रीति रिवाजों के अनुसार करते थे। उत्तर पूर्व के एक प्रकार के स्त्री राज्य का उल्लेख इतिहास में एक प्रसंग में किया जा चुका है, कश्मीर के ललितादित्य, जो कि एक विजेता थे वे अपने अभियान में एक ऐसे राज्य के पास पहुंचे थे जहाँ स्त्री राज्य था, का उनी और उर्वरा रानी राज्य करती थी, यह राज्य कुपली नदी व कोलांग नदी के पास था। अपने अभियान में कश्मीर के राजा की सेना विपरीत दिशा की ओर कूच कर गयी और यह स्त्री राज्य सुरक्षित रह गया। इस प्रकार के संदर्भ आज भी अवशेष नोगांव के नीति स्थान पर पाये गये हैं।[४]

अंग्रेजों के इस क्षेत्र में आगमन के पश्चात खासी जनजाति ने अपनी स्वतंत्रता के लिए कई संघर्ष किये। यहां पर एक प्रसिद्ध सेनानी उतिरिथ सिंह का उल्लेख करना आवश्यक है अंग्रेजों के साथ उनके संघर्ष के बाद १३ जनवरी १८३३ में उन्हें कैप्टेन एच इंगलेस को सौंप दिया गया उन्हें ढाका भेजा गया था। उन्होंने एक संदर्भ में अपनी इच्छा जाहिर की थी कि 'उन्हें एक राजा की तरह मरना पसंद है न कि एक गुलाम की तरह सिंहासन पर बैठना'। अंततः खासी पहाड़ियां पूर्णतया अंग्रेजों के अधिकार में १८३३ में आ गयीं व जैन्तिया राज्य भी १८३१ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने अधिकार में ले लिया था।

❑ **शोध अध्येत्री इतिहास, बरेली कालेज, बरेली (उ.प्र.)**

अंग्रेजों की इस प्रवृति का जैन्तिया जनजाति ने भी विरोध किया था इनके नेता उकियांग ने मृत्यु के पूर्व कुछ शब्द कहे कि यदि मुत्यु के पश्चात उनका मुंह पूर्व दिशा की ओर रहता है तो एक बार पुनः देश स्वतंत्र होगा अन्यथा इसके विपरीत यदि उनका मुंह पश्चिम में हो। और उनका मुंह मुत्यु के बाद पूर्व दिशा की ओर ही था।[५] यह एक अभूतपूर्व इतिहास रहा है। खासी व जैन्तिया जनजातियां जो कि आज स्वतंत्र हैं और मेघालय राज्य में अपनी पारंपरिक रीति रिवाजों के साथ सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक क्षेत्रों में निरंतर विकासशील हैं।

खासी व जैन्तिया जनजाति की तरह ही गारो जनजाति मेघालय राज्य की ही गारो पहाड़ियों पर निवास करते हैं। इनका इतिहास भी अपने आप में अनूठा है। एक धारणा के अनुसार गारो जनजाति सुदूर पूर्व हिमालय से कामरूप के मैदानी इलाकों में आयी थी वे ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तर में निवास करने लगे। एक धारणा के अनुसार गारो व खासी दोनों ही जनजातियां कामाख्या राज्य में रहते हुए मातृप्रधान सामाजिक व्यवस्था व अपनी धार्मिक व्यवस्था के साथ जीवन यापन कर रही थीं। दोनों ही जनजातियों में एक सामंजस्य था। एक गारों महिला सिलचा ने एक खासी राजकुमार के साथ विवाह भी किया था। एक प्रमुख बात यह है कि कामाख्या शब्द भी गारो भाषा से लिया गया है का-मा-खा गारो शब्द है जिसका अर्थ है 'मेरी माँ की विजय', कामाख्या प्राचीन मातृस्थान है जोकि दोनों ही खासी व गारो जातियों का मिलन स्थान रहा है। बाद में गारो जनजाति मैदानी इलाकें छोड़कर पश्चिम की पहाड़ियों पर चली गयी क्योंकि वे हिमालय की बर्फीली पहाड़ियों से आकर मैदान स्थान पर संतुष्ट नहीं थे इसलिए पहाड़ियों पर उनका स्थानांतरण स्वभाविक था।

कामाख्या देवी जिनकी पूजा का प्रारम्भ गारों जनजाति ने किया वह बाद में हिन्दू रीतिरिवाजों के अनुसार कामाख्या सिद्धपीठ के रूप में पूजी जाने लगी।

गारो जनजाति ने भी अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए अंग्रेजी सरकार के साथ संघर्ष किया था, उदाहरण के तौर पर किस्सागीरी ने दो बार दग्गाल के साथ सरकार की तानाशाही नीतियों के विरोध में संघर्ष किया किन्तु उन्हें दबा दिया गया अैर १८७४ तक यह स्थान भी आसाम में मिला लिया गया। १८७४ में ही खासी पहाड़ी क्षेत्र के शिलांग शहर को आसाम राज्य की राजधानी बनाया गया।[६]

स्वतंत्रता के पश्चात १९४९ में संविधान में उत्तरपूर्व की इन जनजातियों के पारंपरिक व्यवस्थाओं व संस्थाओं के संरक्षण व इनके विकास को ध्यान में रखते हुए संविधान की रूपरेखा तैयार करने के लिए संगठित सभा ने छठा अनुच्छेद तैयार किया जिसके अनुसार खासी-जैन्तिया व गारो पहाड़ियों के जिलों को स्वतंत्ररूप से अपने जिलों में उन्नति व विकास के लिए नियम बनाने व क्रियान्वित करने का अधिकार दिया गया है। यहां आज भी जिला समितियां हैं जो कि पंचायती राज व्यवस्था के अनुरूप ही कार्यरत हैं।

पूर्ण राज्य के रूप में मेघालय नाम से इसका उदघाटन शिलांग के पोलो मैदान में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने २१ जनवरी १९७२ में किया।[७] यह एक ऐसा प्रदेश है जिसकी तीनों ही जनजातियाँ खासी, जैन्तिया व गारो अपनी क्षेत्रीय भाषाओं, पारंपरिक संस्थाओं व धार्मिक व्यवस्थाओं के साथ देश के विकास के मार्ग पर योगदान दे रही हैं। अंग्रेजी भाषा को सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में अपनाया गया। मेघालय राज्य की राजधानी शिलांग है जोकि प्राकृतिक सुन्दरता व खुशनुमा वातावरण के लिए प्रसिद्ध है।

मेघालय में ईसाई संस्थाओं का बहुत बड़ा योगदान रहा है। ब्रिटिश राज्य के समय से ही मिशन स्कूल, कालेज व अस्पतालों ने यहां की जनजातियों के जीवन को प्रभावित किया संभवतः यही कारण है कि आज मेघालय में ईसाई धर्म एक प्रमुख धर्म है यहां अधिकांश जनता पूरी श्रृद्धा से इस धर्म का अनुसरण अपने प्राचीन संस्कारों व मूल्यों के साथ करती है। ३० प्रतिशत लोग ही प्राचीन धर्म व आस्था को अपने जीवन व व्यवहार में अभिव्यक्त करते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पट है कि खासी-जैन्तिया व गारो जनजाति अपने उद्‌भव में अवश्य ही भिन्न हैं किन्तु अपनी संस्कृति, आस्था, विश्वास व प्रचलित रीति रिवाजों के मूल में मातृसत्ता प्रधानता परिलक्षित होती है। अन्य जातियों की पितृप्रधान प्रथा के विपरीत मातृप्रधान समाज एक मौलिक व अद्‌भुत व्यवस्था है। व्यवहारिक रूप में विवाह के पश्चात पति अपनी पत्नी के घर जाकर अपने परिवार का भरण व संरक्षण करता है। बच्चों को उनकी मां की जाति व नाम से समाज में स्थान दिया जाता है। स्त्रियों का परिवार की सम्पत्ति में पूर्ण अधिकार उन्हें आर्थिक रूप से सक्षम बनाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि मातृप्रधान समाज की प्रथा के कारण स्त्रियां पुरूषों पर अपना अधिकार व आधिपत्य मानती हैं, यह सत्य नहीं है, स्त्रियां मात्र सम्पत्ति की सुरक्षा की जिम्मेदारी लेती हैं और भाई-बहन व माता-पिता के प्रति पूरी श्रद्धा से अपना कर्तव्य करती हैं। वे अपने सभी निर्णयों में अपने परिवार व निजी समुदाय के वृद्ध पुरूषों से भी सलाह लेती हैं।[८]

मेघालय की स्त्रियां भारत के अन्य राज्यों की स्त्रियों के लिए

एक उदाहरण हैं। उन्होंने अपनी सांस्कृतिक धरोहर का विकास अपनी संवेदनशील प्रवृत्ति के अनुसार ही किया है अपने परिवार व समुदाय की सुरक्षा व संरक्षक के साथ-साथ जनजाति के प्राचीन रीति रिवाजों व प्रथाओं को भी अक्षुण्ण रखा है।

मेघालय राज्य में प्राचीनता व नवीनता का संगम है। नवीनतम व पश्चिमी सभ्यता को यहाँ के पहनावे, संगीत व नृत्य में देखा जा सकता है। परन्तु किसी भी प्रकार से इस समाज ने अपनी प्रथाओं व संस्कारों से अलग होकर कुछ नया नहीं अपनाया। राजनीति व सामाजिक संस्थाओं में भी स्त्रियों की भागीदारी उनकी स्वस्थ विचारधारा, समानता व न्यायपूर्ण व्यक्तित्व की झलक दिखाते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, संगीत, नृत्य, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में महिलायें पुरूषों के साथ विकास के मार्ग पर अग्रसर हैं। यहां महिलाओं के लिए प्रेम व सम्मान की भावना हैं। भारत के दूसरे राज्यों में लड़कियों या महिलाओं के साथ भेद-भाव व दुर्व्यवहार की समस्या एक बहुत बड़ी सामाजिक चेतावनी के रूप में पायी जाती है जबकि मेघालय राज्य मातृप्रधान समाज है घर की लड़की परिवार को आगे बढ़ाने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यहां की अद्भुत सामाजिक व्यवस्था यहां महिलाओं को समाज में सम्मान व आर्थिक सुरक्षा प्रदान कर उनमें आत्म सम्मान व आत्मविश्वास की भावना को प्रवल बनाते हुए शांति व सुरक्षा का वातावरण प्रदान करती है।

मेघालय राज्य की सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक व्यवस्था अन्य राज्यों की व्यवस्थाओं में सुधार लाने के लिए एक पृष्ठभूमि सिद्ध हो सकती है।

सन्दर्भ

1. Bareh Hamlet, 'A short History of Khasi Literature, Spectrum Publishers, Gauhati, 1974, pp. 10-11
2. Rana B. S., 'The people of Meghalaya', p. 64
3. Gurdon PRT, 'The Khasis, C.F. Independent Publishing Platform, Calcutta, 1914, pp. 21-22
4. Bareh Hamlet, 'Meghalaya', op.cit 1997, p.14
5. Ibid, 1997, p. 121
6. Encyclopedia of Meghalaya, Kumud Bhatnagar, Anmol Publication, New Delhi, 2009, pp. 28-29
7. Sangma C.T., 'Meghalaya to Discover', DVH Publishers, Gauhati, 2006, p. 30
8. Bareh Hamlet, op. cit, 1997, p.97

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

मध्यकालीन संत कबीर एवं संत रविदास का धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र में योगदान

❑ डॉ. जितेन्द्र चावरे

मध्यकालीन संतों ने भक्ति और धर्म के क्षेत्र में सामाजिक समानता को स्थापित करके जाति और वर्ग के भेद-भाव को मिटाकर भावनात्मक एकता की नींव डाली। इस संदर्भ में संत कबीर तथा रैदास का योगदान अतिशय महत्वपूर्ण है। इन्होंने धर्म, जाति तथा वर्ग के आधार पर भेदभाव, ऊंच-नीच, मिथ्याडम्बरों, पाखंडों, अंधविश्वास आदि के विरूद्ध प्रखर आन्दोलन किया। प्रस्तुत आलेख इन दोनों महान संतों के धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में योगदान को आलोकित करने का एक प्रयास है।

मुसलमानों के आगमन से हिन्दू समाज पर प्रभाव पड़ा, उन्होंने देखा कि मुसलमानों में द्विजों और शूद्रों का भेद नहीं है। सधर्मी होने के कारण वे सब एक हैं। अतएव इन ठुकराए हुए शूद्रों में से ही कुछ ऐसे महात्मा निकले जिन्होंने मनुष्यों की एकता को उद्घोषित करना चाहा। इस नवोस्थित भक्ति रंग में सम्मिलित होकर हिन्दू समाज में प्रचलित इस भेदभाव के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई। रामानन्द जी ने सबके लिए भक्ति का मार्ग खोलकर उनको प्रोत्साहित किया। नामदेव दरजी, रैदास चमार, दादू, धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाज की नीची श्रेणी के ही थे। परन्तु उनका नाम आज तक आदर से लिया जाता है।

वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नही, वर्गभेद से उत्पन्न उच्चता नीचता को भी दूर करने का इस निर्गुण भक्ति से प्रयत्न किया। स्त्रियों का पद स्त्री होने के कारण नीचा न रह पाया। पुरुषों के समान वे भी भक्ति की अधिकारिणी हुई। रामानंदजी के शिष्यों में से दो स्त्रियाँ थीं, एक पदमावती और दूसरी सुरसरी। आगे चलकर सहजोबाई और दयाबाई भी भक्तसंतों में से हुई। स्त्रियों की स्वतंत्रता के परम विरोधी, उनको घर की चहारदीवारी के अंदर ही कैद रखने के कट्टर पक्षपाती तुलसीदास जी भी जो मीराबाई को 'राम बिमुख तजिय कोति बैरी सम यद्यपि परम स्नेही' का उपदेश दे सके, वह निर्गुण भक्ति के ही अनिवार्य और अलक्ष्य प्रभाव के प्रसाद से समझना चाहिए।[१]

सन्त कबीर भी ऐसे ही महापुरूषों में से एक हैं। जब हिन्दू-मुस्लिम अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता को लेकर टकराव के कगार पर खड़े थे, समय की पुकार को देखते हुए उन्होंने दोनों धर्मों के रूढ़िवादी स्वरूप पर चोट की। हिन्दुओं की मूर्तिपूजक कट्टरता का विरोध करते हुए उन्होंने कहा था – पाथर पूजे हरि मिले, तो में पूजूं पहाड़। इसी प्रकार मुस्लिम कट्टरता को नकारते हुए उन्होंने कहा था कि अजान देने से क्या खुदा सुनता है। उनका कहना था–

कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय ।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय।।[२]

इसी प्रकार तीर्थ स्थानों पर नदियों में स्नान से ब्राह्मण मोक्ष की प्राप्ति बताते हैं। कबीर ने कहा कि जब तक मन की गंदगी दूर नहीं होती है तब तक नदियों के स्नान से कोई लाभ नहीं, क्योंकि मछली सदा नदी के पानी में रहते हुए भी इस में बास आती है। जो शुद्ध जल से धोने पर भी समाप्त नहीं होती है।

न्हाये धोये क्या भया जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहे धोयें बास न जाय।।[३]

धर्म के नाम पर अधर्म करने वाले को उन्होंने इस प्रकार फटकारा है –

जीव बधत अरु धरम कहत है, अधरम कहां है भाई।
आपन तौ मुनि जन हवै बैठे, कासनि कहौ कसाई।।[४]

स्पष्टतया धर्म का लक्ष्य जीव रक्षा करना है। किन्तु उसका वध करते हुए धार्मिक कहलाना तो न्यायोचित नही है।

कबीर के समय के समाज में भी जाति के आधार पर ऊँच-नीच के भेदभाव मौजूद थे। यही नहीं नीची या निम्न समझी जाने वाली जातियों में से अनेक को अछूत समझा जाता था और उसके स्पर्श ही नही, छाया तक को अपवित्र माना जाता था। इस संबंध में कबीर का मत बिल्कुल्ल स्पष्ट है। कबीर कहते है –

गरम बास महि कुल नहिं जाती।

❑ १२ दानी गेट, उज्जैन (म.प्र.)

ब्रह्म बिंदु ते सभु उतपाता।।
कहुरे पंडित बामन कब के होए।
बामन कहि कहि जनमु मत खोए।।
जो तू ब्राह्मण बमनी जाया।
तो आन बाट काहे नहीं आया।।
तुम कत ब्रह्मण हम कत सूद।
हम कत लोहू तुम कत दूध।।
कहु कबीर जौ ब्रमहु बीचारै।
सो ब्राह्मन कहीअतु है हमारे।।[५]

अभिप्राय है कि जन्म के आधार पर जाति का विचार गलत है। यदि जाति का संबंध जन्म से होता, तो इसके प्रमाण गर्भ से ही मिलने लगते। यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होता तो वह गर्भ से ही वेद पढ़ कर आता, पेट न काहू वेद पढ़ाया।

पाखंडों पर प्रहार करते हुए संत कबीर कहते हैं कि बिना राम की भक्ति के कुछ भी सार्थक नहीं इसलिए लोक भक्ति के मार्ग पर भटक कर निराशा और असफलता ही प्राप्त करते हैं। मुक्ति और राम-मिलन के लिये जो हृदय में देखेगा उसे उसी में सब कुछ मिल जाएगा।

राम बिना संसार धुन्ध कुहेरा, सिरि प्रकटया जम का फेरा।
देव पूजि-पूजि हिन्दू मुए, तुर कमुए हज जाई।
जटा बांधि बांधि योगी मुए, इन में किन हूं न पाई।
कवि कबीनै कविता मुए, कापड़ी के दारौं जाई।
केस लचिमुए बरतिया, इनमें किनहूं न पाई।
धन संचते राजा मए, अरु ले कंचन भारी।
वेद पढ़-पढ़ पंडित मुए, रूप भूल मुई नारी
जे नर जोग जुगति करि जानै, खोजें आप सरीरा
तिन हूं मुकति का संसा नाहीं, कहत जुलाहा कबीरा।।[६]

अहंकारी मानवों से कबीर कहते हैं कि - वेद, पुराण, स्मृति आदि धर्मग्रंथ पढ़कर इस ईश्वर का रहस्य नहीं जाना जा सकता -

मन रे सद्रयो न एको लाजा, साये भज्यो न जगपति राजा।
वेद पुराण सुमत गुन पढ़ि-पढ़ि गनि मरम न पाया।
संध्या गाइत्री अरू भाट करमा, तिन थे दूरि बतावा।।[७]

गंगा, यमुना और गोदावरी आदि पवित्र नदियों को पवित्र मानकर उनके तट में निवास तथा स्थान की मान्यता उस युग में प्रतिष्ठित थी जो कि कबीर साहित्य में विरोध स्वर के रुप में प्रतिष्ठित है।

उलटि पवन भाटचक्र निवासी।
तीरथराज गंग तट वासी।।[८]

यदि मनुष्य अच्छे कार्य नही करता है तो उसका व्रत, उपवास करना व्यर्थ है। एकादशी व्रत का धर्म भी शुभ कर्म करना ही है।

एकादशी व्रत मर्म न जाने।
भूत व्रत हहि हृदय धरै।
तजि कपूर गांठी विष बांधै।
ज्ञान गमाये मुग्ध फिरे।।[९]

समाज में पर्दे की प्रथा थी उन्होंने पर्दा प्रथा का विरोध इन शब्दों में किया- ''घूंघट काढ़या सती न कोई'' अर्थात घूंघट काढ़ने से कोई सती नहीं हो जाती। आगे कहते है-

सतबतिन को गजी मिलै नहिं वैश्या पहिरे खासा हैं।
जेहि घर साधू भीरत न पावै भड़ुंआ खात बतासा है।[१०]

आशय यह है कि यदि मन पवित्र है तो वेश्या की पर्दाहीनता भी पूजनीय है।

प्रतिमा पूजन के कबीर घोर विरोधी थे। जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं देशकाल का जिसके लिये कोई आधार आवश्यक नहीं, उसकी मूर्ति कैसी? जगह-जगह पर उन्होंने मूर्ति पूजा के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है -

हम भी वाहन पूजते, होते वन के रोझ।
सतगुरु की किरिया भई, डारया सिर पे बोझ।।
सेवे सालिगराम कूँ मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुमिनै नहीं, दिन दिन अधकी लाई।।[११]

मूर्ति पूजा में भगवान की मूर्ति को जो भोग लगाने की प्रथा है उसकी वे इस तरह हँसी उड़ाते है -

लाडू लावर लापती पूजा चढ़े अपार।
पूजि पुजारा ले चला दे मुरति के मुख छाट।।[१२]

उन्होंने मुसलमानों के भी बाह्यचार का खण्डन किया है। उनके वजू, नमाज़, सुन्नत आदि के विरोध में उनकी अनेक उक्तियाँ उद्घृत की जा सकती हैं। उन्होंने मुसलमानों की हिंसा और जुल्म का खंडन किया है। खून बहाना और साथ ही मिसकीन (निरीह) कहलाना, कबीर की समझ में नहीं आता।

खून करै मिसकीन कहावै गुनही रहै छिपार।

उनका कहना है - कि दिल ही में खोजो यहीं राम अथवा रहीम मिलेगा।

दिल महिं खोजि दिलै दिलि खोजहु इहई रहीमां रामां।[१३]
वे सुन्नत और जनेऊ दोनों को .त्रिम मानते हैं।

कबीर ने अन्त्येष्टि संस्कार का उल्लेख कई बार किया है।
हाड़ जलै ज्यूं लकड़ी, केस जलै ज्यूं घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास।[१४]
मृत्यु संस्कार के विधानों पर कबीर लिखते हैं -
जिन पूतन को बहुप्रतिपालयो, देवी देव गनै हैं।

सेई लै बोस दियो खोपरी में, सीस कोरि बिखरै हैं।[१५]

कबीर की अभिव्यक्ति में अन्त्येष्टि संस्कार की महत्वपूर्ण क्रियाएँ स्पष्ट हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कबीर अपने युग में सार्वभौमिक न्याय के संस्थापक और मानव मात्र में मानवीय गुणों के सृजक होकर नैतिकता के प्रहरी के रुप में विश्व के सामने आते हैं। वे सर्वकालिक तथा सार्वजातिक न्यायाधीश जैसे प्रतीत होते हैं। किसी भी पाखंडी, अन्यायी और अत्याचारी को क्षमा नहीं करते। वे मेहनतकशों के हितैषी, सामाजिक न्याय की मांग करने वाले हैं। दास प्रथा के विरोधी, सर्वहारा वर्ग की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करवाने वालों की पंक्ति का नेतृत्व करने वाले निष्ठावान सच्चे और समर्पित यौद्धा के रुप में आज भी खड़े दिखाई देते हैं।

संत रविदास जी ने भक्ति और धर्म के क्षेत्र में समान अधिकार और सामाजिक समानता की बात कही है। उन्होंने मूर्ति पूजा और बहुदेववाद का अत्यन्त कठोर शब्दों में खण्डन किया है। उन्होंने एकमात्र ईश्वर की पूजा का उपदेश दिया है। रविदास का कहना है कि - हरि सा हीरा छोड़कर दूसरे अवतारों की आशा रखना मूर्खता है -

हरि सा हीरा छाड़ि के करी आन की आस।
ते नर दोजख जाहिगे सत भाषै रविदास।[१६]

इसके अतिरिक्त उन्होंने मिथ्याडम्बरों, भेदभाव, ऊँच-नीच इत्यादि कितने ही लोकाश्रित तथ्यों से होने वाली सामाजिक हानियों की और संकेत किए हैं। ऐसे स्थलों पर उनकी वाणी में लोक और भक्ति मे अद्भूत समन्वय मिलता है। उनके अनुसार -

ब्राह्मण खतरी बेस सुद, रविदास जन्म ते नाहीं।
जो चाहइ सुबरन कऊ, पावइ कमरन माहि।[१७]

स्पष्ट है कि संतों की यहाँ मनुष्यता की पहचान से है, चूंकि ब्रह्मा ही तो प्रत्येक में निवास करता है।

मानव जीवन को सामाजिक दृष्टि से ऊँचा उठाने के लिए अनेक बातें रविदास जी ने अपनी वाणी में कही हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये पांच मानसिक विकार हैं। रविदास जी कहते हैं - इन पंच विकारों ने एक साथ मिलकर मनुष्य को लूट लिया है। इनके कारण मन, माया, ईर्ष्या एवं अहंकार आदि विकारों में जा फँसता है और वह अपने आप को बड़ा कुलीन, ज्ञानी, शूरवीर, दाता, विद्वान सभी कुछ समझने लगता है, वह मिथ्याभिमानी हो जाता है -

'' काम क्रोध मायामद मतसर, इन पंचनहु मिलि लूटे।
हम बड़ कवि कुलीन हम पंडित, हम जोगी सन्यासी।
ज्ञानी गुनी सुर हम दाटे, इह बुद्धि कबहु न नासी।''[१८]

मानव में पंच विकारों की उत्पत्ति मन की चंचलता के कारण होती है। केवल गुरु ज्ञान एवं प्रभु से इसे काबू किया जा सकता है।

वे बार-बार कहते हैं कि जाति-पांति कुछ नहीं बल्कि सभी परमात्मा की संतान है -

जन्म जात मत पूछिए, का जात अरूपात।
रविदास पूत सब प्रभु के कोऊ न जात कुजात ।।[१९]
मेरी जाति कमीनी पोति, कमीनी ओझा जन्मुह हमारा ।
तुम सरनागति राजा रामचंदु कह रविदास चमारा।।[२०]

रविदास अपनी छोटी जाति स्वीकारते हैं और वे कहते हैं कि हमारा जन्म ओछा है लेकिन राम की शरण में है। संत रविदास ने मानवीय समानता और एकता का प्रतिपादन बड़ी निष्ठा से किया। उनके मतानुसार सभी मनुष्य एक मिट्टी के बने हुए हैं उनको बनाने वाला ईश्वर सभी में विद्यमान है वह घट-घट वास करता है, वह ऊँच-नीच जाति-पांति ब्राह्मण एवं शूद्र आदि के भेद नहीं मानते। संत रविदास जाति व्यवस्था नहीं मानते थे और सभी ईश्वर की संतान है, सभी समान है। इस प्रकार वह राम और रहीम में लेश मात्र भी अंतर नही मानते थे। उनकी दृष्टि मानवतावादी थी।

रैदास ने जाति-पाँति के भेदभाव को मिटाकर समस्त मनुष्यों को आपस में मिल -जुलकर रहने का उपदेश दिया। उन्होंने हिन्दू समाज के बीच की दरार को पाटने का प्रयास ही नहीं किया बल्कि उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों को भी परस्पर सद्भाव बरतने की सलाह दी -

मुसलमान सौ दोस्ती, हिन्दुअन सौं कर प्रीत।
रैदास जोति सब राम की, सब हैं अपने मीत ।।[२१]

आडम्बरपरायण पुजारियों की सारी पूजा ही व्यर्थ है क्योंकि वह पवित्र चेतना से अभिमंडित नहीं। इस पूजा में जिस दूध का वह प्रयोग करते हः उसे तो थन चूँघते हुए बछड़ा ही जूठा कर चुका है, फूल को भौंरे ने ही चूस लिया है पानी को मछली ने बिगाड़ दिया है। अब किसी पवित्र फूल एवं सामग्री के अभाव में भगवान की पूजा कैसे की जाए?

इस प्रकार अपवित्र तत्वों से पवित्र भगवान की पूजा कैसे हो? यह रैदास की समझ से बाहर है :-

दूधु त बछरै थनहु बिटारिओ ।
फूलु भवरि जलु मीनि बिगारिओ।
माई गोविन्द पूजा कहा लै चरावउ।
अवरु न फूलु अनूपु न पावउ।।[२२]

इस प्रकार रैदास ने पूजा की औपचारिकता का कितना सहज और स्वभाविक विरोध कर पुजारी को सचेत किया कि

औपचारिकताओं का नहीं मूल भाव का महत्त्व है। जैसा भगवान पवित्र है, वैसे ही पवित्र हृदय की भक्ति को वह बिना किसी औपचारिकता के भी स्वीकार कर लेता है। अतः जन-समाज को इस आडम्बर में भरमाने की आवश्यकता नहीं। **हिन्दुओं** के धर्मस्थान मथुरा, हरिद्वार, काशी, द्वारका आदि उनके लिए किसी काम के नहीं थे, प्रभु तो अंतर में बसा है।

का मथुरा का द्वारका का काशी हरिद्वार।
रविदास खोजा दिल आपना, ते मिलिया दिलदार।[२३]

रविदास जी कहते हैं - कर्म के प्रति निष्ठा और ईमानदारी होनी चाहिए। वे कर्म विमुख होकर संसार त्याग कर भक्ति मार्ग अपनाने का संदेश नहीं देते। वे समाज के छोटे कर्म के द्वारा उदर-पूर्ति करने वाले व्यक्ति तक के जीवन से उदाहरण ग्रहण करते हैं। चूंकि सच्चा जीवन वहीं पर है।

रविदास सुकरमन करन सै नीच उंच हो जाय।
करइ कुकरम जो उंच भी तो यहां नीच कहलायै।[२४]

इस प्रकार उन्होंने मिथ्याडम्बरों, भेदभाव, ऊँच-नीच इत्यादि कितने ही लोकाश्रित तथ्यों से होने वाली सामाजिक हानियों की और संकेत किए है। ऐसे स्थलों पर उनकी वाणी में लोक और भक्ति में अद्‌भुत समन्वय मिलता है।

इस प्रकार मध्यकालीन भारत में पैदा होने वाले संतों ने और उनके समर्थकों ने जाति-पांति छुआछूत, रूढ़िवादिता, पाखंडों, अंधविश्वास के विरूद्ध प्रखर आंदोलन किया। मानवता पर विश्वास रखने वाले इन संतों के आंदोलन बहुत हितकारी थे, उन्होंने सामाजिक, बुराइयों और छुआछूत का विरोध करते हुए हिन्दुओं को कुमार्ग और विनाशकारी बुराईयों से सावधान किया।

संतों ने भक्ति और धर्म के क्षेत्र में समाज अधिकार और सामाजिक समानता की बात कही हैं उन्होंने कहा कि बुरे कर्म से ही आदमी बुरा होता है। जाति से कोई बुरा या नीच नहीं होता। उनके लिए समस्त मानवता ही एक जाति है और जब तक जातिवाद नहीं मिटता, भावनात्मक एकता नहीं उत्पन्न हो सकती। उन्होंने जाति और वर्ग के भेदभाव को मिटाकर भावनात्मक एकता की नींव डाली। यह विश्व भ्रातृत्व का एक नवीन संदेश था जिसमें मानवता को सार्वभौमिक स्वातन्त्रय की प्रेरणा मिली और द्वारा सामाजिक और आध्यात्मिक विकास की नींव रखी गई।

संदर्भ

१. सुंदरदास श्याम, 'कबीर ग्रंथावली', नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, १९६४, पृ. १०
२. सेंगर इन्द्र, 'कबीर का सच', ग्रन्थ भारती, दिल्ली, प्रथम संस्करण २००१, पृ. १२१
३. लाल एच., 'मानवाधिकारों के संरक्षक हमारे पुरुष', दिल्ली, पृ. २४
४. सेंगर इन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. १२५
५. किशोर राज, 'कबीर की खोज', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, २००१, पृ. ५८-५९
६. स्नातक विजयेन्द्र, 'कबीर', राधाकृष्ण प्रा.लि., दिल्ली, २००१, पृ. १४४
७. तिवारी रामचन्द्र, 'कबीर ग्रंथावली', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९९, पद २६४, पृ. ५६
८. तिवारी रामचन्द्र, पूर्वोक्त, पद १७१, पृ. ३६
९. कबीर, 'बीजक', प्रकाश भारती भण्डार, इलाहाबाद, २०११, शब्द ५२, पृ. ६८
१०. कबीर, 'वचनावली', प्रकाश भारती भण्डार, इलाहाबाद, १९८८, पृ. १५४
११. दास श्याम सुंदर, 'कबीर ग्रंथावली', नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, १९६४, पृ. ३२
१२. दास श्याम सुंदर, पूर्वोक्त, पृ. ३३
१३. तिवारी पारसनाथ, 'कबीर वाणी सुधा', रांका प्रकाश, इलाहाबाद, १९७८, पृ. ६७
१४. तिवारी रामचन्द्र, पूर्वोक्त, अंग १२, साखी १६
१५. कबीर, 'शब्दावली' नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९६४, भाग २, शब्द १५
१६. रैदास, 'संत सुधासार' नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९६४, खण्ड-१, पृ. १९७
१७. शर्मा बी.पी. और पी.नारायण, 'रविदास दर्शन', प्रधान कार्यालय, दिल्ली, १९७६, पृ. १२३
१८. शर्मा ओ.पी. 'संत गुरूदास वाणी', साहित्य भवन, इलाहाबाद, २००१, पद १५
१९. शर्मा देवी प्रसाद, 'रविदास वाणी (साखी)', नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९९९, पृ. १२१
२०. शर्मा देवी प्रसाद, 'रविदास वाणी (साखी)', पूर्वोक्त, पृ. ११९
२१. सिंह एन, 'हिन्दी साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक', आकाश पब्लिशिंग एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद, २००१, पृ. १३१
२२. मैनी, धर्मपाल, 'रैदास', दिल्ली, १९७६, पृ. ३६
२३. सिंह इन्द्रराज, 'संत रविदास', प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, दिल्ली, १९८६, पृ. १०१-१०२
२४. गौतम मीरा, 'निर्गुण भक्ति और सामाजिक चेतना', मोनू प्रकाशन, दिल्ली, २००२, पृ. ५०

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 1, जनवरी–जून 2015
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

कूड़ा–कचरा बीनने वाले बच्चे : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ श्रीमती नीतू आर्या

दुनिया २१वीं सदी में प्रवेश कर चुकी है। अर्थव्यवस्था सूचना क्रांति तथा अनेक योजनाओं में राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय प्रयास किये जा रहे हैं। स्थानीय प्रतिमानों, भूमि उपयोग, भवनों, संचार साधनों, यातायात की रूपरेखाओं तथा सामाजिक दशाओं में भी कई प्रयास किए जा रहे हैं। इसके बावजूद हमारे समाज की सच्चाई यह है कि हमारे ही समाज के भावी कर्णधार उन करोड़ों बच्चों का कोई भविष्य नहीं है जिन्हें आने वाले समय में जवान होना है। ''युनीसेफ के अनुसार २४००० बच्चें प्रतिदिन गरीबी के कारण मरते हैं और वे दुनिया के निर्धनतम गांव में बिना किसी जानकारी के मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। जीवन में उनका गरीब और लाचार होना उनकी मौत को और भी अदृश्य बना देता हैं।''[1] इस प्रकार के बच्चों का बचपन अभावों और शोषण की दर्द भरी दास्तां है, जो प्रतिदिन कूड़ा–कचड़े बीनने से प्राप्त पालीथीन, प्लास्टिक, काँच की बोतले इत्यादि सामग्री को बेचकर मिलने वाली आय से अपना और अपने परिवार का आंशिक रूप से भरण और पोषण करते हैं।

> किसी भी राष्ट्र की प्रगति उस राष्ट्र में रहने वाले बच्चों, युवा पीढ़ी में अंतर्निहित होती है। बालक उस राष्ट्र की ताकत भी होता हैं जिस पर राष्ट्र की आधारशिला रखी जाती हैं। परन्तु आज भी मलिन बस्ती में रहने वाले नन्हें बच्चों के भविष्य के साथ खिलवाड़ होता है जो स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अन्य महत्वपूर्ण आवश्कताओं से वंचित है तथा कुपोषण, अशिक्षा, गरीबी आदि समस्याओं का सामना कर रहें है। प्रस्तुत लेख मलिन बस्ती में रहने वाले बच्चों में शिक्षा एवं स्वास्थ्य स्तर को उजागर करने का एक प्रयास हैं।

आज दुनिया की सबसे बड़ी विडम्बना है कि सबसे अधिक संवेदना बच्चों के प्रति प्रकट की जाती है लेकिन इसके साथ ही अनेक विषमताओं का भार भी इन्हीं नन्हें बच्चो के कंधों पर है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति उस राष्ट्र में रहने वाले बच्चों में अतंर्निहित होती है। बालक उस राष्ट्र की ताकत होता है जिस पर राष्ट्र की आधारशिला रखी जाती है। जिस देश का बाल समाज जितना अनुशासित, क्रियाशील एवं शिक्षित होगा उस देश का भविष्य उतना ही उन्नतशील होगा। अमिताभ कुडुं के अनुसार मलिन बस्तियों में स्थानान्तरण और इनके परिधिकरण के नागरिक सुविधाओं का अधिक से अधिक उपयोग संभव हो सका है एवं मूलभूत सुविधाओं का उपयोग करने वालों के प्रतिशत में वृद्धि हुई है और उन्होंने सुझाव दिया है कि स्लम आबादी के प्रतिशत में कमी के तथ्य को शहरों की स्वच्छता में हुई वृद्धि की रोशनी में देखा जाना चाहिए जो मलिन बस्तियाँ बुरी हालात में स्थित हैं, जिनमें मूलभूत सुविधाओं का अभाव है उन्हें गिराकर औसत गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता हैं।''[2]

निःसंदेह आज का बालक कल का युग है। किसी भी राष्ट्र का धन उस राष्ट्र की युवा पीढ़ी होती है, जिसे राष्ट्र के निर्माण में अहम भूमिका निभानी पड़ती हैं। बढ़ती बेरोजगारी और फैलती भुखमरी के कारण हमारे देश के ये नौनिहाल मैले कुचैले कपड़े पहने दो वक्त की रोटी प्राप्त करने हेतु अपने परिवार का भरण पोषण हेतु कूड़ा चुनने निकल पड़ते हैं। तंग संकरी मलिन बस्तियों में रहने वाले ये बच्चों का जीवन कम और बीमारियँा अधिक होती है। पीले, मुर्झायें चेहरे, चिपके गाल, उभरती हड्डियॉ, कटे–फटे गन्दे कपड़े इन बच्चों की पहचान होती है। यह नरक (मलिन बस्तियाँ) धरती पर सभ्य मानव जाति के लिए कलंक हैं। ये वे स्थान है जहाँ से असंख्य बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं और सम्पूर्ण समाज को निगल जाती हैं। यहाँ बच्चे सामाजिक बुराइयों को अपना लेते हैं। इनके चारों तरफ असामाजिक वातावरण होता है। ये बच्चे सहज ही बुराइयों को अपना लेते हैं और बचपन से ही वह सब करने लगते हैं जो अपराध हैं। आगे चलकर यह गम्भीर अपराधी बनते हैं। गंदी व तंग बस्तियाँ बृहद रूप से यह ऐसी बस्ती है जो अपर्याप्त और दयनीय आवासों, दुलर्भ जन–सुविधाओं, अति भीड़–भाड़ युक्त व तंग इलाकों द्वारा परिलक्षित होती है तथा प्रायः बहुत ही गरीब तथा सामाजिक रूप से पंचरंगी (Heterogeneous) लोगों में निवास करने वाले बच्चों की ओर देखें तो ये बच्चे आज की शिक्षा से काफी हद तक वंचित है और यहॉ की तस्वीर बहुत भयावह है। दया बृजवासी के अनुसार नगरीय मलिन बस्तियाँ अव्यवस्थित रूप से विकसित

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, एम.बी. पी.जी. कालेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

हैं, इनमें जनसुविधाओं की शून्यता तथा प्रदूषित पर्यावरण जीवन को कष्टप्रद बनाती हैं।"[3] मलिन बस्तियों में बच्चे सामाजिक बुराईयों के बीच जन्म लेते हैं और ये सहज ही बुराईयों को अपना लेते हैं। असामाजिक कार्यो में लगे लोग बच्चों के माध्यम से ही चरस गांजा, और कच्ची शराब बेचने का कार्य करते हैं। ये बच्चे ही अनैतिक यौन सम्बन्धों की दलाली भी करते हैं। जुओं के अड्डों की देख-रेख भी करते हैं। इन्हें जेब काटने, चोरी करने, मोबाइल फोन व चैन आदि झपटने की बकायदा ट्रेनिंग दी जाती है। आगे चलकर ये बड़े अपराधी बनते हैं। किशोर आर. के अध्ययन में पाया गया कि मलिन बस्तियों के लोग कम पढ़े-लिखें थे, लोग विचलित व्यवहारों के थे जैसे- अपराध, बाल-अपराध, नशीलें पदार्थो का सेवन, भिक्षावृत्ति, जुआ तथा अन्य कई सामाजिक कुरीतियाँ इन इलाकों से जुडी होती हैं।"[4] आजादी मिलने के बाद भी सरकार बच्चों के जीवन का स्तर सुधारने का कोई क्रमबद्ध प्रयास नहीं कर रही है। यही कारण है कि अधिकाशं बच्चों का का जीवन स्तर राष्ट्रीय स्तर से नीचे हो रहा है।

अध्ययन का उदद्धेश्यः- प्रस्तुत शोध के निम्नांकित उद्देश्य हैंः

१. कूड़ा-कचरा चुनने वाले बच्चों की सामाजिक आर्थिक एवं स्वास्थ्य स्थिति का अध्ययन
२. मलिन बस्ती में कूड़ा-कचरा चुनने वाले बच्चों में शिक्षा का स्तर ज्ञात करना
३. कूड़ा चुनने की ओर इन बच्चों का अग्रसर होने की परिस्थितियों को ज्ञात करना।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन उत्तराखण्ड के नैनीताल जनपद के हल्द्वानी नगर की मलिन बस्ती (गफूर बस्ती) पर आधारित है। गफूर बस्ती से दैव निदर्शन विधि की लाटरी विधि द्वारा कूड़ा-कचरा चुनने वाले ५० बच्चों का चयन किया गया। इन बच्चों से सूचना संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

सारणी १

आयु समूह के आधार पर विश्लेषण

आयु समूह वर्षो में	आवृत्ति	प्रतिशत
५ वर्ष से कम	१	२
५-६	८	१६
७-८	१५	३०
९-१०	१०	२०
११-१२	१०	२०
१३-१४	६	१२
योग	५०	१००

सारणी १ से प्राप्त आकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि दूषित एवं विषाक्त वातावरण में कूड़ा चुनने वाले बच्चे ५ वर्ष से कम आयु के सर्वाधिक २ः, ५-६ वर्ष आयु वर्ग के १६ः, ७-८ वर्ष आयु वर्ग के ३०ः, ९-१० वर्ष आयु वर्ग के २०ः, ११-१२ वर्ष आयु वर्ग के २०ः एवं १३-१४ वर्ष आयु वर्ग के १२ः हैं।

सारणी २

जाति के आधार पर विश्लेषण

जाति का नाम	विधिक रूप	आवृत्ति	प्रतिशत
नोभइया	अ०पि०जाति	९	१८
डभरिया	अ०पि०जाति	२०	४०
सेबरवानी	अ०पि०जाति	१०	२०
कदरामदरा	अ०पि०जाति	६	१२
कोल	अनु०जाति	३	६
चकार	अनु०जाति	२	४
योग		५०	१००

सारणी २ से प्राप्त आकड़ों के आधार से स्पष्ट होता है कि कूड़ा बीनने वाले बच्चों के संदर्भ में अधिकाशं कूड़ा बीनने वाले अन्य पिछड़ी जाति के हैं जिसमें से अधिकतर मुसलमान हैं।

सारणी ३

धार्मिक आधार पर विश्लेषण

धर्म	आवृत्ति	प्रतिशत
हिन्दू	३	६
मुस्लिम	४७	९४
अन्य	०	०
योग	५०	१००

सारणी ३ से प्राप्त आकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि ६ प्रतिशत हिन्दू धर्म से सम्बन्धित है जबकि ९४ प्रतिशत मुस्लिम धर्म में आस्था रखने वालों से सम्बन्धित हैं।

आर्थिक स्तर :- कूड़ा-कचरा बिनने वाले बच्चों के आर्थिक स्तर के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि इनके परिवार के आय के साधन ढोलक निर्माण, रिक्सा चलाना, जूस की दुकानों में बर्तन साफ करने का कार्य तथा भीख मॉगना हैं। इनके परिवार की मासिक आय ३,०००/- से ४,०००/- तक है। ये बच्चे कचरा बीनने समूह में जाते हैं और ये कचरे में धातु, शीशा, प्लास्टिक व गत्ता आदि बीनते हैं। बीने हुए कचरे को अलग-अलग करके अलग-अलग मूल्यों पर कबाड़ी को बेच देते हैं। अपने द्वारा अर्जित धन को ये बच्चे स्वयं पर तथा परिवार पर व्यय करते हैं। इन परिवारों की मासिक आय कम होने के कारण एवं परिवार में सदस्यों की अधिक संख्या तथा बढ़ती हुई महंगाई को देखते हुए ये परिवार की दैनिक

आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी असमर्थ हैं।

स्वास्थ्य का स्तर : ये मलिन बस्तियाँ स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यधिक हानिकारक हैं। अस्वस्थ एवं दूषित वातावरण के कारण यहाँ अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैली हई हैं। बड़ों की अपेक्षा बच्चों में ये बीमारियों का असर ज्यादा रहता हैं इसलिए बच्चे अक्सर बीमार रहते हैं। इनमें अधिकांश ३ प्रतिशत बच्चे बुखार से पीड़ित पाये गये। इन बस्तियों में गंदे एवं मल युक्त पानी की निकासी न होने के कारण चारो तरफ गंदा पानी फैला हुआ है जिससे बस्ती में बीमारियाँ फैली हुई हैं। यहाँ १२ प्रतिशत बच्चे पीलिया से ग्रसित हैं।

सारणी ४

कट पिट छिल जाने पर उपचारर्थ की जाने वाली क्रियाएँ

उपचारार्थ की जाने वाली क्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
सादे कपड़े से बाँध देते है	१५	३०
पेशाब कर देते हैं	१३	२६
उसी तरह से छोड़ देते है	२०	४०
डॉ० के यहॉ मरहम पट्टी करवाते हैं	२	४
योग	५०	१००

सारणी ४ से प्राप्त आकड़ों से प्रदर्शित होता है कि ३० प्रतिशत बच्चे ऐसे है जो किसी भाग के कट पीट जाने पर उसे कपड़े बाँध देते है ताकि खून का बहना रूक जाय। २६ प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं जो कटे हुए स्थान पर पेशाब कर देते हैं और घाव सूख जाता हैं। मात्र ४ प्रतिशत ऐसे बच्चे हैं जो किसी भाग के कटने पीटने पर ज्यादा खून रिसने के कारण डाक्टर के पास इलाज के लिए जाते हैं।

शैक्षिक स्तर : इन बस्तियों के बच्चे आज भी शिक्षा से काफी हद तक वंचित हैं और वहॉ की तस्वीर बहुत भयावह है। मलिन बस्ती में रहने वाले परिवारों के बच्चों के लिए शिक्षा हासिल करना एक सपना बन कर रह गया हैं।

प्राप्त आकड़ों के अनुसार ३५ प्रतिशत परिवारों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करने के दौरान अतिरिक्त कार्य करते है, क्योंकि परिवार मे माता-पिता दैनिक दिनचर्या हेतु सारा दिन घर से बाहर रहते हैं ऐसे में घर के बच्चे घर का सारा काम करते हैं। अतः ये बच्चे शिक्षा अर्जित करने से भी वंचित रह जाते हैं।

सारणी ५

नशीले पदार्थो का सेवन

लैंगिक स्तर	हाँ	नहीं
किशोर	१५(६०)	१०(४०)
किशोरियाँ	१०(४०)	१५(६०)
योग	२५ (१००)	२५(१००)

सारणी ५ से स्पष्ट होता है कि ६० प्रतिशत किशोर सेवन करते है जबकि ४० प्रतिशत किशोर सेवन नहीं करते है तथा किशोरियाँ में से ४० प्रतिशत किशोरियाँ सेवन करती हैं जबकि ६० प्रतिशत किशोरियाँ सेवन नहीं करती हैं। पूछने पर यह पता चला कि मुख्य नशीले पदार्थ गुटखा, पान, सूरती, सिगरेट-बीड़ी आदि का बच्चे धुम्रपान करते हैं।

सारणी ६

जूठन की सामग्री का प्रयोग

जूठन की सामग्री का प्रयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
ऐसी सामग्री मिलने पर खा लेते हैं	११	२२
ऐसी सामग्री घर ले जाते हैं।	७	१४
उसे छोड़ देते हैं।	३२	६४
योग	५०	१००

कूड़ा चुनने वाले बच्चे प्रातः तड़के ही उठ करके बिना कुछ खाए कूड़ा बीनने निकल जाते हैं। शहरों में लोग रात की बची रोटियाँ, फफूँदी लगी ब्रेड सड़कों पर फेंक देते हैं और जब ये बच्चे कूड़ा चुनते है तो भूख लगने पर ये ब्रेड और रोटियाँ खा लेते हैं। सारणी ६ से प्रदर्शित होता है कि कूड़े मे से जूठन की सामग्री मिलने पर २२ प्रतिशत बच्चे खा लेते हैं। १४ प्रतिशत ऐसी सामग्री घर ले जाते हैं तथा ६४ प्रतिशत ऐसी सामग्री छोड़ देते हैं।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अनुसंधान में अध्ययनकर्ता ने हल्द्वानी शहर के गफूर बस्ती में कूड़ा-कचरा चुनने वाले ५० बच्चों के विस्तृत अध्ययन के फलस्वरूप अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष ज्ञात हुए। निष्कर्ष का मुख्य बिन्दु के रूप में यह ज्ञात होता है कि कूड़ा कचरा बीनने वाले बच्चों की सामाजिक स्थिति सामान्यतः बोले जाने वाले मुहावरा ''रोटी कपड़ा और मकान'' की ओर इंगित करता है तथा साथ ही द्वितीय कारक स्वास्थ्य एवं शिक्षा प्रदर्शित होती है। पोलियों जैसी घातक बीमारी भी प्रस्तुत शोधकर्ता को पिछले पॉच वर्षो में इन अध्ययन क्षेत्रों में होने की जानकारी भी प्राप्त हुई। सरकार द्वारा चलाये जा रहें पल्स पोलियो अभियान के फलस्वरूप सौभाग्य से प्रस्तुत शोध के दौरान कोई भी कूड़ा कचरा बीनने वाला बच्चा पोलियो ग्रस्त नहीं पाया गया। अनुसंधान में परोक्ष रूप से जो समस्या सामने आती है वह अशिक्षा है। अशिक्षा का मुख्य कारण परिवार के मुखिया का अशिक्षित होना व सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़ा होना है। शोध में यह भी निष्कर्ष निकलता है कि परिवार के मुखिया द्वारा इन बच्चों के भरण पोषण हेतु कूड़ा कचरा बीनने से प्राप्त आय द्वारा ही इन बच्चों को भोजन इत्यादि प्राप्त होता है।

विकासशील देशों को विकसित देशों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के बराबर आने में इन बच्चों की सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षिक स्थितियों को सुधारने हेतु विशेष नीतियाँ बनानी होगी। हमारे देश में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आंगनबाड़ी परियोजना ५ वर्ष तक के बच्चों के लिए सफल पूर्वक चलायी जा रही हैं। भारतवर्ष में अनेक एन०जी०ओ० द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों से सम्बन्धित अनेक योजनाऐं संचालित की जा रही है। परन्तु कूड़ा कचरा बीनने वाले बच्चे अधिकतर शहरों के आस-पास तंग गलियों, सड़कों के किनारे व मलिन बस्तियो में ही निवास करते है। अतः इन बच्चों पर इन एन०जी०ओ० का ध्यान भी अभी आकर्षित होता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है।

सुझाव : "तंग बस्तियों मे सरकार द्वारा चलाई जा रही स्वास्थ्य सेवाओं का प्रचार किया जाना चाहिए जिससे बच्चों को समय पर जीवन रक्षक टीके लगाये जा सकें और भविष्य में बच्चों को किसी भी प्रकार की शारीरिक समस्या का सामना न करना पड़े। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि माता-पिता को बेटी के महत्व से परिचय कराये जिससे वह लड़का और लड़की में भेद न करें और दोनो को समान शिक्षा दें क्योंकि बेटी को भी पढ़ने लिखने का पूर्ण अधिकार हैं।"[५] तहसील हल्द्वानी के अन्तर्गत गफूर बस्ती के कूड़ा-कचरा चुनने वाले बच्चों की सामाजिक आर्थिक स्थिति के सर्वेक्षण के दौरान जो समस्याएँ हमें ज्ञात हुई उनके निवारण के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं।

अधिकांश कूड़ा चुनने वाले बच्चे बेहद गरीब परिवार के हैं, जिससे इनके माता-पिता/संरक्षक आर्थिक तंगहाली के कारण इन्हें अपने साथ किये जाने वाले कार्यो को कराते हैं।

१. कूड़ा चुनने वाले बच्चों के माता-पिता भी अधिंसख्या में अशिक्षित हैं इन लोगों द्वारा शिक्षा का मूल्य नहीं समझा जाता है अतः इनके क्षेत्र में औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करना जरूरी हैं।

२. अधिकाशं बच्चे विभिन्न प्रकार के वे कार्य करने के आकांक्षी है, जिसमें विशेष प्रशिक्षण देने की जरूरत है। कूड़ा बीनने वाली अधिकांश लड़कियों में सिलाई, बुनाई कताई करने की आकांशा जतायी है। अतः उन लड़कियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाना आवश्यक है।

३. उत्तराखण्ड सरकार हरिद्वार जिले में जिला स्तरीय प्रयास कर रही है, जिसमें १०० बच्चों का एक समूह बनाकर पढ़ाया लिखाया जाता है जिससे वे एक अच्छे नागरिक बन सकें। सरकार को चाहिए कि हर जिले में ऐसे विद्यालय हॉस्टिल खोले जायं जिसमें कूड़ा बीनने वाले बच्चों का भविष्य अच्छा किया जा सकें।

सन्दर्भ

१. असवाल मोनिका, 'तंग बस्ती के बच्चों में शिक्षा एवं स्वास्थ्य स्तर : एक अध्ययन', राधा कमल मुखर्जीः चिन्तन परम्परा वर्ष १२ अंक १ जनवरी-जून २०१० पृ०-११८

२. कुंडु, अमिताभ, 'झुग्गी मुक्त भारत का एक दृष्टिकोण', योजना सितम्बर २०१४, पृ०-१५-१८

३. बृजवासी, दया, 'नगरीय मलिन बस्तियों के निवासी कुमाऊँ में गरीबी की संस्कृति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', अप्रकाशित शोध प्रबन्ध कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, २००३

४. Raut Kishore, 'Problems of Slums in Nagpur City' Paper Published in research Journal of Arts, Management and Social Sciences. Volume IVth Year, 02 March 2011.

५. असवाल मोनिका, पूर्वोक्त, पृ. १२१

पुस्तक समीक्षा

मनीष ठाकुर वर्तमान समय में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट, कलकत्ता में रीडर के पद पर कार्यरत हैं। इससे पूर्व वह गोवा विश्वविद्यालय (१९९७-२००७) में समाजशास्त्रीय विभाग में प्रवक्ता के पद पर कार्यरत् रहे हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांसड स्टडी में भी अनुसंधान किया। (२०११-२०१३) उनके द्वारा लिखित मुख्य पुस्तकों में से एक भारतीय गांव एक अवधारणात्मक इतिहास (रावत २०१४), उनके प्रकाशित शोध, ग्रामीण विकास ज्ञान संस्थान एवं विचार विमर्श, राजनीतिक संस्कृति, सामाजिक आन्दोलन तथा जननीतियों से सम्बन्धित हैं।

पुस्तक	: **द क्वेस्ट फार इंडियन सोशियोलॉजी** राधा कमल मुकर्जी एण्ड आवर टाइम्स
लेखक	: मनीष ठाकुर, एसोशिएट प्रोफेसर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट, कोलकाता
प्रकाशक	: इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांसड स्टडीज, राष्ट्रपति निवास, शिमला
प्रकाशन वर्ष	: २०१४
मूल्य	: ४५०/-
पृ. सं.	: २०५

ठाकुर द्वारा लिखित, पुस्तक ''भारतीय समाजशास्त्र की तलाश'' नामक पुस्तक राधा कमल मुकर्जी की रचनाओं पर ध्यान केन्द्रित करती है जो समाजशास्त्रीय विश्लेषण को दर्शाती है। मुकर्जी के कार्य केवल यूरोप में जो आधुनिक परम्पराएं हैं, उनको ही चुनौती नहीं देते बल्कि मानव के कार्य उद्देश्य और अर्थ के ढांचे को भी परिवर्तित करते है।

ठाकुर ने अपनी पुस्तक ''भारतीय समाजशास्त्र की तलाश'' को सात अध्यायों में विभाजित किया है इस पुस्तक के प्रथम अध्याय 'समाजशास्त्रीय विकास की ओर एक भूमिका' में समाजशास्त्र की पहचान और इतिहास के समकालीन वाद विवाद के मुख्य बिन्दुओं की रूपरेखा को प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन को चुनने का मुख्य उद्देश्य मुखर्जी की रचनाओं तथा उसके सम्भावित मुद्दों की चर्चा करना तथा समाजशास्त्रीय विकास के क्षेत्र में उभरती हुई आकृतियों-समस्याओं के बारे में संज्ञान लेना है।

द्वितीय अध्याय 'जीवन परिचय और इतिहासः बौद्धिक संवेदनशील' के निर्माण में मुकर्जी के जीवन परिचय और कार्यों को उन पाठकों से परिचित कराना है जो उनसे परिचित नहीं हैं, इस अध्याय में प्राथमिक कार्य के बारे में पाठक को मुकर्जी के जीवन के इतिहास से संबंधित एक बौद्धिक संवेदनशीलता से परिचित कराना है। उनके विशाल कार्यों पर आधारित ग्रन्थसूची को भी कुछ समय के लिए अदृश्य कर दिया गया है। यहां तक की लखनऊ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भी इनके प्रकाशित कार्य उपलब्ध नहीं हैं।

तृतीय अध्याय में राधा कमल मुकर्जी का योगदान आलोचनात्मक दृष्टि से किसी भी समाजशास्त्री से कम नहीं हैं भले ही लखनऊ विश्वविद्यालय में राधा कमल मुकर्जी के योगदान की अपेक्षा डी.पी. मुकर्जी व डी.एन. मजूमदार के योगदान को ज्यादा महत्व दिया गया। इस अध्याय के अन्त में लेखक के अनुसार मुकर्जी के कार्य पर अनुसंधान की आवश्यकता है।

'भारतीय समाजशास्त्र का आर्थिक दृष्टिकोण अध्याय में राधा कमल मुकर्जी के आर्थिक विचारों को भारतीय समाजशास्त्र के उद्विकास के साथ चित्रित किया गया है। प्राथमिक रूप से इनके अध्ययनों को अर्थशास्त्रीय क्षेत्र में अंततः विषय और सामाजिक विज्ञान से जुड़े हुए कार्यों का समाजशास्त्रीय तरीके से प्रदर्शित करने की आवश्यकता है।

'पूर्व और पश्चिम : तुलनात्मक विश्लेषण' अध्याय में मुकर्जी ने भारत की सभ्यताओं को ध्यान में रखकर पूर्व और पश्चिम के सम्बन्धों को व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखा है। राधा कमल मुकर्जी के कार्यों की आलोचना पश्चिमी आधुनिकता को ध्यान में रखकर की गई है। मुकर्जी के पश्चिमी तत्वमीमांसा की आलोचना का मूल्यांकन का केन्द्र आधुनिक सामाजिक विज्ञान को पाया गया।

छठे अध्याय : 'पश्चिमी आधुनिकता और उभयवृत्तिा का भारतीय मस्तिष्क' अध्याय स्पष्ट रूप से आधुनिक भारत के बौद्धिक और सांस्कृतिक इतिहास के कार्यों को प्रस्तुत करता है, जो भारत में समाजशास्त्र के विकास से संबंधित है।

इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय में निष्कर्ष में स्वदेशी की मुश्किलें और तत्वमीमांसा के स्त्रोत पर उसका सामान्य प्रभाव दर्शाता है, जो मुकर्जी के विशिष्ट संदर्भित कार्यां से भिन्न है। यह दक्षिण के ज्ञान मीमांसा में वृहत स्तर पर सम्भवतः और साध्यतः पर वाद-विवाद को प्रस्तुत करता है जो विशिष्ट रूप से आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है।

मुकर्जी के समय में यह विवाद का विषय रहा है कि भारतीय समाज का विश्लेषण पश्चिमी सिद्धान्तों से नहीं किया जा सकता क्योंकि भारतीय सामाजिक संरचना अपने आप में एक

विशिष्ट संरचना है, जिसकी तुलना पश्चिमी संरचना से नहीं की जा सकती है। इसीलिए मुकर्जी ने भारतीय सामाजिक संरचना का अध्ययन भारतशास्त्र पद्धति से करने का प्रयास किया है। आज तो हम समाजशास्त्र के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से सक्षम हैं, ऐसी स्थिति में भारत की सामाजिक संरचना के संदर्भ में अध्ययन करने की आवश्यकता है, जिससे अपने सिद्धान्त बनाये जा सकें जो आगे चलकर भारतीय समाज और संस्कृति के विकास में सहायक हों।

समीक्षक

प्रोफेसर जे.पी. पचौरी

अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग

हे.न.ब. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय

श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

सुश्री पूजा राठी, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र

हे.न.ब. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय

श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: मृत्यु और ज़िंदगी का प्रयोजन
लेखक	: डॉ. प्रेम चन्द्र जोशी से.नि. एसोशिएट प्रोफेसर हे.न.ब.ग. विश्वविद्यालय पौढ़ी परिसर (उत्तराखण्ड)
प्रकाशक	: हिन्दी साहित्य समिति देहरादून (उत्तराखण्ड)
प्रकाशन वर्ष	: २०१५
मूल्य	: २५०/-
पृ. सं.	: २०७

जीवन और मृत्यु सृष्टि की प्रक्रिया में चाक्रिक व्यवस्था के अंग हैं और उत्पत्ति और अवसान के रूप में इनका घटित होना निर्माण और परिवर्तन का महासूचक रहा है। आज के सुपरयांत्रिक युग में भी जीवन- मृत्यु की शरीरविज्ञानी और विकसित मनः सामाजिक परिधि में उक्त यथार्थ व दार्शनिक पहलू पर मानव जाति द्वारा चिंतन, मंथन अथवा पुनरावलोकन प्रासंगिक हो जाता है।

जीवन में रंग है, चमक है, आकर्षण है, विविधता है। मृत्यु के आगोश में रहस्य छिपे हुए हैं, सांप्रतिक तकनीकी एवं वैज्ञानिक परिवेश में जितना आवश्यक जीवन की सुरक्षा का एहसास होना है उतना ही अपरिहार्य मृत्यु के निष्पक्ष स्वरूप का दर्शन अथवा अनुभूति करना भी है। मृत्य एक ऐसा सत्य है जो मानवी सीमाओं, लिप्साओं, निषेधों, माया-काया-साया और कष्टों से मुक्ति का प्रतीक है। मृत्यु की व्याख्या, विवेचना उसका विश्लेषण, मृत्यु-संबंधी विधिवत् अध्ययन अथवा उस पर आध्यात्मिक दृष्टिपात करना भी जीवन के सन्दर्भ में अतिशय महत्वपूर्ण विषय प्रतीत होता है।

इक्कीसवी 'सदी में प्रकाशित डॉ. पी. सी. जोशी की कृति मृत्यु और जिन्दगी का प्रयोजन' ऐसे ही अहम् लक्ष्य और अमिट सत्य पर प्रकाश डालने का एक प्रयास है। इसके लिए डॉ. जोशी साधुवाद के पात्र हैं।

सम्पादक

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	:	'राजनीति में भ्रष्टाचार संक्रमण'
लेखक	:	डॉ. निरंकार प्रसाद श्रीवास्तव पूर्व प्राचार्य, डी.ए.वी. कालेज, आजमगढ़
प्रकाशक	:	एक्सिस बुक्स प्रा. लि. नई दिल्ली नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	:	२०१५
मूल्य	:	६६५/-
पृ. सं.	:	१६७

प्रस्तुत पुस्तक ''राजनीति में भ्रष्टाचार संक्रमण' में समसामयिक स्थितियों का सूक्ष्म और व्यवहारिक विश्लेषण सलीके से किया गया है। विगत दशकों से भारत की राजनीति पर स्वार्थी, भ्रष्ट, जातिवादी और अपराधीगण प्रभावशाली होते जा रहे हैं। पुस्तक में इस तथ्य की ओर इंगित किया है कि पूर्ववर्ती राजनीतिज्ञ अपने सर्वस्व को देश हेतु न्यौछावर करने पर तत्पर रहे हैं। सम्प्रति आंतरिक लोकतंत्र लुप्तप्राय होता चला जा रहा है।

सम्पूर्ण पुस्तक सात अध्यायों में विभाजित है जिसके प्रारम्भ में न्यायमूर्ति माननीय गणेशदत्त दुबे का प्राक्कथन प्रस्तुत है। प्रथम अध्याय का शीर्षक : भ्रष्टाचार का अवधारणात्मक स्वरूप रखा गया है जिसके अंतर्गत कतिपय ईमानदार व कर्मठ राजनेताओं की चर्चा के साथ भ्रष्टाचार/घोटालों और राजनीति के सह-सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। डॉ. सम्पूर्णनान्द एवं पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन. शेषन जैसे ईमानदार राजनेता व प्रशासकों के समसामयिक विचारों का भी उल्लेख किया गया है। देश और विदेश के भ्रष्टाचारियों पर भी प्रकाश डाला गया है। दूसरा अध्याय : राजनीतिक क्रियाकलाप हैं जिसमें राजनीतिक लोकतंत्र के स्थान पर बढ़ते वंशवाद पर बल दिया गया है। ईमानदारी और अच्छे जीवन मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। चुनाव तंत्र में बाहुबल, धनबल और जनबल का वर्चस्व दिखाई दे रहा है। कथनी और करनी में विरोधाभास दिख रहा है। लेखक ने 'अपराधियों के राजनीतिकरण' और 'राजनीति के अपराधीकरण' की भी चर्चा की है। क्षेत्रीय विकास निधियों के सद्पयोग पर भी समय-समय पर प्रश्न उठते रहे हैं। तीसरा अध्यायः भ्रष्टाचार-राजनेता, लोकसेवक, कार्पोरेट एवं एन.जी.ओ. हैं जिसके अर्न्तसम्बन्ध के कारण 'भ्रष्टाचार' समस्या नहीं जीवनशैली बन चुकी है। स्वतंत्रतावाद भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार श्रृंखला के एक लम्बे इतिहास (१९४८ से २०१३) का उल्लेख किया गया है, जिससे देश के अपार धन की हानि हुई है और सम्प्रति हो भी रही है, जिसके लिए एक खास 'काकस' को जिम्मेदार बताया गया है। चौथा अध्याय : राजनीतिक भ्रष्टाचार का प्रसार है जिसमें भ्रष्टाचार को विश्वव्यापी समस्या के रूप की चर्चा की गयी है। इसके कारण सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में गिरावट, इच्छित विकास में बाधक, जीवन त्रस्त, प्रतिभा सम्पन्नजन के मनोबल में गिरावट पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। पांचवा अध्यायः भ्रष्टाचार जांच में विभागीय विजीलेन्स तथा केन्द्रीय सतर्कता आयोग (सी. वी.सी.) की भूमिका है, जिसके अन्तर्गत भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियमों के साथ ही विजिलेन्स के क्रिया कलापों (गुण-दोष) का उल्लेख किया गया है कि सरकारी विभाग सी.वी.सी. की सलाह पर यथेष्ट ध्यान नहीं देते हैं। छठवां अध्याय कोर्ट व मीडिया से बढ़ती जागरूकता है, जिसके अंतर्गत उल्लेख किया गया है कि न्यायपालिका की सतर्कता नहीं रहती हो तो विधायिका और कार्यपालिका की मनमानी बढ़ती रहती है। मीडिया ने देश-विदेश में हो रहे राजनीतिक अत्याचारों के विरूद्ध जनजागरूकता बढ़ाई जिसके फलस्वरूप ट्यूनिशिया, मोरक्को, सीरिया, लीबिया, जार्डन, यमन, अल्जीरिया, बहरीन आदि में लोकतांत्रिक क्रान्ति हेतु जनता सड़कों पर उतर आयी और अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। देश में अन्न हजारे के जनआन्दोलन ने भी सकारात्मक परिवर्तन दिखाये और 'लोकपाल' पास कराया। सोशन मीडिया व आर.टी.आई. ने सरकार की कमियों के प्रति लोगों में जागरूकता जगायी। सांतवा और अंतिम अध्यायः सुधारात्मक सुझाव है, जिसके अंतर्गत भ्रष्टाचार के विरूद्ध शहीद होने वालों एवं भ्रष्टाचार के विरूद्ध लड़ने वालों का उल्लेख किया गया है। भ्रष्टाचार पर विजय प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

लेखक ने अनुभव सिद्धज्ञान के आधार पर किसी सरकार की पांच कसौटियां बतायी हैं। समसामयिक ज्वलंत विषय पर पुस्तक तथ्यगत आंकड़े और उनका वैचारिक मंथन निःसन्देह समाज को सकारात्मक दिशा देने में सक्षम है। अतः यह पुस्तक बहु-आयामी दृष्टि से बहुत उपयोगी है। इस प्रकार कुल मिलाकर लेखक का प्रयास सराहनीय है।

समीक्षक
डॉ. आभा सक्सेना
एसोसिएट प्रोफेसर समजाशास्त्र
श्री अग्रसेन कन्या महाविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)